भारतकी नद-नदियां, तालाब-सरोवर, प्रपात, समुद्र आदिकी सनातन

जीवनलीला

काकासाहब कालेलकर

अनुवादक

रवीन्द्र केळेकर

विश्वस्य मातरः सर्वाः
सर्वाश् चैव महाफलाः।
अित्येताः सरितो राजन्!
समाख्याता यथास्मृति॥
—भीष्मपर्व, ९–३७

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

सर्वाधिकार नवजीवन ट्रस्टके अधीन

साहित्य अकादमी, दिल्लीकी ओरसे सूचित गुजराती आवृत्ति परसे

पहली आवृत्ति ५०००, सन् १९५८

तीन रुपये

फरवरी, १९५८

जीवनलीला

१

मैंने कहीं पर लिखा ही है कि मेरे भारत-यात्राके वर्णन केवल साहित्य-विलास नहीं हैं, बल्कि भारत-भक्तिका और पूजाका अेक प्रकार हैं। भगवानके गुण गाना जिस तरह नवधा भक्तिका अेक प्रकार है, अुसी तरह भारतकी भूमि, अुसके पहाड़ और पर्वतश्रेणियां, नदियां और सरोवर, गांव और शहर, अुनमें बसे हुअे लोग और अुनका पुरुषार्थ, अुनके आश्रयमें रहनेवाले ग्राम्य पशु-पक्षी और अुनके साथ असहयोग करके आजादीका आनंद लेनेवाले वन्य पशु-पक्षी — आदि सबका वर्णन करके अुनका परिचय बढ़ाना भारत-भक्तिका अेक अत्यंत आनंददायी प्रकार है। यह भक्ति अेकांतमें भी की जा सकती है और लोकांतमें भी। जब कभी नवयुवकोंकी कोअी घुमक्कड़ टोली मुझसे मिलने आती है और कहती है कि 'आपकी यात्राकी पुस्तकें पढ़कर हम भारतकी यात्रा करनेके लिअे निकल पड़े हैं' तब मुझे बड़ा आनन्द होता है, और मैं अुनकी ओर अैसी कृतज्ञ-बुद्धिसे देखता हूं, मानो वे मुझ पर अुपकार करनेके लिअे ही निकले हों।

मेरे अिन यात्रा-वर्णनोंमें से अैसे सब वर्णन, जिनमें मैंने भारतकी नदियोंको भक्ति-कुसुमोंकी अंजलि अर्पित की है, अेकत्र करके 'लोकमाता'* के नामसे गुजराती तथा मराठीमें जनताके सामने बहुत पहले मैंने रख दिये हैं। महाभारतकारने हमारी नदियोंको 'विश्वस्य मातरः' कहा है। अिन स्तन्यदायिनी माताओंका वर्णन करते हुअे हमारे पूर्वज कभी नहीं थके। और मेरा अनुभव है कि अिन्हीं

* हिन्दीमें अिनमें से सिर्फ सात नदियोंके वर्णन 'सप्त-सरिता' के नामसे दिल्लीके सस्ता-साहित्य-मंडलकी ओरसे प्रकाशित किये गये थे।

नदियोंके नये प्रकारके स्तोत्र यदि लोगोंके सामने रखे जायें तो अुनका आजके लोग भी प्रेमपूर्वक स्वागत करते हैं।

अब स्वराज्य सरकारकी ओरसे हालमें स्थापित हुअी 'साहित्य अकादमी' (भारत-भारती-परिषद्) ने सूचना की कि 'लोकमाता' में दूसरे और कुछ प्रवास-वर्णन मिलाकर अेक पुस्तक मैं तैयार करूं; 'साहित्य अकादमी' हिन्दुस्तानकी प्रमुख भाषाओंमें अुसका अनुवाद करवाकर प्रकाशित करेगी।

अिस अनुग्रहको स्वीकार करते समय मैंने सोचा कि अुसमें किसी भी स्थानके यात्रा-वर्णन जोड़नेके बदले नदी, प्रपात और सरोवरोंके साथ मेल खा सकें अैसे सागर, सागर-संगम और सागर-तटकी विविध लीलाका ही वर्णन यदि दूं, तो पंचमहाभूतोंमें से अेक अत्यन्त आह्लादक तत्त्वकी लीलाका वर्णन अेक स्थान पर आ जायेगा और अिस नअी पुस्तकमें अेक प्रकारकी अेकरूपता भी रहेगी। यह विचार मित्रोंको और 'साहित्य अकादमी' के गुजराती सलाहकारों तथा संचालकोंको पसन्द आया। अतः 'लोकमाता' 'जीवनलीला' के रूपमें पाठकोंकी सेवा करनेके लिअे निकल पड़ी।

'लोकमाता' में केवल नदियोंके ही वर्णन होनेसे अुसके मुख-पृष्ठ पर महाभारतका 'विश्वस्य मातरः' वाला श्लोक ठीक मालूम होता था। अब अुसने व्यापक 'जीवनलीला' का रूप धारण किया है, अतः अिस श्लोकका अुपयोग करनेमें अव्याप्तिका दोष आ जाता है। फिर भी परंपराकी रक्षाके लिअे यह श्लोक अिस पुस्तकमें भी भक्तिभावसे रहने दिया है।

'जीवनलीला' की गुजराती आवृत्तिने लोकसेवाकी यात्रा शुरू की और तुरन्त अुसके हिन्दी अनुवादका सवाल खड़ा हुआ। नवजीवन प्रकाशन मंदिरने अपनी नीतिके अनुसार हिन्दी आवृत्ति प्रकाशित करनेका भार स्वयं अुठाया और मेरी सूचनाके अनुसार अनुवादका काम दबोंमें मेरे पास रहे हुअे श्री रवीन्द्र केळेकरको सौंपा। अुन्होंने बड़ी योग्यता और प्रेमके साथ यह अनुवाद समय पर कर दिया। सारा अनुवाद मैं देख चुका हूं और मुझे अुससे संतोष है।

गुजराती आवृत्तिके लिअे जो टिप्पणियां अध्यापक श्री नगीनदास पारेखने तैयार की थीं, अुन्हींका अुपयोग अिस आवृत्तिके लिअे किया गया है। हमारे देशमें जहां संदर्भ-ग्रंथोंकी कमी है और अच्छे पुस्तकालय भी बहुत कम जगह पर पाये जाते हैं, विद्यार्थियोंके लिअे ही नहीं, किन्तु सामान्य संस्कार-रसिक पाठकोंके लिअे भी टिप्पणियां लाभदायक होती हैं।

अनुवाद और टिप्पणियां देखकर मेरे अन्तेवासी श्री नरेश मंत्रीने अपने ही अुत्साहसे 'जीवनलीला' की सूची बनाकर दी। आजकलके जमानेमें सूचीकी आवश्यकता अनुक्रमणिकासे कम नहीं मानी जाती। पाठक तो सूची बनानेवालेको धन्यवाद दे ही देंगे, क्योंकि अनुक्रमणिका और सूची ग्रंथकी दो आंखें मानी जाती हैं।

मेरी अिस किताबके लिअे अिस तरह टिप्पणियां और सूची देनेका अुत्साह दिखाकर नवजीवन प्रकाशन मंदिरने विद्यानुरागी पाठकोंके धन्यवाद अवश्य ही हासिल किये हैं।

जब तक मेरी यात्रा चलती है और भक्तियुक्त स्मृति काम देती है, मेरी किताबोंका कलेवर बढ़नेवाला ही है। गुजराती 'जीवनलीला' के प्रकट होनेके बाद जीवनलीलासे संलग्न दसेक मौलिक हिन्दी लेख और तैयार हो गये, जिनको अिस हिन्दी आवृत्तिमें स्थान देकर मेरी 'जीवन'-भक्तिको मैंने अद्यतन (up-to-date) बनाया है। अैसे नये लेखोंको अनुक्रमणिकामें तारंकाकित किया गया है। अब अिस विषयमें ज्यादा लिखनेका अुत्साह नहीं है; किन्तु भारतके नद-नदी, तालाब-सरोवर, प्रपात और समुद्र-तट, वार्षिक जल-प्रलय और मरुभूमिके मृगजल आदिका विविध वर्णन नये जमानेके नयी प्रतिभावाले अुदीयमान लेखकोंकी कलमसे निकले हुअे लेखोंमें पढ़नेकी अिच्छा या लालसा है। पं० बनारसीदासजीने हिन्दी लेखकोंका ध्यान अिस क्षेत्रकी ओर कबका आकर्षित किया है।

२६–१–'५८ काका कालेलकर

स्वातंत्र्यका गणतंत्र-दिन

२

वस्तुतः पंचमहाभूतोंके संयोगसे ही जीवन अस्तित्वमें आता है। फिर भी हमारे लोगोंने केवल पानीको ही जीवन कहा, जिसमें बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। पृथ्वीके आसपास चाहे जितना वायुमंडल घिरा हुआ हो, और जिस 'वातके आवरण'के बिना हम भले एक क्षण भी जी न सकें; फिर भी पृथ्वीका महत्त्व है जिसको घेरकर रहनेवाले जलावरण (पानीका आवरण) के ही कारण। जलकमें जो ताजगी है, जो जीवन-तत्त्व है, वह न तो अग्निकी ज्वालामें है, न पवन या आंधी-तूफानमें है। पानी जहां बहता है वहां शीतलता प्रदान करता है; रेगिस्तानको भी वह उपवन बनाता है; और प्राणिमात्र अनेक प्रकारके जीवन-प्रयोग कर सकें ऐसी सुविधायें प्रदान करता है। जलका स्वभाव चंचल है, तरल है, ऊर्मिल है। और जिससे भी विशेष, वत्सल है।

प्रकृतिके निरीक्षणका आनंद अनुभव करते हुये पहाड़, खेत, बादल और उनके उत्सवरूप सूर्योदय तथा सूर्यास्तके रंग-चमत्कार मैंने देखे हैं। हरेककी खूबी अलग, हरेककी चमत्कृति अनोखी होती है; फिर भी पानीके प्रवाह या विस्तारमें से जो जीवन-लीला प्रकट होती है उसके असरके समान दूसरा कोई प्राकृतिक अनुभव नहीं है। पहाड़ चाहे जितना उत्तुंग या गगनभेदी हो, जब तक उसके विशाल वक्षको चीरकर कोई बड़ा या छोटा झरना नहीं फूटता, तब तक उसकी भव्यता कोरी, सूनी और अलोनी ही मालूम होती है।

संस्कृतमें 'डलयोः सावर्ण्यम्' न्यायसे जलको जड़ भी कहते होंगे। किन्तु सच पूछा जाय तो जलको जड़ कहनेवालेकी बुद्धि ही जड़ होनी चाहिये। जड़ताका यदि कहीं अभाव है तो वह जलमें ही है।

पहाड़को देखते ही उसके शिखर तक चढ़नेका दिल होगा और संभव हुआ तो शिखर तक पैर चलेंगे भी। पानीकी भी यही बात है। मनुष्य जब तक नदीका उद्गम और मुख नहीं ढूंढ़ता, तब तक उसे संतोष नहीं होता। पानीको देखते ही उसके समीप जानेका दिल होता ही है। वह यदि पेय हो तो प्यास न होते हुये भी उसको

चखनेका मन होता है। स्नानसे बाह्य शरीर और पानसे शरीरके अंदरका भाग पावन किये बगैर मनुष्यको तृप्ति ही नहीं होती। अन्य सहूलियत न हो तो वह पानीका आचमन करेगा, अथवा कमसे कम पानीकी दो बूंदें आंखोंकी पलकों पर जरूर लगायेगा।

हिमालयके ठंडे प्रदेशमें जहां कपड़े अुतारना भी मुश्किल है वहां हमारे धर्मनिष्ठ लोग पंचस्नानी करते हैं! पानीमें अुंगलियां डुबोकर अुनसे माथेको छूने पर अेक स्नान पूरा हुआ!! दो आंखोंको छूने पर दूसरे दो स्नान हो गये। फिर वही पानीकी बूंदें दो कर्णमूलोंको लगानेसे पंचस्नानी पूरी होती है! पानीके स्पर्शके बिना मनुष्यको अैसा नहीं लगता कि वह पवित्र हो गया है।

मनुष्य जब मर जाता है, तब अुसके शरीरको जिस पृथ्वीसे वह आया अुसीके अुदरमें दफना देनेकी प्रथा सभी जगह है। किन्तु हम लोगोंने अिसमें संशोधन किया। शरीरको सड़ने देनेके बजाय अुसका अग्नि-संस्कार करना हम अधिक श्रेयस्कर मानते हैं। अग्निको हम पावक कहते हैं। पावक यानी पवित्र करनेवाला। कोअी वस्तु चाहे जितनी गंदी हो, सड़ी हुअी हो या अपवित्र हो, अग्नि-संस्कार होने पर वह पावन हो जाती है। अिसीलिअे हम अुपले, लकड़ियां, चंदन, घूप और कपूर जैसे ज्वालाग्राही पदार्थ अेकत्र करके शरीरका अग्नि-संस्कार करते हैं।

यहां तक तो सब ठीक है; किन्तु जीवननिष्ठ संस्कृतिको अितनेसे संतोष नहीं हुआ। अग्नि-संस्कारके अंतमें जो अस्थियां और भस्म बच जाते हैं, अुन अवशेषोंका जब हम पवित्र जलाशयोंमें विसर्जन करते हैं, तभी हमें परम संतोष होता है।

महात्माजीकी अस्थियों और चिताभस्मको हमने सारे देशमें जहां भी पवित्र जलाशय हैं वहां पहुंचा दिया। हिमालयके अुस पार कैलाशके मार्गमें फैले हुअे मानस-सरोवरमें भी कुछ अवशेष छोड़ दिये गये। प्रयाग जैसे यज्ञस्थानमें विसर्जित करनेके बाद कुछ अवशेष समुद्र-किनारे भी ले गये; और खास तौर पर ध्यानमें रखनेकी बात तो यह है कि जिस अफ्रीका खंडमें गांधीजीने सत्याग्रह जैसे दैवी बलकी खोज की और

अपना जीवन-कार्य शुरू किया, अुस अफ्रीकामें नील नदीके अुद्गमके प्रवाहमें भी अिन अस्थियोंका विसर्जन किया और अिस प्रकार पानीकी सर्वोपरि पवित्रताको स्वीकार किया।

अैसे पानीके पवित्र दर्शनका आनंद जिनमें छलकता हो, अैसे ही वर्णन अिस संग्रहमें लिये गये हैं।

संग्रह करते समय मेरी 'स्मरण-यात्रा' में से अेक छोटासा अध्याय सिर अूंचा करके पूछने लगा, "क्या आप मुझे अिसमें नहीं लेंगे?" अनवधानके लिअे अुससे माफी मांगकर मैंने कहा, "जरूर, जरूर; तेरा भी जीवनलीलामें स्थान होगा।" मानसिक सृष्टि, कल्पना-सृष्टि और मायावी सृष्टि भी अंतमें पार्थिव सृष्टिके साथ सृष्टि तो है ही। अतः मनुष्यकी आंखोंको और मृगोंकी आंखोंको जो जलके समान मालूम होता है और जिसका प्रवाह अिन दोनोंको अपनी ओर खींचता है, वह भले प्राणवायु तथा अुद्जन-वायुके संयोगसे बना हुआ न हो, फिर भी जीवनलीलामें अुसका स्थान होना ही चाहिये—यों सोचकर छुटपनमें यात्रा करते समय देखा हुआ 'तेरदालका मृगजल' नामक वर्णन भी अिसमें ले लिया गया है।

सहाराके रेगिस्तानके आसपास दोपहरके समय यदि गया होता, तो अुस विराट् रेगिस्तानका और वहांके मृगजलका वर्णन अिसमें जरूर शामिल करता। किन्तु पश्चिम अफ्रीकासे अुत्तरकी ओर जाते हुअे समय और जान बचानेके लिअे सहाराका पूरा रेगिस्तान मैंने पार किया रातके अंधेरेमें; और वह भी हवाअी जहाजकी मददसे। पश्चिम अफ्रीकाकी मध्ययुगीन नगरी 'कानो' से चलकर मध्यरात्रिके बाद ट्रिपोली पहुंचा तब तक सारे समय टकटकी लगाकर मैंने सहाराको देखा। किन्तु अुस रात अंधेरेमें अंधेरेसे भिन्न कुछ दिखाअी नहीं दिया। सहाराका रेगिस्तान पार करने पर भी वहांका मृगजल नहीं देखा जा सका! जब हवाअी जहाजसे अुतरा, तब अितना ही कह सका:

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनम् नभः।

हमारे संस्कृत कवियोंके नदी-वर्णन और स्तोत्रों पर मैं मुग्ध हूं। अिन स्तोत्रोंमें सबसे अधिक तो भक्ति ही नजर आती है। अुनका

शब्द-लालित्य असाधारण होता है। भाषा-प्रवाह मानो नदीके प्रवाहके साथ होड़ करता है। कहीं कहीं अेकाध शब्दमें या समासमें सुंदर वर्णन भी आ जाता है। किन्तु कुल मिलाकर ये स्तोत्र वर्णन नहीं होते, बल्कि केवल माहात्म्य ही होते हैं।

आज हमें यथार्थ वर्णनोंकी और शब्दचित्रोंकी भूख है। अुनके साथ थोड़ा माहात्म्य और चाहे अुतना काव्य आ जाय तो वह अिष्ट ही होगा। किन्तु वर्णन पढ़ते समय नदी या सरोवरके प्रत्यक्ष दर्शनका थोड़ा-बहुत संतोष तो मिलना ही चाहिये। वरना जैन पुराणोंमें दिये गये नगरियोंके वर्णन जैसी बात होगी। ये वर्णन कहींसे अुठाकर किसी भी शहरके साथ जोड़ दें तो कुछ बिगड़ेगा नहीं। अक्सर लेखक वर्णनकी दो-चार पंक्तियां लिखकर अीमानदारीके साथ कहते हैं कि अमुक कहानीमें अमुक नगरीका जो वर्णन आता है अुसीको अुठाकर यहां रख दें। अैसे वर्णन न तो यथार्थ चित्रण माने जा सकते हैं, न माहात्म्य ही माने जा सकते हैं।

अेक पुराने हिन्दी कविने अेक पहाड़ी किलेका वर्णन किया है। अुसमें अश्वशालाके साथ गजशालाका भी वर्णन है। भोले कविको संदेह नहीं हुआ कि महाराष्ट्रके पहाड़ पर हाथी जायेंगे किस तरह! दूसरे अेक स्थान पर बगीचेके वर्णनमें ठंडे मुल्कके और गरम मुल्कके, समुद्र-तटके और पहाड़ परके सब फल और फूलोंके पेड़-पौधोंको अेकत्र कर दिया गया है! और अिसमें खूबी यह कि अिन तमाम फूलोंके अेकसाथ खिलनेमें और फलोंके अेकसाथ पकनेमें महीनों या अृतुओंकी कोअी कठिनाअी नहीं खड़ी हुअी!

सौभाग्यसे अैसे साहित्य-प्रकार अब बंद हो गये हैं। फिर भी आजके लेखक प्रत्यक्ष परिचयके अभावमें केवल सामान्य वर्णन लिखते हैं: 'आकाशमें तारे चमक रहे थे', 'बगीचेमें तरह तरहके फूल खिले थे', 'जंगलमें वृक्ष-लताओंकी घनी बस्ती थी।' अैसे सामान्य वर्णन लिखकर ही वे संतोष मानते हैं। लेखक आकाशको और वहांके तारोंको पहचानता न हो, अुनके नाम न जानता हो, कौनसे फूल किस अृतुमें खिलते हैं यह न जानता हो, किन जंगलोंमें किस तरहके

पेड़ अुगते हैं और किस तरहके नहीं अुगते आदि जानकारी अुसे न हो, तो फिर वह क्या करे? शब्द-वैभवको फैलाकर अनुभव-दारिद्र्य छिपानेका वह चाहे जितना प्रयत्न करे, फिर भी दारिद्र्य प्रकट हुअे विना नहीं रहता।

हमारे देशमें अब यात्राके साधन काफी बढ़ गये हैं और दिनों-दिन बढ़ते जा रहे हैं। फोटोग्राफीकी कलाकी अितनी वृद्धि हुअी है कि अब वह ललित-कलाकी कोटिको पहुंचनेका प्रयत्न कर रही है। देश-विदेशकी भाषाओंके यात्रा-वर्णन पढ़कर हमारी कल्पना अुद्दीपित हो सकती है, तो अब हम भारतीय भाषाओंमें पाया जानेवाला केवल यात्रा-वर्णनका दारिद्र्य दूर क्यों न करें?

हमारे प्रिय-पूज्य देशको हम साहित्य द्वारा और दूसरे अनेक प्रकारोंसे सजायेंगे और नयी पीढ़ीको भारत-भक्तिकी दीक्षा देंगे।

देशका मतलब केवल जमीन, पानी और अुसके अूपरका आकाश ही नहीं है, बल्कि देशमें बसे हुअे मनुष्य भी हैं। यह जिस तरह हमें जानना चाहिये, अुसी तरह हमारी देशभक्तिमें केवल मानव-प्रेम ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी जैसे हमारे स्वजनोंका प्रेम भी शामिल होना चाहिये।

नदी, पहाड़, पर्वतश्रेणी और अुसके अुत्तुंग शिखरोंसे तथा अिन सबके अूपर चमकनेवाले तारोंसे परिचय बढ़ाकर हमें भारत-भक्तिमें अपने पूर्वजोंके साथ होड़ चलानी चाहिये। हमारे पूर्वजोंकी साधनाके कारण गंगाके समान नदियां, हिमालयके समान पहाड़, जगह जगह फैले हुअे हमारे धर्मक्षेत्र, पीपल या बड़के समान महावृक्ष, तुलसीके समान पौधे, गायके जैसे जानवर, गरुड़ या मोरके जैसे पक्षी, गोपीचंदन या गेरूके जैसे मिट्टीके प्रकार—सब जिस देशमें भक्ति और आदरके विषय बन गये हैं, अुस देशमें संस्कारोंकी और भावनाओंकी समृद्धिको बढ़ाना हमारे जमानेका कर्तव्य है।

दादाभाअी नौरोजी पुण्यतिथि,
बम्बअी, १–६–'५६

काका कालेलकर

सरिता-संस्कृति

जो भूमि केवल वर्षाके पानीसे ही सींची जाती है और जहां वर्षाके आधार पर ही खेती हुआ करती है, अुस भूमिको 'देव-मातृक' कहते हैं। अिसके विपरीत, जो भूमि अिस प्रकार वर्षा पर आधार नहीं रखती, बल्कि नदीके पानीसे सींची जाती है और निश्चित फसल देती है, अुसे 'नदी-मातृक' कहते हैं। भारतवर्षमें जिन लोगोंने भूमिके अिस प्रकार दो हिस्से किये, अुन्होंने नदीको कितना महत्त्व दिया था, यह हम आसानीसे समझ सकते हैं। पंजाबका नाम ही अुन्होंने सप्तसिंधु रखा। गंगा-यमुनाके बीचके प्रदेशोंको अंतर्वेदी (दोआब) नाम दिया। सारे भारतवर्षके 'हिन्दुस्तान' और 'दक्खन' जैसे दो हिस्से करनेवाले विन्ध्याचल या सतपुड़ेका नाम लेनेके बदले हमारे लोग संकल्प बोलते समय 'गोदावर्याः दक्षिणे तीरे' या 'रेवायाः अुत्तरे तीरे' अैसे नदीके द्वारा देशके भाग करते हैं। कुछ विद्वान ब्राह्मण-कुलोंने तो अपनी जातिका नाम ही अेक नदीके नाम पर रखा है — सारस्वत। गंगाके तट पर रहनेवाले पुरोहित और पंडे अपने-आपको गंगापुत्र कहनेमें गर्व अनुभव करते हैं। राजाको राज्यपद देते समय प्रजा जब चार समुद्रोंका और सात नदियोंका जल लाकर अुससे राजाका अभिषेक करती, तभी मानती थी कि अब राजा राज्य करनेके लिअे अधिकारी हो गया। भगवानकी नित्यकी पूजा करते समय भी भारतवासी भारतकी सभी नदियोंको अपने छोटेसे कलशमें आकर बैठनेकी प्रार्थना अवश्य करेगा :

गंगे! च यमुने! चैव गोदावरि! सरस्वति!।
नर्मदे! सिंधु! कावेरि! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

भारतवासी जब तीर्थयात्राके लिअे जाता है, तब भी अधिकतर वह नदीके ही दर्शन करनेके लिअे जाता है। तीर्थका मतलब है नदीका पैंछल या घाट। नदीको देखते ही अुसे अिस बातका होश नहीं रहता कि जिस नदीमें स्नान करके वह पवित्र होता है अुसे अभिषेककी क्या आवश्यकता है? गंगाका ही पानी लेकर गंगाको अभिषेक किये बिना अुसकी भक्तिको संतोष नहीं मिलता। सीताजी जब रामचंद्रजीके साथ

वनवासके लिअे निकल पड़ीं, तब वे हर नदीको पार करते समय मनौती मनाती जाती थीं कि वनवाससे सही-सलामत वापस लौटने पर हम तुम्हारा अभिषेक करेंगे। मनुष्य जब मर जाता है, तब भी अुसे वैतरणी नदीको पार करना पड़ता है। थोड़ेमें, जीवन और मृत्यु दोनोंमें आर्योंका जीवन नदीके साथ जुड़ा हुआ है।

अुनकी मुख्य नदी तो है गंगा। वह केवल पृथ्वी पर ही नहीं, बल्कि स्वर्गमें भी बहती है और पातालमें भी बहती है। अिसीलिअे वे गंगाको त्रिपथगा कहते हैं।

पाप धोकर जीवनमें आमूलाग्र परिवर्तन करना हो, तब भी मनुष्य नदीमें जाता है और कमर तक पानीमें खड़ा रहकर संकल्प करता है, तभी अुसको विश्वास होता है कि अब अुसका संकल्प पूरा होनेवाला है। वेदकालके अृषियोंसे लेकर व्यास, वाल्मीकि, शुक, कालिदास, भवभूति, क्षेमेंद्र, जगन्नाथ तक किसी भी संस्कृत कविको ले लीजिये, नदीको देखते ही अुसकी प्रतिभा पूरे वेगसे बहने लगती है। हमारी किसी भी भाषाकी कविताअें देख लीजिये, अुनमें नदीके स्तोत्र अवश्य मिलेंगे। और हिन्दुस्तानकी भोली जनताके लोकगीतोंमें भी आपको नदीके वर्णन कम नहीं मिलेंगे।

गाय, बैल और घोड़े जैसे अुपयोगी पशुओंकी जातियां तय करते समय भी हमारे लोगोंको नदीका ही स्मरण होता है। अच्छे अच्छे घोड़े सिंधुके तट पर पाले जाते थे; अिसलिअे घोड़ोंका नाम ही सैंधव पड़ गया। महाराष्ट्रके प्रख्यात टट्टू भीमा नदीके किनारे पाले जाते थे, अतः वे भीमथड़ीके टट्टू कहलाये। महाराष्ट्रकी अच्छा दूध देनेवाली और सुंदर गायोंको अंग्रेज आज भी 'कृष्णावेली ब्रीड' कहते हैं।

जिस प्रकार ग्राम्य पशुओंकी जातिके नाम नदी परसे रखे गये हैं, अुसी प्रकार कअी नदियोंके नाम पशु-पक्षियों परसे रखे गये हैं। जैसे : गो-दा, गो-मती, सावर-मती, हाथ-मती, वाघ-मती, सारस्वती, चर्मण्वती आदि।

महादेवकी पूजाके लिअे प्रतीकके रूपमें जो गोल चिकने पत्थर (वाण) अुपयोगमें लाये जाते हैं, वे नर्मदाके ही होने चाहिये। नर्मदाका

माहात्म्य अितना अधिक है कि वहांके जितने कंकर अुतने सब शंकर होते हैं। और वैष्णवोंके शालिग्राम गंडकी नदीसे आते हैं।

तमसा नदी विश्वामित्रकी बहन मानी जाती है, तो कालिन्दी यमुना प्रत्यक्ष कालभगवान यमराजकी बहन है।

प्रत्येक नदीका अर्थ है संस्कृतिका प्रवाह। प्रत्येककी खूबी अलग है। मगर भारतीय संस्कृति विविधतामें से अेकताको अुत्पन्न करती है। अतः सभी नदियोंको हमने सागर-पत्नी कहा है। समुद्रके अनेक नामोंमें अुसका सरित्पति नाम बड़े महत्त्वका है। समुद्रका जल अिसी कारण पवित्र माना जाता है कि सब नदियां अपना अपना पवित्र जल सागरको अर्पण करती हैं। 'सागरे सर्वं तीर्थानि'।

जहां दो नदियोंका संगम होता है, अुस स्थानको प्रयाग कहकर हम पूजते हैं। यह पूजा हम केवल अिसीलिअे करते हैं कि संस्कृतियोंका जब मिश्रण या संगम होता है तब अुसे भी हम शुभ-संगम समझना सीखें। स्त्री-पुरुषके बीच जब विवाह होता है तब वह भिन्न-गोत्री ही होना चाहिये, अैसा आग्रह रखकर हमने यही सूचित किया है कि अेक ही अपरिवर्तनशील संस्कृतिमें सड़ते रहना श्रेयस्कर नहीं है। भिन्न भिन्न संस्कृतियोंके बीच मेलजोल पैदा करनेकी कला हमें आनी ही चाहिये। 'लंकाकी कन्या घोघा (सौराष्ट्र) के लड़केके साथ विवाह करती है', तभी अुन दोनोंमें जीवनके सब प्रश्नोंके प्रति अुदार दृष्टिसे देखनेकी शक्ति आती है। भारतीय संस्कृति पहलेसे ही संगम-संस्कृति रही है। हमारे राजपुत्र दूर दूरकी कन्याओंसे विवाह करते थे। केकय देशकी कैकेयी, गांधारकी गांधारी, कामरूपकी चित्रांगदा, ठेठ दक्षिणकी मीनाक्षी मीनलदेवी, बिलकुल विदेशसे आयी हुअी अुर्वशी और महाश्वेता — अिस तरह कअी मिसालें बताअी जा सकती हैं। आज भी राजा-महाराजा यथासंभव दूर दूरकी कन्याओंसे विवाह करते हैं। हमने नदियोंसे ही यह संगम-संस्कृति सीखी है।

अपनी अपनी नदीके प्रति हम सच्चे रहकर चलेंगे, तो अंततः समुद्रमें पहुंच जायेंगे। वहां कोअी भेदभाव नहीं रह सकता। सब कुछ अेकाकार, सर्वाकार और निराकार हो जाता है। 'सा काष्ठा सा परा गतिः'।

नदी-मुखेनैव समुद्रम् आविशेत्

सुबह या शामके समय नदीके किनारे जाकर आरामसे बैठने पर मनमें तरह तरहके विचार आते हैं। बालूका शुभ्र विशाल पट हमेशा वहीका वही होता है; फिर भी वहांका हरअेक कण पवन या पानीसे स्थानभ्रष्ट होता है। अितनी सारी बालू कहांसे आती है और कहां जाती है? बालूके पट पर चलनेसे अुसमें पांवोंके स्पष्ट या अस्पष्ट निशान बनते हैं। किन्तु घड़ी दो घड़ी हवा बहने पर अुनका 'नामोनिशान' भी नहीं रहता। दो किनारोंकी मर्यादामें रहकर नदी बहती है; वह कभी रुकती नहीं। पानी आता है और जाता है, आता है और जाता है। छुटपनमें मनमें विचार आता था कि 'मध्यरात्रिके समय यह पानी सो जाता होगा और सुबह सबसे पहले जागकर फिरसे बहने लगता होगा। सूरज, चांद और अनगिनत तारे जिस प्रकार विश्रांति लेनेके लिअे पश्चिमकी ओर अुतरते हैं, अुसी प्रकार यह पानी भी रातको सो जाता होगा। विश्रांतिकी हरेकको आवश्यकता रहती है।' बादमें देखा, नहीं, नदीके पानीको विश्रांतिकी आवश्यकता नहीं है। वह तो निरन्तर बहता ही रहता है।

नदीको देखते ही मनमें विचार आता है—यह आती कहांसे है और जाती कहां तक है? यह विचार या यह प्रश्न सनातन है। नदीका आदि और अंत होना ही चाहिये। नदीको जितनी बार देखते हैं, अुतनी ही बार यह सवाल मनमें अुठता है। और यह सवाल ज्यों ज्यों पुराना होता जाता है, त्यों त्यों अधिक गंभीर, अधिक काव्यमय और अधिक गूढ़ बनता जाता है। अंतमें मनसे रहा नहीं जाता, पैर रुक नहीं पाते। मन अेकाग्र होकर प्रेरणा देता है और पैर चलने लगते हैं। आदि और अंत ढूंढ़ना—यह सनातन खोज हमें शायद नदीसे ही मिली होगी। अिसीलिअे हम जीवन-प्रवाहको भी नदीकी अुपमा देते आये हैं। अुपनिषद्कार और अन्य भारतीय कवि, मैथ्यू आर्नोल्ड जैसे युरोपियन कवि और रोमां रोलां जैसे अुपन्यासकार जीवनको नदीकी ही अुपमा

देते हैं। अिस संसारका प्रथम यात्री है नदी। अिसीलिअे पुराने यात्री लोगोंने नदीके अुद्गम, नदीके संगम और नदीके मुखको अत्यंत पवित्र स्थान माना है।

जीवनके प्रतीकके समान नदी कहांसे आती है और कहां तक जाती है? शून्यमें से आती है और अनंतमें समा जाती है। शून्य यानी अत्यल्प, सूक्ष्म किन्तु प्रबल; और अनंतके मानी हैं विशाल और शांत। शून्य और अनंत, दोनों अेकसे गूढ़ हैं, दोनों अमर हैं। दोनों अेक ही हैं। शून्यमें से अनंत — यह सनातन लीला है। कौशल्या या देवकीके प्रेममें समा जानेके लिअे जिस प्रकार परब्रह्मने बालरूप धारण किया, अुसी प्रकार कारुण्यसे प्रेरित होकर अनंत स्वयं शून्यरूप धारण करके हमारे सामने खड़ा रहता है। जैसे जैसे हमारी आकलन-शक्ति बढ़ती है, वैसे वैसे शून्यका विकास होता जाता है और अपना ही विकास-वेग सहन न होनेसे वह मर्यादाका अुल्लंघन करके या अुसे तोड़कर अनंत बन जाता है — बिंदुका सिंधु बन जाता है।

मानव-जीवनकी भी यही दशा है। व्यक्तिसे कुटुंब, कुटुंबसे जाति, जातिसे राष्ट्र, राष्ट्रसे मानव्य और मानव्यसे भूमा विश्व — अिस प्रकार हृदयकी भावनाओंका विकास होता जाता है। स्व-भाषाके द्वारा हम प्रथम स्वजनोंका हृदय समझ लेते हैं और अंतमें सारे विश्वका आकलन कर लेते हैं। गांवसे प्रान्त, प्रान्तसे देश और देशसे विश्व, अिस प्रकार हम 'स्व'का विकास करते करते 'सर्व'में समा जाते हैं।

नदीका और जीवनका क्रम समान ही है। नदी स्वधर्म-निष्ठ रहती है और अपनी कूल-मर्यादाकी रक्षा करती है, अिसीलिअे प्रगति करती है। और अंतमें नामरूपको त्यागकर समुद्रमें अस्त हो जाती है। अस्त होने पर भी वह स्थगित या नष्ट नहीं होती; चलती ही रहती है। यह है नदीका क्रम। जीवनका और जीवन्मुक्तिका भी यही क्रम है।

क्या अिस परसे हम जीवनदायी शिक्षाके क्रमके बारेमें बोध लेंगे?

१९२२

अुपस्थान*

भिन्न भिन्न अवसरों पर भारतवर्षकी जिन नदियोंके दर्शन मैंने किये, अुनमें से कुछ नदियोंका यहां स्मरण किया गया है। यहां मेरा अुद्देश भूगोलमें दी जानेवाली जानकारीका संग्रह करनेका नहीं है, न नदियोंका हमारे व्यापार-वाणिज्य पर होनेवाला असर बतानेका यहां प्रयत्न है। यह तो केवल हमारे देशकी लोकमाताओंका भक्तिपूर्वक किया हुआ नये प्रकारका अुपस्थान है।

हमारे पूर्वजोंकी नदी-भक्ति लोक-विश्रुत है। आज भी वह क्षीण नहीं हुअी है। यात्रियोंकी छोटी-बड़ी नदियां तीर्थस्थानोंकी ओर बहकर यही सिद्ध करती हैं कि वह प्राचीन भक्ति आज भी जैसीकी वैसी जाग्रत है।

भक्त-हृदय भक्तिके अिन अुद्गारोंका श्रवण करके संतुष्ट हों। युवकोंमें लोकमाताओंके दर्शन करनेकी और विविध ढंगसे अुनका स्तन्यपान करके संस्कृति-पुष्ट होनेकी लगन जाग्रत हो।

* * *

हिन्दुस्तानके सभी सुन्दर स्थलोंका वर्णन करना मानव-शक्तिके बाहरकी बात है। खुद भगवान व्यास जब भारतकी नदियोंके नाम सुनाने बैठे, तब अुनको भी कहना पड़ा कि जितनी नदियां याद आयीं अुन्हींका यहां नाम-संकीर्तन किया गया है। बाकीकी असंख्य नदियां रह गयी हैं।

मेरी देखी हुअी नदियोंमें से बन सके अुतनी नदियोंका स्मरण और वर्णन करके पावन होनेका मेरा संकल्प था। आज जब अिस भक्ति-कुसुमांजलिको देखता हूं, तो मनमें विषाद पैदा होता है कि कृतज्ञता व्यक्त हो सके अुतनी नदियोंका भी अुपस्थान मैं कर नहीं सका हूं। जिनका वर्णन नहीं कर सका, अुन्हीं नदियोंकी संख्या अधिक है। जिस प्रांतमें मैं करीब पाव सदी तक रहा, अुस गुजरातकी नदियोंका वर्णन भी मैंने नहीं किया है। नर्मदा और साबरमतीके बारेमें तो अभी अभी कुछ लिख सका हूं। ताप्ती या तपतीके बारेमें कुछ न हीं लिखा। अुसका परिताप मनमें है ही। अिस नदीका अुद्गम-स्थान मध्यप्रांतमें बैतुलके पास है। बरहानपुर और भुसावल

* मूल गुजराती पुस्तक 'लोकमाता' की प्रस्तावनासे।

होकर वह आगे बढ़ती है। अुसकी मदद लेकर अेक बार मैं सूरतसे हजीरा तक हो आया हूं। ताप्तीसे भगवान सूर्यनारायणके प्रेमके बारेमें पूछा जा सकता है और अंग्रेजोंने व्यापारके बहाने सूरतमें कोठी किस प्रकार डाली और बाजीरावने यहीं महाराष्ट्रका स्वातंत्र्य अंग्रेजोंको कब सौंप दिया, अिसके बारेमें भी पूछा जा सकता है।

गोधरा जाते समय जो छोटी-सी मही नदी मैंने देखी थी, वही खंभातसे कावी बंदरगाह तक महापंक कीचड़का विस्तार किस तरह फैला सकती है, यह देखनेका सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ है। पूर्वकी महानदी और पश्चिमकी मही नदी, दोनोंका कार्य विशेष प्रकारका है। सूर्या, दमणगंगा, कोलक, अंबिका, विश्वामित्री, कीम आदि अनेक पश्चिम-वाहिनी नदियोंका मीठा आतिथ्य मैंने कभी न कभी चखा है। अुन्हें यदि अंजलि अर्पण न करूं तो मैं कृतघ्न माना जाअूंगा। और जिस आजीके किनारे महात्माजीने छुटपनकी शरारतें की थीं, वह तो खास तौर पर मेरी अंजलिकी अधिकारिणी है। वढ़वाणकी भोगावोके बारेमें मैंने शायद कहीं लिखा होगा। किन्तु वह भोगावोकी अपेक्षा राणकदेवीके स्मरणके तौर पर ही होगा।

गुजरातके बाहर नजर घुमाकर दूसरी नदियोंका स्मरण करता हूं, तब प्रथम याद आता है सबसे बड़ा ब्रह्मपुत्र। अुसका अुद्गम-स्थान तो हिमालयके अुस पार मानस-सरोवरके प्रदेशमें है। हिमालयके अुत्तरकी ओर बहते हुअे पानीकी अेक अेक बूंद अिकट्ठी करके वह हिमालयकी सारी दीवार पार करता है और पहाड़ों तथा जंगलोंके अज्ञात प्रदेशोंमें बहता हुआ आसामकी ओर अुन्हें छोड़ देता है। बादमें सदिया, डिब्रुगढ़, तेजपुर, गौहाटी, ढुब्री आदि स्थानोंको पावन करता हुआ वह बंगालमें अुतरता है। और अुसे गंगासे मिलना है, अिसी कारण वह कुछ दूरी तक यमुना नाम धारण करते हुअे आगे पद्मा बनता है। 'अितिहासके अुषाकाल' से लेकर जापानियोंके अभी अभीके आक्रमण तकका सारा अितिहास ब्रह्मपुत्रको विदित है। किन्तु अिस ताजे अितिहासके कअी प्रकरण तो मणिपुरकी अिम्फाल नदी ही बता सकती है। फिर भी अिस नदीको पूछने पर वह कहेगी कि मुझसे

पूछनेके बदले यह सब आपकी ऐरावतीकी सखी छिंदवीनसे ही पूछ लीजिये। और मणिपुरकी ओरसे भागकर आये हुओ लोगोंका कुछ इतिहास तो सुर्मा-घाटीकी बराक नदीसे ही पूछना होगा।

मैंने नदियां तो कओ देखी हैं। किन्तु जिसकी गूढ़-गामिता और चिंता-रहित लापरवाही पर मैं सबसे अधिक मुग्ध हुआ हूं, वह है कालीम्पोंग तरफकी तीस्ता नदी। कैसा तो अुसका अुन्माद! और कैसा अुसका आत्म-गौरवका भान!

अुत्कलमें मैं अनेक बार हो आया हूं। वहांकी महानदी, काटजुड़ी और काकपेया तो हैं ही। किन्तु बरी-कटकसे वापस लौटते समय खरस्रोताके किनारे देखा हुआ सूर्योदय और अन्य अवसर पर सुना हुआ ऋषिकुल्या नदीका इतिहास तथा अुसके किनारेका सौंदर्य मैं भला कैसे भूल सकता हूं? जौगढ़का अशोकका प्रख्यात शिलालेख देखने गया था, तब मैंने ऋषिकुल्याके दर्शन किये थे; और यदि मैं भलता न होअूं तो धवलीका हाथीवाला शिलालेख देखने गया था, तब अेक नदीकी दो नदियां बनती हुओ मैंने देखी थीं। दो नदियोंका संगम देखना अेक बात है। दो नदियां अिकट्ठी होकर अपनी जलराशि बढ़ाती हैं और संभूय-समुत्थानके सिद्धांतके अनुसार बड़ा व्यापार करती हैं। यह तो शक्ति बढ़ानेका प्रयास है। किन्तु अेक ही नदी दूरसे आकर जब देखती है कि दोनों ओरके प्रदेशको मेरे जलकी अुतनी ही आवश्यकता है, तब भला वह किसका पक्षपात करे? अपना जल बांटकर जब दो प्रवाहोंमें वह बहने लगती है, तब दो बच्चोंकी माताके जैसी मालूम होती है। अुसको विशेष भक्तिपूर्वक प्रणाम किये बिना रहा नहीं जा सकता।

क्या आपने काली नदीके सफेद होनेकी बात कभी सुनी है? छुटपनमें कारवारमें मैंने अेक काली नदी देखी थी। वह समुद्रसे मिलती है तब तक काली ही काली रहती है। किन्तु गोवाकी ओर अेक काली नदी है, जो सागरसे मिलनेकी आतुरताके कारण पहाड़की चोटी परसे नीचे अिस तरह कूदती है कि अुसका दूधके समान काव्यमय सफेद प्रपात बन जाता है। अुसका नाम ही दूधसागर पड़ गया है। अिस दूधसागरका दृश्य अैसा है, मानो किसी लड़कीने नहानेके बाद सुखानेके

लिये अपने बाल फैलाये हों। शरावतीके जोगके प्रपातका वर्णन मैंने तीन बार किया है, तो दूधसागरके गंभीर ललित काव्यका मनन मुझे दस बार करना चाहिये था।

हिमालय जाते समय देखी हुअी रामगंगाका और हिमालयके अुस पारसे आनेवाली सरयू घाघराका वर्णन तो रह ही गया है। किन्तु लंका (सीलोन) में देखी हुअी सीतावाका और अन्य दो तीन गंगाओंके बारेमें भी मैंने कहां लिखा है? मध्यप्रांतमें देखी हुअी घसानके बारेमें मैंने लिखा और वेत्रवतीको छोड़ दिया, यह भला कैसे चल सकता है? अुज्जयिनी जाते समय देखी हुअी शिप्रा नदीको स्मरणांजलि न दूं, तो कालिदास ही मुझे शाप देंगे। मुरादाबादमें देखी हुअी गोमतीका स्मरण करते ही द्वारकाकी गोमतीका स्मरण हो आता है और अिसी न्यायसे सिंधकी सिंधुके साथ मध्यभारतकी नन्ही-सी सिंधुकी भी याद हो आती है।

काठियावाड़में चोरवाड़के पास समुद्रसे मिलने जाते जाते बीचमें ही रुक जानेवाली मेगल नदी मैंने देखी नहीं है। किन्तु अिसी प्रकारकी अेक नदी अड्यार मद्रासके पास मैंने देखी है, जिसकी समुद्रसे बनती नहीं। अड्यार नदी समुद्रकी ओर हृदय-समृद्धिका खाद या गाद लेकर आती है और समुद्र चिढ़कर अुसके सामने बालूका अेक बांध खड़ा कर देता है। खंडिताका यह दृश्य अितना करुण है कि अुसका असर बरसों तक मेरे मन पर रहा है।

अिससे तो केरलके 'बैक वॉटर' अच्छे हैं। वहां समुद्रके समानान्तर, किनारे किनारे अेक लंबी नदी फैली हुअी है, मानो समुद्रसे कह रही हो कि तुम्हारे खारे पानीके तूफान मैं भारतकी भूमि तक पहुंचने नहीं दूंगी।

अिसका अेक छोटा-सा नमूना हमें जुहूकी ओर देखनेको मिलता है। जुहूके नारियलवाले प्रदेशके पश्चिममें समुद्र है, और पूर्वकी ओर कभी कभी पानी फैला हुआ दीख पड़ता है। यही स्थिति यदि हमेशाकी हो जाये और पानी यदि अुत्तर-दक्षिणकी ओर सौ पचास मील तक फैल जाये, तो बंबअीके लोगोंको केरलके 'बैक वॉटर्स' का कुछ खयाल हो सकेगा। किन्तु केरलके अुस हिस्सेका नृष्टि-सौन्दर्य प्रत्यक्ष देखे बिना ध्यानमें नहीं आयेगा।

सिंधके कमल-सुंदर मंचर सरोवरके वारेमें मैंने थोड़ा-सा लिखा है। किन्तु अुत्कलमें देखे हुअे चिल्का सरोवरके वारेमें लिखना अभी वाकी है। लॉर्ड कर्जनने अेक वार कहा था कि "हिन्दुस्तानमें श्रेष्ठ सौंदर्य-धाम यदि कोअी हो तो वह चिल्का सरोवर ही है।" स्वीडन और नार्वेकी समुद्र-शाखाके चित्र जव जव मैं देखता हूं, तव तव मुझे अेक वार देखे हुअे चिल्का सरोवरका स्मरण हुअे विना नहीं रहता। अुत्कलके अेक कविने अिस सरोवर पर अेक सुन्दर सुदीर्घ काव्य लिखा है।

* * *

नदियों और सरोवरोंके वारेमें लिखनेके वाद जीवन-तर्पण पूरा करनके लिअे मुझे हिन्दुस्तान, ब्रह्मदेश और सीलोनके किनारे किये हुअे विशिष्ट समुद्र-दर्शनोंका वर्णन भी लिख डालना चाहिये। कराची, कच्छ और काठियावाड़से लेकर वम्वअी, दाभोळ, कारवार या गोकर्ण तकका समुद्र-तट, अुसके वाद कालिकटसे लेकर रामेश्वरम् और कन्याकुमारी तकका दक्षिणका किनारा, वहांसे अूपर पांडिचेरी, मद्रास, मछलीपट्टम्, विजगापट्टम् आदि सूर्योदयका पूर्व किनारा और अंतमें गोपालपुर, चांदीपुर, कोणार्क और पुरी-जगन्नाथसे लेकर ठेठ हीरावंदर तकका दक्षिणाभिमुख समुद्र-तट जव याद आता है, तव कमसे कम पचास-पचहत्तर दृश्य अेक ही साथ नजरके सामने विश्वरूप दर्शनकी तरह अद्भुत ज्वार-भाटा चलाते हैं। सीलोन और रंगूनके दृश्य तो अपना व्यक्तित्व रखते ही हैं। दिलमें यह सारा आनंद अितना भरा हुआ है कि वाणीके द्वारा अुसे अेकसाथ यदि वहा दूं, तो समुद्रसे निकलकर अनेक दिशाओंमें वहनेवाली अेक नयी अलौकिक सरस्वती पैदा हो जायगी। कुछ नहीं तो दिलको हलका करनेके लिअे ही अिन सव संस्मरणोंको गति देनी होगी।

हिन्दुस्तानके पहाड़ और जंगल, रेगिस्तान और मैदान, शहर और गांव, सव प्रतीक्षा कर रहे हैं। गांवोंका पुरस्कार करनेके हेतु मैं शहरोंकी कितनी ही निन्दा क्यों न करूं और काम पूरा होनेके पहले ही शहरोंसे भागनेकी अिच्छा भी क्यों न करूं, फिर भी शहरोंका व्यक्तित्व मैं पहचान सकता हूं। अुनके प्रति भी मैं प्रेम-भक्तिका भाव रखता हूं। क्या भारतके सव शहर मेरे देशवासियोंके पुरुषार्थके प्रतीक नहीं

हैं? क्या शहरोंमें संस्कारिताकी पेढ़ियां हमारे लोगोंने स्थापित नहीं की हैं? क्या हरेक शहरने अपना वायुमंडल, अपनी टेक, अपना पुरुषार्थ अखंड रूपसे नहीं चलाया है? शहर यदि गांवोंके भक्षक या शोषक मिटकर अुनके पोषक बन जायें, तो अुन्हें भी हरेक समाज-हितचिंतकके आशीर्वाद मिले बिना नहीं रहेंगे।

मेरी दृष्टिसे तो हिन्दुस्तानमें देखे हुअे अनेकानेक स्मशान भी मेरी भक्तिके विषय हैं। फिर वह चाहे हरिश्चंद्र द्वारा रक्षित काशीका स्मशान हो, दिल्लीके आसपासके अनेक राजधानियोंके स्मशान हों, या महायुद्धके बाद अभी आसाममें देखे हुअे मृतक हवाअी जहाजोंके अवशेष-रूप दो तीन चमकीले स्मशान हों। स्मशान तो स्मशान ही हैं। अुन्हें देखते ही मनुष्योंके तथा राजवंशोंके, साम्राज्योंके और संस्कृतियोंके जन्म-मरणके बारेमें गहरे विचार मनमें अुठे बिना नहीं रह सकते।

जिसमें खुद मुझे जाना है, अुस अेक स्मशानको छोड़कर बाकीके सब स्मशानोंका वर्णन करनेकी अिच्छा हो आती है। यह यदि संभव न हो तो जिस प्रकार युद्धमें 'काम आये हुअे' अज्ञात वीरोंको और श्राद्धके समय अज्ञात संबंधियोंको अेक सामान्य पिंड या अंजलि अर्पण की जाती है, अुसी प्रकार हरिश्चन्द्र, विक्रम, भर्तृहरि और महादेवके अुपासक असंख्य योगियोंने जिस स्मशानको अपना निवास बनाया, अुस प्रातिनिधिक 'सर्व-सामान्य स्मशान' को अेक अंजलि अर्पण करनेकी अिच्छा तो है ही।

क्या यह सब मैं कर सकूंगा? मुझे अिसकी चिंता नहीं है। अैसी बात नहीं है कि सिर्फ अीश्वर ही अवतार धारण करता है। जिस जिसके मनमें संकल्प अुठते हैं, अुस अुसको अवतार लेने ही पड़ते हैं। यह भी माननेकी आवश्यकता नहीं है कि अेक ही जीवात्मा अनेक अवतार धारण करता है। अवतार धारण करना पड़ता है अदम्य संकल्पको। अदम्य संकल्प ही सच्चा विधाता है। संकल्प पैदा हुआ कि अुसमें से सृष्टि अुत्पन्न होगी ही। फिर वह भले ब्रह्मदेवकी पार्थिव सृष्टि हो, साहित्यकी शब्द-सृष्टि हो, या केवल कल्पनाकी चित्र-सृष्टि हो।

अिस सृष्टिके द्वारा जीवन-देवता अपना अनंत-विध अुल्लास प्रकट करता ही रहता है।

अनुक्रमणिका

प्रास्ताविक

जीवनलीला ३

सरिता-संस्कृति ११

नदी-मुखेनैव समुद्रम् आविशेत् १४

अुपस्थान १६

१. सखी मार्कंण्डी ३

२. कृष्णाके संस्मरण ५

३. मुळा-मुठाका संगम ११

४. सागर-सरिताका संगम १४

५. गंगामैया १७

६. यमुनारानी २१

७. मूल त्रिवेणी २५

८. जीवनतीर्थ हरिद्वार २६

९. दक्षिणगंगा गोदावरी ३०

१०. वेदोंकी धात्री तुंगभद्रा ३९

११. नेल्लूरकी पिनाकिनी ४२

१२. जोगका प्रपात ४८

१३. जोगके प्रपातका पुनर्दर्शन. ६३

१४. जोगका सूखा प्रपात ७२

१५. गुर्जर-माता सावरमती ७८

१६. अुभयान्वयी नर्मदा ८४

१७. संध्यारस ९१

१८. रेणुकाका शाप ९५

१९. अंबा-अंबिका ९७

*२०. लावण्यफला लूनी ९८
२१. अंचळ्ळीका प्रपात १००
२२. गोकर्णकी यात्रा १०६
२३. भरतकी आंखोंसे ११६
२४. वेळगंगा—सीताका स्नान-स्थान ११९
२५. कृपक नदी घटप्रभा १२४
२६. कश्मीरकी दूधगंगा १२४
२७. स्वर्धुनी वितस्ता १२६
२८. सेवाव्रता रावी १३०
२९. स्तन्यदायिनी चिनाव १३४
३०. जम्मूकी तवी अथवा तावी १३६
३१. सिन्धुका विषाद १३७
३२. मंचरकी जीवन-विभूति १४२
३३. लहरोंका ताण्डवयोग १४८
३४. सिन्धुके बाद गंगा १५३
३५. नदी पर नहर १६०
३६. नेपालकी बाघमती १६३
३७. बिहारकी गंडकी १६५
३८. गयाकी फल्गु १६७
३९. गरजता हुआ शोणभद्र १६८
४०. तेरदालका मृगजल १६९
४१. चर्मण्वती चम्बल १७१
४२. नदीका सरोवर १७३
४३. निशीथ-यात्रा १७७
४४. बुयांधार १८९
४५. शिवनाथ और अीव १९४
४६. दुर्दैवी शिवनाथ १९८
*४७. सूर्याका स्रोत २००
४८. अवरी अीव २०५

४९. तेंदुला और सुखा २०७
*५०. अपिकुल्याका क्षमापन २११
५१. सहस्रधारा २१४
*५२. गुच्छुपानी २२०
*५३. नागिनी नदी तीस्ता २२६
*५४. परशुराम कुंड २३१
*५५. दो मद्रासी बहनें २३५
*५६. प्रथम समुद्र-दर्शन २३९
*५७. छप्पन सालकी भूख २४३
५८. मरुस्थल या सरोवर २५३
५९. चांदीपुर २५६
६०. सार्वभौम ज्वार-भाटा २६१
६१. अर्णवका आमंत्रण २६३
६२. दक्षिणके छोर पर २७१
६३. कराची जाते समय २८२
६४. समुद्रकी पीठ पर २८४
६५. सरोविहार २९२
६६. सुवर्णदेशकी माता ऐरावती २९४
६७. समुद्रके सहवासमें २९९
*६८. रेखोल्लंघन ३०६
६९. नीलोत्री ३०८
*७०. वर्षा-गान ३१६
अनुबन्ध ३२२
सूची ४२३

जीवनलीला

१

सखी मार्कण्डी

क्या हरअेक नदी माता ही होती है? नहीं। मार्कण्डी तो मेरी छुटपनकी सखी है। वह अितनी छोटी है कि मैं अुसे अपनी बड़ी बहन भी नहीं कह सकता।

बेलगुंदीके हमारे खेतमें गूलरके पेड़के नीचे दुपहरकी छायामें जाकर बैठूं तो मार्कण्डीका मंद पवन मुझे जरूर बुलायेगा। मार्कण्डीके किनारे मैं कअी बार बैठा हूं, और पवनकी लहरोंसे डोलती हुअी घासकी पत्तियोंको मैंने घंटों तक निहारा है। मार्कण्डीके किनारे असाधारण- अद्‌भुत कुछ भी नहीं है। न कोअी खास किस्मके फूल हैं, न तरह तरहके रंगोंकी तितलियां हैं। सुन्दर पत्थर भी वहां नहीं हैं। अपने कलकूजनसे चित्तको बेचैन कर डालें अैसे छोटे-बड़े प्रपात भला वहां कहांसे हों? वहां है केवल स्निग्ध शांति।

गड़रिये बताते हैं कि मार्कण्डी वैजनाथके पहाड़से आती है। अुसका अुद्‌गम खोजनेकी अिच्छा मुझे कभी नहीं हुअी। हमारे तालुकेका नकशा हाथमें आ जाय तो भी अुसमें मार्कण्डीकी रेखा मैं नहीं खोजूंगा। क्योंकि वैसा करनेसे वह सखी मिटकर नदी बन जायगी! मुझे तो अुसके पानीमें अपने पांव छोड़कर बैठना ही पसंद है। पानीमें पांव डाला कि फौरन अुसकी कलकल कलकल आवाज शुरू हो जाती है। छुटपनमें हम दोनों कितनी ही बातें किया करते थे। अेक-दूसरेका सहवास ही हमारे आनंदके लिअे काफी हो जाता था। मार्कण्डी क्या बता रही है यह जाननेकी परवाह न मुझे थी, न मैं जो कुछ बोलता हूं अुसका अर्थ समझनेके लिअे वह रुकती थी। हम अेक-दूसरेसे बोल रहे हैं, अितना ही हम दोनोंके लिअे काफी था। भाअी-बहन जब बरसों बाद मिलते हैं, तब अेक-दूसरेसे हजारों सवाल पूछा करते हैं। किन्तु अिन सवालोंके पीछे जिज्ञासा नहीं होती। वह तो प्रेम व्यक्त करनेका केवल

अेक तरीका होता है। प्रश्न क्या पूछा और अुत्तर क्या मिला, अिस ओर ध्यान दे सके अितना स्वस्थ चित्त भला प्रेम-मिलनके समय कैसे हो?

मार्कण्डीके किनारे किनारे मैं गाता हुआ घूमता और मार्कण्डी अुन गीतोंको सुनती जाती। सोलहवें वर्षकी आयुमें शिव-भक्तिके बल पर जिन्होंने यमराजको पीछे ढकेल दिया अुन मार्कण्डेय ऋषिका अुपाख्यान गाते समय मुझे कितना आनंद मालूम होता था!

मृकंडु ऋषिके कोअी संतान न थी। अुन्होंने तपश्चर्या की और महादेवजीको प्रसन्न किया। महादेवजीने वरदानमें विकल्प रखा।

साधू सुंदर शाहणा सुत तया सोळाच वर्षे मिती
जो कां मूढ कुरूप तो शतवरी वर्षे असे स्व-स्थिती
या दोहींत जसा मनांत रुचला तो म्यां तुतें दीधला.

(अेक लड़का साधुचरित, खूबसूरत और सयाना होगा। किन्तु अुसकी आयु सिर्फ सोलह सालकी होगी। दूसरा मूढ़ और बदसूरत होगा। अुसकी आयु सौ सालकी होगी। मगर वह अुम्रभर जैसाका वैसा ही रहेगा। अिन दोनोंमें से जो तुम्हें पसंद हो, सो मैं दूंगा।)

अब अिन दोनोंमें से कौनसा पसंद करें? ऋषिने धर्मपत्नीसे पूछा। दोनोंने सोचा, बालक भले सोलह वर्ष ही जिये किन्तु वह सद्‌गुणी हो। वही कुलका अुद्धार करेगा। दोनोंने यही वर मांग लिया। मार्कण्डेय अुम्रमें ज्यों ज्यों खिलता गया त्यों त्यों मां-बापके वदन म्लान होते चले। आखिर सोलह वर्ष पूरे हुअे।

युवक मार्कण्डेय पूजामें बैठा है। यमराज अपने पाड़े पर बैठकर आये। किन्तु शिवलिंगको भेंटे हुअे युवा साधुको छूनेकी हिम्मत अुन्हें कैसे हो? हां, ना करते करते अुन्होंने आखिर पाश फेंका। अुधर लिंगसे त्रिशूलधारी शिवजी प्रकट हुअे। और अपनी धृष्टताके लिअे यमराजको भला-बुरा बहुत कुछ सुनना पड़ा। मृत्युंजय महादेवजीके दर्शन करनेके बाद मार्कण्डेयको मृत्युका डर कैसे हो सकता है? अुसकी आयुधारा अब तक बह रही है।

आगे जाकर जब मैं कॉलेजमें पढ़ने लगा तब अिम्तहानके बाद हमारी भाभी-दूज होती। फसल काटनेके दिन होते। दो दो दिन खेतमें ही बिताने पड़ते। तब मार्कण्डी मुझे शकरकंद भी खिलाती और अमृत जैसा पानी भी पिलाती। जब यह देखनेके लिअे मैं जाता कि रातको ठंडके मारे वह कांप तो नहीं रही है, तब अपने आंचिनेमें वह मुझे मृगनक्षत्र दिखाती।

आज भी जब मैं अपने गांव जाता हूं, मार्कण्डीसे बिना मिले नहीं रहता। किन्तु अब वह पहलेकी भांति मुझसे लाड़ नहीं करती। जरा-सा स्मित करके मौन ही धारण करती है। अुसके सुकुमार वदन पर पहलेके जैसा लावण्य नहीं है। किन्तु अब अुसके स्नेहकी गंभीरता बढ़ गयी है।

अगस्त, १९२८

२

कृष्णाके संस्मरण

१

ग्यारसका दिन था। गाड़ीमें बैठकर हम माहुली चले। महाराष्ट्रकी राजधानी सातारासे माहुली कुछ दूरी पर है। रास्तेमें दाहिनी तरफ श्री शाहु महाराजके वफादार कुत्तेकी समाधि आती है। रास्ते पर हमारी ही तरह बहुतसे लोग माहुलीकी तरफ गाड़ियां दौड़ाते थे। आखिर हम नदीके किनारे पहुंचे। वहां अिस पारसे अुस पार तक लोहेकी अेक जंजीर खूंची तनी हुअी थी। अुसमें रस्सीसे अेक नाव लटकाअी गअी थी, जो मेरी बाल-आंखोंको बड़ी ही भव्य मालूम होती थी।

किनारेके छोटे-बड़े कंकर कितने चिकने, काले काले और ठंडे ठंडे थे! हाथमें अेकको लेता तो दूसरे पर नजर पड़ती। वह पहलेसे अच्छा

मालूम होता। अितनेमें तीसरे भीगे हुअे कंकर पर कत्थअी रंगकी लकीरें दीख पड़तीं और अुसे अुठानेका दिल हो जाता। अुस दिन कृष्णाका मुझे प्रथम दर्शन हुआ। कृष्णामैयाने भी मुझे पहली ही बार पहचाना। मैं अुसे पहचान लूं अितना बड़ा तो मैं था ही नहीं। बच्चा मांको पहचाने अुसके पहले ही मां अुसे अपना बना लेती है। हम बच्चे नंगे होकर खूब नहाये, कूदे, पानी अुछाला, नाव पर चढ़कर पानीमें छलांगें मारीं। कड़ाकेकी भूख लगे अितना कृष्णामें जलविहार किया।

जैसा नदीका यह मेरा पहला ही दर्शन था, वैसा ही नहानेके बाद नमकीन मूंगफलीके नाश्तेका स्वाद भी मेरे लिअे पहला ही था। यात्राके अवसर पर मोरपंखोंकी टोपी पहननेवाले 'वासुदेव' भीख मांगने आये थे। मंजीरेके साथ अुनका मधुर भजन भी अुस दिन पहली ही बार सुना। कृष्णामैयाके मंदिरमें थोड़ा-सा आराम करनेके बाद हम घर लौटे।

सह्याद्रिके कान्तारमें, महाबलेश्वरके पाससे निकलकर सातारा तक दौड़नेमें कृष्णाको बहुत देर नहीं लगती। किन्तु अितनेमें ही वेण्णा कृष्णासे मिलने आती है। अिनके यहांके संगमके कारण ही माहुलीको माहात्म्य प्राप्त हुआ है। दो बालिकाअें अेक-दूसरेके कंधे पर हाथ रखकर मानो खेलने निकली हों, अैसा यह दृश्य मेरे हृदय पर पिछले पैंतीस सालसे अंकित रहा है।

कृष्णाका कुटुम्ब काफी बड़ा है। कअी छोटी-बड़ी नदियां अुससे आ मिलती हैं। गोदावरीके साथ साथ कृष्णाको भी हम 'महाराष्ट्र-माता' कह सकते हैं। जिस समय आजकी मराठी भाषा बोली नहीं जाती थी, अुस समयका सारा महाराष्ट्र कृष्णाके ही घेरेके अंदर आता था।

२

'नरसोबाची वाड़ी' जाते समय नाव पर गाड़ी चढ़ाकर हमने कृष्णाको पार किया, तब अुसका दूसरी बार दर्शन हुआ। यहां पर अेक ओर अूंचा कगार और दूसरी ओर दूर तक फैला हुआ कृष्णाका कछार, और अुसमें अुगे हुअे बैंगन, खरबूजे, ककड़ी और तरबूजके

अमृत-खेत! कृष्णाके किनारेके ये बैंगन जिसने अेकाध बार खा लिये, वह स्वर्गमें भी अुनकी अिच्छा करेगा। दो-दो महीने तक लगातार बैंगन खाने पर भी जी नहीं भरता; फिर भला अरुचि तो कैसे हो?

३

सांगलीके पास, कृष्णाके तट पर मैंने पहली ही बार 'रियासती महाराष्ट्र' का राजवैभव देखा। वे आलीशान और विशाल घाट, सुंदर और चमकीले बर्तनोंमें भर भर कर पानी ले जाती हुअी महाराष्ट्रकी ललनायें, पानीमें छलांग मारकर किनारे परके लोगोंको भिगानेका हौंसला रखनेवाले अखाड़ेबाज, क्षुद्र घंटिकाओंकी तालबद्ध आवाजसे अपने आगमनकी सूचना देनेवाले पहाड़ जैसे हाथी, और कर्र्र्र् की अेकश्रुति आवाज निकालकर रसपानका न्योता देनेवाले अीखके कोल्हू— यह था मेरा कृष्णामैयाका तीसरा दर्शन।

मुझे तैरना अच्छी तरह नहीं आता था। फिर भी अेक बड़ी गागर पानीमें औंधी डालकर अुसके सहारे वह जानेके लिअे मैं अेक बार यहां नदीमें अुतर पड़ा। किन्तु अेक जगह कीचड़में अैसा फंसा कि अेक पैर निकालता तो दूसरा और भी अंदर धंस जाता। और कीचड़ भी कैसा? मानो काला काला मक्खन! मुझे लगा कि अब जंगम न रहकर अुलटे पेड़की तरह यहीं स्थावर हो जाअूंगा! अुस दिनकी घबराहट भी मैं अब तक नहीं भूला हूं।

४

चिंचली स्टेशन पर पीनेके लिअे हमें हमेशा कृष्णाका पानी मिलता था। हमारे अेक परिचित सज्जन वहां स्टेशनमास्टर थे। वे हमें बड़े प्रेमसे अेकाध लोटा पानी मंगवाकर देते थे। हम चाहे प्यासे हों या न हों पिताजी हम सबको भक्तिपूर्वक पानी पीनेको कहते। कृष्णा महाराष्ट्रकी आराध्य देवी है। अुसकी अेक बूंद भी पेटमें जानेसे हम पावन हो जाते हैं। जिसके पेटमें कृष्णाकी अेक बूंद भी पहुंच चुकी है, वह अपना महाराष्ट्रीयपन कभी भूल नहीं सकता। श्रीसमर्थ

रामदास और शिवाजी महाराज, शाहु और बाजीराव, घोरपडे और पटवर्धन, नाना फडनवीस और रामशास्त्री प्रभुणे—थोड़ेमें कहें तो महाराष्ट्रका साधुत्व और वीरत्व, महाराष्ट्रकी न्यायनिष्ठा और राजनीतिज्ञता, धर्म और सदाचार, देशसेवा और विद्यासेवा, स्वतंत्रता और उदारता, सब कुछ कृष्णाके वत्सल कुटुम्बमें परवरिश पाकर फला-फूला है। देहू और आळंदीके जल कृष्णामें ही मिलते हैं। पंढरपुरकी चंद्रभागा भी भीमा नाम धारण करके कृष्णाको ही मिलती है। 'गंगाका स्नान और तुंगाका पान' जिस कहावतमें जिसके गौरवका स्वीकार किया गया है, वह तुंगभद्रा कर्णाटकके प्राचीन वैभवकी याद करती हुअी कृष्णामें ही लीन होती है। सच कहें तो महाराष्ट्र, कर्णाटक और तेलंगण (आंध्र), जिन तीनों प्रदेशोंका अैक्य साधनेके लिअे ही कृष्णा नदी बहती है। जिन तीनों प्रान्तोंने कृष्णाका दूध पिया है। कृष्णामें पक्षपाती प्रांतीयता नहीं है।

५

कॉलेजके दिन थे। बड़ी बड़ी आशायें लेकर बड़े भाअीसे मिलने मैं पूनासे घर गया। किन्तु मेरे पहुंचनेसे पहले ही वे जिहलोक छोड़ चुके थे। मेरी किस्मतमें कृष्णाके पवित्र जलमें अुनकी अस्थियोंका समर्पण करना ही बदा था। वेलगांवसे मैं कूड़ची गया। संध्याका समय था। रेलके पुलके नीचे कृष्णाकी पूजा की। बड़े भाअीकी अस्थियां कृष्णाके अुदरमें अर्पण कीं। नहाया और पलथी मारकर जीवन-मरण पर सोचने लगा।

कृष्णाके पानीमें कितने ही महाराष्ट्रके वीरों और महाराष्ट्रके शत्रुओंका खून मिला होगा! वर्षाकालकी मस्तीमें कृष्णाने कितने ही किसान और अुनके मवेशियोंको जलसमाधि दी होगी! पर कृष्णाको जिससे क्या? मदोन्मत्त हाथी अुसके जलमें विहार करें और विरक्त साधु अुसके किनारे तपश्चर्या करें, कृष्णाके लिअे दोनों समान हैं। मेरे भाअीकी अस्थियों और कंकर बनी हुअी पहाड़की अस्थियोंके बीच कृष्णाके मनमें क्या फर्क है? माहुलीमें अपने कंधे पर मुझे

खड़ा करके पानीमें कूदनेके लिअे वढ़ावा देनेवाले बड़े भाअीकी अस्थियां मुझे अपने हाथों अुसी कृष्णाके जलमें समर्पण करनी पड़ीं! जीवनकी लीला कैसी अगम्य है!

६

कृष्णाके अुदरमें मेरा दूसरा अेक भाअी भी सोया हुआ है! ब्रह्मचारी अनंतबुआ मरढेकर हृदयकी भावनासे मेरे सगे छोटे भाअी थे, और देशसेवाके व्रतमें मेरे बड़े भाअी थे। स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और गोसेवा यह त्रिविध कार्य करते करते अुन्होंने शरीर छोड़ा था। मेरे साथ अुन्होंने गंगोत्री और अमरनाथकी यात्रा की थी। किन्तु कृष्णाके किनारे आकर ही वे अमर हुअे। भक्तिकी धुनमें वे सुध-बुध भूल जाते और कअी जगह ठोकर खाते। अिस बातका मुझे हिमालयकी यात्रामें कअी बार अनुभव हुआ था। मैं बार बार अुनको कोसता। किन्तु वे परवाह नहीं करते। वे तो श्रीसमर्थकी प्रासादिक वाणीकी सात्त्विक मस्तीमें ही रहते। कृष्णाको भी अुन्हें कोसनेकी सूझी होगी। देव-मंदिरकी प्रदक्षिणा करते करते वे अूपरसे अेक दहमें गिर पड़े और देवलोक सिधारे। जब वाअीके पथरीले पट परसे बहती गंगाका स्मरण करता हूं, कृष्णामें हर वर्षाकालमें शिरस्नान करते देव-मंदिरके शिखरोंका दर्शन करता हूं, तब कृष्णाके पास मेरा भी यह अेक भाअी हमेशाके लिअे पहुंच गया है अिस बातका स्मरण हुअे बिना नहीं रहता; साथ ही साथ अनंतबुवाकी तपोनिष्ठ किन्तु प्रेम-सुकुमार मूर्तिका दर्शन हुअे बिना भी नहीं रहता।

७

सन् १९२१ का वह साल! भारतवर्षने अेक ही सालके भीतर स्वराज्य सिद्ध करनेका बीड़ा अुठा लिया है। हिन्दू-मुसलमान अेक हो गये हैं। तैंतीस करोड़ देवताओंके समान भारतवासी करोड़ोंकी संख्यामें ही सोचने लगे हैं। स्वराज्यऋषि लोकमान्य तिलकका स्मरण कायम करनेके लिअे 'तिलक स्वराज्य फंड' में अेक करोड़ रुपये अिकट्ठे करने हैं। राष्ट्रसभाके छत्रके नीचे काम करनेवाले सदस्योंकी संख्या भी अेक

करोड़ बनानी है। और पट-वर्धन श्रीकृष्णके सुदर्शनके समान चरखे भी अिस धर्मभूमिमें अुतनी ही संख्यामें चलवा देने हैं। भारतपुत्र अिस कामके लिअे बेजवाड़ेमें अिकट्ठे हुअे हैं। श्री अब्बास साहब, पुणतांबेकर, गिदवाणी और मैं, अेक साथ बेजवाड़ा पहुंच गये हैं। अैसे मंगल अवसर पर श्री कृष्णाम्बिका का विराट दर्शन करनेका सौभाग्य मिला। वाअीमें जिस कृष्णाके किनारे बैठकर संध्यावंदन किया था और न्याय-निष्ठ रामशास्त्री तथा राजकाजपटु नाना फडनवीसकी बातें की थीं, अुसी नन्हीं कृष्णाको यहां अितनी बड़ी होते देखकर प्रथम तो विश्वास ही न हुआ। कहां माहुलीकी वह छोटी-सी जंजीर और कहां यूरोप-अमरीकाको जोड़नेवाले केबलके जैसा यहांका वह रस्सा! हजारों-लाखों लोग यहां नहाने आये हैं। स्थूलकाय आंध्र भाअियोंमें आज भारतवर्षके तमाम भाअी घुलमिल गये हैं। 'राष्ट्रीय' हिन्दीका वाक्प्रवाह जहां-तहां सुनाअी देता है। कृष्णामें जिस प्रकार वेण्या, वारणा, कोयना, भीमा, तुंगभद्रा आकर मिलती हैं, अुसी प्रकार गांव गांवके लोग ठटके ठट बेजवाड़ेमें अुभरते हैं। अैसे अवसर पर सबके साथ रोज कृष्णामें स्नान करनेका लुत्फ मिलता। जिस कृष्णाने जन्मकालका दूध दिया अुसी कृष्णाने स्वराज्यकांक्षी भारतराष्ट्रका गौरवशाली दर्शन कराया। जय कृष्णा! तेरी जय हो! भारतवर्ष अेक हो! स्वतंत्र हो!!

जुलाअी, १९२१

३

मुळा-मुठाका संगम

नदियां तो हमारी बहुत देखी हुअी होती हैं। पर दो नदियोंका संगम आसानीसे देखनेको नहीं मिलता। संगमका काव्य ही अलग है।

जब दो नदियां मिलती हैं तब अक्सर अुनमें से अेक अपना नाम छोड़कर दूसरीमें मिल जाती है। सभी देशोंमें अिस नियमका पालन होता हुआ दिखाअी देता है। किन्तु जिस प्रकार कलंकके बिना चंद्र नहीं शोभता, अुसी प्रकार अपवादके बिना नियम भी नहीं चलते। और कअी बार तो नियमकी अपेक्षा अपवाद ही ज्यादा ध्यान खींचते हैं। अुत्तर अमरीकाकी मिसिसिपी-मिसोरी अपना लंबा-चौड़ा सप्ताक्षरी नाम द्वंद्व समाससे धारण करके संसारकी सबसे लंबी नदीके तौर पर मशहूर हुअी है। सीता-हरणसे लेकर विजयनगरके स्वातंत्र्य-हरण तकके अितिहासको याद करती तुंगभद्रा भी तुंगा और भद्राके मिलनसे अपना नाम और बड़प्पन प्राप्त कर सकी है। पूनाको अपनी गोदमें खेलाती मुळामुठा भी मुळा और मुठाके संगमसे बनी है।

सिंहगढ़की पश्चिम ओरकी घाटीसे मुठा आती है। खडक-वासला तककी मुंडी टेकरियां अुसका रक्षण करती हैं। खडक-वासलाके बांधने तन्वंगी मुठाका अेक सुदीर्घ सरोवर बनाया है। अिस सरोवरके किनारे न तो कोअी पेड़ हैं, न मंदिर। दिनमें बादल और रातके समय तारे अपने चिंताजनक प्रतिबिंब अिस सरोवरमें डालते हैं। यहींकी मुठासे नहरके रूपमें दो जबरदस्त महसूल लिये जाते हैं, जिनसे पूना और खडकीकी बस्ती जी भरके पानी पीती है। मुठाके किनारे गन्नेकी खेती बढ़ती जा रही है। वसंत ऋतुमें जहां देखें वहां अीखके कोल्हू बांग पुकार पुकार कर लोगोंको रसपानकी याद दिलाते हैं। लकड़ी-पुलके नामसे परिचित किन्तु पत्थरके बने हुअे पुलके नीचेसे नदी आगे जाती है और दगड़ी-पुलके नामसे परिचित किन्तु पत्थरके पक्के बांधको पार करती है।

अिसके बाद ही मुठाका अुसकी बहन मुळासे संगम होता है। लकड़ी-पुलसे ओंकारेश्वर तक चाहे जितने शव जलते हों, लेकिन संगमके समय अुसका विषाद मुठाके चेहरे पर दिखाअी नहीं देता।

अितना शांत संगम शायद ही और कहीं होगा। अिसी संगम पर कॅप्टन मॅलेट पेशवाअीकी अंतघड़ीकी राह देखता हुआ पड़ाव डाल-कर बैठा था। आज तो संस्कृत भाषाका संशोधन युरोपियन पंडितोंके हाथसे वापिस छीन लेनेके लिअे मरनेवाले आर्य पंडित भांडारकरजीका संगमाश्रम ही यहां विराजमान है। संस्कृत विद्याके पुनरुद्धारके लिअे संस्थापित पाठशालाका रूपान्तर करके पुराने और नयेका संगम करनेवाला डेक्कन कॉलेज भी अिस संगमके पास ही विराजमान है। यहां गोरे लोगोंने नौका-विहारके लिअे नदी पर बांध बांधकर पानी रोका है, और मच्छरोंके विशाल कुलको भी यहां आश्रय दिया है। नजदीककी टेकरी पर गुजरातके अेक लक्ष्मीपुत्रकी अुत्तुंग-शिरस्क किन्तु नम्र-नामधेय 'पर्णकुटी' है। मानवकी स्वतंत्रताका हरण करनेवाला यरवडाका कैदखाना और प्राणहरपटु लश्करी बारूदखाना भी अिस संगमसे अधिक दूरी पर नहीं है। न मालूम कितनी विचित्र वस्तुओंका संगम मुळामुठाके किनारे पर होता होगा और होनेवाला होगा! बांधके पासके बंड-गार्डनमें लक्षाधीश और भिक्षाधीशोंका संगम हर शामको होता है, यह भी अिसीकी अेक मिसाल है।

आखिरी बांध परसे हाश् करके छटकती मुळामुठा यहांसे आगे कहां तक जाती है, यह भला कौन बता सकेगा? अिस बातकी जान-कारी किसके पास होगी?

महाराष्ट्रकी नदियोंमें तीन नदियोंसे मेरी विशेष आत्मीयता है। मार्कण्डी मेरी छुटपनकी सखी, मेरे खेतिहर जीवनकी साक्षी, और मेरी बहन आक्काकी प्रतिनिधि है। कृष्णाके किनारे तो मेरा जन्म ही हुआ। महाबलेश्वरसे लेकर बेजवाड़ा और मछलीपट्टम तकका अुसका विस्तार अनेक ढंगसे मेरे जीवनके साथ बुना हुआ है। और तीसरी है मुळा-मुठा। बचपनमें हम सब भाअी शिक्षाके लिअे पूनामें रहे थे, अुस समयसे मुळा और मुठाका संगम मेरे बाल्यकालका साक्षी रहा है।

कॉलिजके दिनोंमें हमने जिन क्रांतिकारी विचारोंका सेवन किया था अुन्हें भी मुळामुठा जानती है। किन्तु अिन सब संस्मरणोंसे बढ़ जाते हैं महात्मा गांधीके साथ व्यतीत किये हुअे अुसके किनारे परके वे दिन! लेडी ठाकरसीकी पर्णकुटी, दिनशा मेहताका निसर्गोपचार भवन और सिंहगढ़का निवास, सब अेक ही साथ याद आते हैं।

और आखिर आखिरके दिनोंमें अंग्रेज सरकारने गांधीजीको जहां गिरफ्तार करके रखा था वह आगाखां महल भी मुळामुठाके किनारे पर ही है। और यहीं गांधीजीके दो जीवन-साथियोंने स्वराज्यके यज्ञमें अपनी अंतिम आहुति दी थी। कस्तूरबा और महादेवभाअीने जिसके किनारे शरीर छोड़ा वह मुळामुठा भारतवासियोंके लिअे, खास करके हम आश्रमवासियोंके लिअे तो तीर्थस्थान है।

और जब आजकी मुळामुठाके बारेमें सोचता हूं तब सिंहगढ़के दामनमें खडक-वासला सरोवरके किनारे जिस राष्ट्र-रक्षा-विद्यालयकी स्थापना हुअी है अुसका स्मरण हुअे बिना नहीं रहता। अिस संस्थाका नाम युद्ध-महाविद्यालय रखनेके बदले राष्ट्रीय रक्षा-विद्यालय रखा गया, यह बात भी ध्यान खींचे बिना नहीं रहती। जिस सरोवरके किनारे अिस विद्यालयकी स्थापना हुअी है अुसका नाम भी महाराष्ट्रके अितिहासके अनुरूप ही होना चाहिये। अैसे सरोवरको किसी अंग्रेजका नाम न देकर नरवीर तानाजी मालुसरेका नाम देना चाहिये। अपनी जान देकर जब तानाजीने छत्रपति शिवाजीके लिअे कोंढाणा गढ़ जीत दिया तब शिवाजीने कहा 'गड आला पण सिंह गेला — गढ़ तो जीत लिया किन्तु मैंने अपना शेर खो दिया।' और अुस दिनसे अिस गढ़का नाम सिंहगढ़ पड़ा।

अिस सरोवरको हम या तो तानाजी सरोवर कहें या सिंह सरोवर।

१९२६–२७
संशोधित, १९५६

४

सागर-सरिताका संगम

छुटपनमें भोज और कालिदासकी कहानियां पढ़नेको मिलती थीं। भोज राजा पूछते हैं, "यह नदी अितनी क्यों रोती है?" नदीका पानी पत्थरोंको पार करते हुअे आवाज करता होगा। राजाको सूझा, कविके सामने अेक कल्पना फेंक दें; अिसलिअे अुसने अूपरका सवाल पूछा। लोककथाओंका कालिदास लोकमानसको जंचे अैसा ही जवाब देगा न? अुसने कहा, "रोनेका कारण क्यों पूछते हैं, महाराज? यह बाला पीहरसे ससुराल जा रही है। फिर रोयेगी नहीं तो क्या करेगी?" अुस समय मेरे मनमें आया, "ससुराल जाना अगर पसन्द नहीं है तो भला जाती क्यों है?" किसीने जवाब दिया, "लड़कीका जीवन ससुराल जानेके लिअे ही है।"

नदी जब अपने पति सागरसे मिलती है तब अुसका सारा स्वरूप बदल जाता है। वहां अुसके प्रवाहको नदी कहना भी मुश्किल हो जाता है। साताराके पास माहुलीके नजदीक कृष्णा और वेण्याका संगम देखा था। पूनामें मुळा और मुठाका। किन्तु सरिता-सागरका संगम तो पहले पहल देखा कारवारमें—अुत्तरकी ओरके सरोके (कॅश्युरीनाके) बनके सिरे पर। हम दो भाअी समुद्र-तटकी बालू पर खेलते खेलते, घूमते-घामते दूर तक चले गये थे। हमेशासे काफी दूर गये और यकायक अेक सुन्दर नदीको समुद्रसे मिलते देखा। दो नदियोंके संगमकी अपेक्षा नदी-समुद्रका संगम अधिक काव्यमय होता है। दो नदियोंका संगम गूढ़-शांत होता है। किन्तु जब सागर और सरिता अेक-दूसरेसे मिलते हैं तब दोनोंमें स्पष्ट अुन्माद दिखाअी देता है। अिस अुन्मादका नशा हमें भी अचूक चढ़ता है। नदीका पानी शांत आग्रहसे समुद्रकी ओर बहता जाता है, जब कि अपनी मर्यादाको कभी न छोड़नेके लिअे विख्यात समुद्रका पानी चंद्रमाकी अुत्तेजनाके अनुसार कभी नदीके लिअे रास्ता बना देता है, कभी सामने हो जाता है। नदी और सागरका

जब अेक-दूसरेके खिलाफ सत्याग्रह चलता है, तब कअी तरहके दृश्य देखनेको मिलते हैं। समुद्रकी लहरें जब तिरछी कतराती आती हैं तब पानीका अेक फुहारा अेक छोरसे दूसरे छोर तक दौड़ता जाता है। कहीं कहीं पानी गोल गोल चक्कर काटकर भंवर बनाता है। जब सागरका जोश बढ़ने लगता है तब नदीका पानी पीछे हटता जाता है। अैसे अवसर पर दोनों ओरके किनारों परका अुसका थपेड़ा बड़ा तेज होता है। नदीकी गतिकी विपरीत दशाको देखकर अुससे फायदा अुठानेवाली स्वार्थी नावें पुरजोशमें अंदर घुसती हैं। अुन्हें मालूम है कि भाग्यके अिस ज्वारके साथ जितना अंदर जा सकेंगे अुतना ही पल्ले पड़नेवाला है। फिर जब भाटा शुरू होता है और सागरकी लहरें विरोधकी जगह वाहु खोलकर नदीके पानीका स्वागत करती हैं, तब मतलबी नावोंको अपनी त्रिकोनी पगड़ी बदलते देर नहीं लगती। पवन चाहे किसी भी दिशामें चलता रहे, जब तक वह प्रत्यक्ष सामने नहीं होता तब तक अुसमें से कुछ न कुछ मतलब साधनेकी चालाकी अिन वैश्यवृत्तिवाली नावोंमें होती ही है। अुनकी पगड़ीकी यानी पालकी बनावट भी अैसी ही होती है।

हम जिस समय गये थे अुस समय नावें अिसी प्रकार नदीके अंदर घुस रही थीं। किन्तु समुद्रके अिन पतंगोंको निहारनेमें हमें कोअी दिलचस्पी नहीं थी। हम तो संगमके साथ सूर्यास्त कैसा फबता है यह देखनेमें मशगूल थे। सुनहरा रंग सब जगह सुन्दर ही होता है। किन्तु हरे रंगके साथकी अुसकी बादशाही शोभा कुछ और ही होती है। अूंचे अूंचे पेड़ों पर संध्याके सुवर्ण किरण जब आरोहण करते हैं तब मनमें संदेह अुठता है कि यह मानवी सृष्टि है, या परियोंकी दुनिया है? समुद्र अैसी तो भव्य सुन्दरता दिखाने लगा मानो सुवर्ण रसका सरोवर अुमड़ रहा हो। यह शोभा देखकर हम अधा गये या सच कहें तो जैसे जैसे यह शोभा देखते गये वैसे वैसे हमारा दिल अधिकाधिक बेचैन होता गया। सौंदर्यपानसे हम व्याकुल होते जा रहे थे।

सूर्यास्तके बाद ये रंग सौम्य हुअे। हम भी होशमें आये और वापस लौटनेकी बात सोचने लगे। किन्तु पानी अितना आगे बढ़ गया था कि

वापस लौटना कठिन हो गया। परिणामस्वरूप हम नदीके किनारे किनारे अुलटे चले। यहां पर भी नदीका पानी दोनों ओरसे फूलता जा रहा था—जैसे भैंसेकी पीठ परकी पखाल भरते समय फूलती जाती है। जैसे जैसे हम अुलटे चलते गये वैसे वैसे पानीमें शांति बढ़ती गयी। अंधेरा भी बढ़ता जा रहा था। अिस पारसे अुस पार तक आने जानेवाली अेक नन्ही-सी नाव अेक कोनमें पड़ी थी। और देहातके चंद मजदूर लंगोटीकी डोरीमें पीछेकी ओर लकड़ीका अेक चक्र खोंसकर अुसमें अपने 'कोयते' लटकाये जा रहे थे। ('कोयता' हंसियेके जैसा अेक औजार होता है, जो नारियल छीलनेमें काम आता है या सामान्य तौरसे जिसका कुल्हाड़ीकी तरह अुपयोग किया जाता है।) अिन लोगोंकी पोशाक बस अेक लंगोटी और अेक जाकिट होती है। नदीको पार करते समय जाकिट निकालकर सिर पर ले लिया कि बस। प्रकृतिके बालक! जमीन और पानी अुनके लिअे अेक ही है।

घर जानेकी जल्दी सिर्फ हमें ही नहीं थी। अैसा मालूम होता था कि अिन देहाती लोगोंको भी जल्दी थी। और नदीके किनारे दौड़ते छोटे छोटे केकड़ोंको भी हमारी ही तरह जल्दी थी। रात पड़ी और हम जल्दीसे घर लौटे। किन्तु मनमें विचार तो आया कि किसी दिन अिस नदीके किनारे किनारे काफी अूपर तक जाना चाहिये।

प्याज या कॅबेज (पत्तागोभी) हाथमें आने पर फौरन अुसकी सब पत्तियां खोलकर देखनेकी जैसे अिच्छा होती है, वैसे ही नदीको देखने पर अुसके अुद्गमकी ओर चलनेकी अिच्छा मनुष्यको होती ही है। अुद्गमकी खोज सनातन खोज है। गंगोत्री, जमनोत्री और महाबलेश्वर या त्र्यंबककी खोज अिसी तरह हुअी है।

बचपनकी यह अिच्छा कुछ ही वर्ष पहले पूरी हुअी। श्री शंकरराव गुलवाड़ीजी मुझे अेक सेवाकेंद्र दिखानेके लिअे नदीकी अुलटी दिशामें दूर तक ले गये। अिस प्रतीप-यात्राके समय ही कवि बोरकरकी कविता सुनी थी, अिस बातका भी आनंददायी स्मरण है।

१९३४.

५

गंगामैया

१

गंगा कुछ भी न करती, सिर्फ देवव्रत भीष्मको ही जन्म देती, तो भी आर्यजातिकी माताके तौर पर वह आज प्रख्यात होती। पितामह भीष्मकी टेक, भीष्मकी निःस्पृहता, भीष्मका ब्रह्मचर्य और भीष्मका तत्त्वज्ञान हमेशाके लिअे आर्यजातिका आदरपात्र ध्येय बन चुका है। हम गंगाको आर्यसंस्कृतिके अैसे आधारस्तंभ महापुरुषकी माताके रूपमें पहचानते हैं।

२

नदीको यदि कोअी अुपमा शोभा देती है, तो वह माताकी ही। नदीके किनारे पर रहनेसे अकालका डर तो रहता ही नहीं। मेघराजा जब धोखा देते हैं तब नदीमाता ही हमारी फसल पकाती है। नदीका किनारा यानी शुद्ध और शीतल हवा। नदीके किनारे किनारे घूमने जायें तो प्रकृतिके मातृवात्सल्यके अखंड प्रवाहका दर्शन होता है। नदी बड़ी हो और अुसका प्रवाह धीरगंभीर हो, तब तो अुसके किनारे पर रहनेवालोंकी शानशौकत अुस नदी पर ही निर्भर करती है। सचमुच नदी जनसमाजकी माता है। नदी-किनारे बसे हुअे शहरकी गली गलीमें घूमते समय अेकाध कोनेसे नदीका दर्शन हो जाय, तो हमें कितना आनंद होता है! कहां शहरका वह गंदा वायुमंडल और कहां नदीका यह प्रसन्न दर्शन! दोनोंके बीचका अंतर फौरन मालूम हो जाता है। नदी अीश्वर नहीं है, बल्कि अीश्वरका स्मरण करानेवाली देवता है। यदि गुरुको वंदन करना आवश्यक है तो नदीको भी वंदन करना अुचित है।

यह तो हुअी सामान्य नदीकी बात। किन्तु गंगामैया तो आर्य-जातिकी माता है। आर्योंके बड़े बड़े साम्राज्य अिसी नदीके तट पर स्थापित हुअे हैं। कुरु-पांचाल देशका अंगवंगादि देशोंके साथ गंगाने

ही संयोग किया है। आज भी हिन्दुस्तानकी आबादी गंगाके तट पर सबसे अधिक है।

जब हम गंगाका दर्शन करते हैं तब हमारे ध्यानमें फसलसे लहलहाते सिर्फ खेत ही नहीं आते, न सिर्फ मालसे लदे जहाज ही आते हैं; किन्तु वाल्मीकिका काव्य, बुद्ध-महावीरके विहार, अशोक, समुद्रगुप्त या हर्ष जैसे सम्राटोंके पराक्रम और तुलसीदास या कबीर जैसे संतजनोंके भजन — इन सबका अेक साथ स्मरण हो आता है। गंगाका दर्शन तो शैत्य-पावनत्वका हार्दिक तथा प्रत्यक्ष दर्शन है।

किन्तु गंगाके दर्शनका अेक ही प्रकार नहीं है। गंगोत्रीके पासके हिमाच्छादित प्रदेशोंमें इसका खिलाड़ी कन्यारूप, उत्तरकाशीकी ओर चीड़-देवदारके काव्यमय प्रदेशमें मुग्धारूप, देवप्रयागके पहाड़ी और संकरे प्रदेशमें चमकीली अलकनंदाके साथ उसकी अठखेलियां, लक्ष्मण-झूलेकी विकराल दंष्ट्रामें से छूटनेके बाद हरद्वारके पास उसका अनेक धाराओंमें स्वच्छंद विहार, कानपुरसे सटकर जाता हुआ उसका इति-हास-प्रसिद्ध प्रवाह, प्रयागके विशाल पट पर हुआ उसका कालिन्दीके साथका त्रिवेणी संगम — हरेककी शोभा कुछ निराली ही है। अेक दृश्य देखने पर दूसरेकी कल्पना नहीं हो सकती। हरेकका सौंदर्य अलग, हरेकका भाव अलग, हरेकका वातावरण अलग, हरेकका माहात्म्य अलग।

प्रयागसे गंगा अलग ही स्वरूप धारण कर लेती है। गंगोत्रीसे लेकर प्रयाग तककी गंगा वर्धमान होते हुअे भी अेकरूप मानी जा सकती है। किन्तु प्रयागके पास उससे यमुना आकर मिलती है। यमुनाका तो पहलेसे ही दोहरा पाट है। वह खेलती है, कूदती है, किन्तु क्रीड़ा-सक्त नहीं मालूम होती। गंगा शकुंतला जैसी तपस्वी कन्या दीखती है। काली यमुना द्रौपदी जैसी मानिनी राजकन्या मालूम होती है। शर्मिष्ठा और देवयानीकी कथा जब हम सुनते हैं, तब भी प्रयागके पास गंगा और यमुनाके बड़ी कठिनाअीके साथ मिलते हुअे शुक्ल-कृष्ण प्रवाहोंका स्मरण हो आता है। हिन्दुस्तानमें अनगिनत नदियां हैं, इसलिअे संगमोंका भी कोअी पार नहीं है। इन सभी

संगमोंमें हमारे पुरखोंने गंगा-यमुनाका यह संगम सबसे अधिक पसन्द किया है, और इसीलिअे उसका 'प्रयागराज' जैसा गौरवपूर्ण नाम रखा है। हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंके आनेके बाद जिस प्रकार हिन्दुस्तानके इतिहासका रूप बदला, उसी प्रकार दिल्ली-आगरा और मथुरा-वृंदावनके समीपसे आते हुअे यमुनाके प्रवाहके कारण गंगाका स्वरूप भी प्रयागके बाद बिलकुल बदल गया है।

प्रयागके बाद गंगा कुलवधूकी तरह गंभीर और सौभाग्यवती दीखती है। इसके बाद उसमें बड़ी बड़ी नदियां मिलती जाती हैं। यमुनाका जल मथुरा-वृंदावनसे श्रीकृष्णके संस्मरण अर्पण करता है, जब कि अयोध्या होकर आनेवाली सरयू आदर्श राजा रामचंद्रके प्रतापी किन्तु करुण जीवनकी स्मृतियां लाती है। दक्षिणकी ओरसे आनेवाली चंबल नदी रंतिदेवके यज्ञयागकी बातें करती है, जब कि महान कोलाहल करता हुआ शोणभद्र गजग्राहके दारुण द्वंद्व-युद्धकी झांकी कराता है। इस प्रकार हृष्ट-पुष्ट बनी हुअी गंगा पाटलीपुत्रके पास मगध साम्राज्य जैसी विस्तीर्ण हो जाती है। फिर भी गंडकी अपना अमूल्य कर-भार लाते हुअे हिचकिचाअी नहीं। जनक और अशोककी, बुद्ध और महावीरकी प्राचीन भूमिसे निकलकर आगे बढ़ते समय गंगा मानो सोचमें पड़ जाती है कि अब कहां जाना चाहिये। जब इतनी प्रचंड वारिराशि अपने अमोघ वेगसे पूर्वकी ओर बह रही हो, तब उसे दक्षिणकी ओर मोड़ना क्या कोअी आसान बात है? फिर भी वह उस ओर मुड़ गअी है सही। दो सम्राट् या दो जगद्गुरु जैसे अेका-अेक अेक-दूसरेसे नहीं मिलते, वैसा ही गंगा और ब्रह्मपुत्राका हाल है। ब्रह्मपुत्रा हिमालयके उस पारका सारा पानी लेकर आसामसे होती हुअी पश्चिमकी ओर आती है और गंगा इस ओरसे पूर्वकी ओर बढ़ती है। उनकी आमने-सामने भेंट कैसे हो? कौन किसके सामने पहले झुके? कौन किसे पहले रास्ता दे? अंतमें दोनोंने तय किया कि दोनोंको दाक्षिण्य धारणकर सरित्पतिके दर्शनके लिअे जाना चाहिये और भक्ति-नम्र होकर, जाते जाते जहां संभव हो, रास्तेमें अेक-दूसरेसे मिल लेना चाहिये।

जिस प्रकार गोआलंदोके पास जब गंगा और ब्रह्मपुत्राका विशाल जल आकर मिलता है तब मनमें संदेह पैदा होता है कि सागर और क्या होता होगा? विजय प्राप्त करनेके बाद कहीं हुकी लड़ी सेना भी जिस प्रकार अव्यवस्थित हो जाती है और सिपाही और उनमें आये बैल जहां तहां घूमते हैं, उसी प्रकारका हाल मिलनेके बाद जिन दो महान नदियोंका होता है। अनेक मुखों द्वारा वे सागरमें जाकर मिलती हैं। हरेक प्रवाहका नाम अलग अलग है और कुछ प्रवाहोंके तो अनेकों भी अधिक नाम हैं। गंगा और ब्रह्मपुत्रा एक होकर पद्माका नाम धारण करती हैं। यही आगे जाकर मेघनाके नामसे पुकारी जाती है।

यह अनेकमुखी गंगा कहां जाती है? सुंदरवनमें देवोंके मुख धुलाने? या समुद्रोंकी वासनाको तृप्त कर उनका उद्धार करने? आज जाकर आप देखेंगे तो यहां पुराने काव्यका कुछ भी शेष नहीं होगा। जहां देखो वहां जूटकी बोरियां बनानेवाली मिलें और ऐसे ही दूसरे बेहूदे विदेशी कल-कारखाने दीख पड़ेंगे। जहांसे हिन्दुस्तानकी कारी-गरीकी सर्वोत्तम वस्तुएं हिन्दुस्तानके जहाजोंमें लंका या जावा द्वीप तक जाती थीं, उसी रास्तेसे अब विलायती और जापानी आगबोटें (स्टीमर) विदेशी कारखानोंमें बना हुआ सड़ा माल हिन्दुस्तानके बाजारोंमें भर डालनेके लिये आती हुई दिखाई देती हैं। गंगामैया पहले ही की तरह हमें अनेक प्रकारकी समृद्धि प्रदान करती जाती है। किन्तु हमारे निर्बल हाथ उसको उठा नहीं सकते!

गंगामैया! यह दुःख देखकर तेरे हृदयमें क्या नहीं होता है?

फरवरी, १९२६

६

यमुनारानी

हिमालय तो भव्यताका भंडार है। जहां तहां भव्यताको बिखेर कर भव्यताकी भव्यताको कम करते रहना ही मानो हिमालयका व्यवसाय है। फिर भी अैसे हिमालयमें अेक अैसा स्थान है, जिसकी अूर्जस्विता हिमालयवासियोंका भी ध्यान खींचती है। यह है यमराजकी बहनका अुद्गम-स्थान।

अूंचाअीसे बर्फ पिघलकर अेक बड़ा प्रपात गिरता है। अिर्दगिर्द गगनचुंबी नहीं, बल्कि गगनभेदी पुराने वृक्ष आड़े गिरकर गल जाते हैं। अुत्तुंग पहाड़ यमदूतोंकी तरह रक्षण करनेके लिअे खड़े हैं। कभी पानी जमकर बर्फ बन जाता है, और कभी बर्फ पिघलकर अुसका बर्फके जितना ठंडा पानी बन जाता है। अैसे स्थानमें जमीनके अंदरसे अेक अद्भुत ढंगसे अुबलता हुआ पानी अुछलता रहता है। जमीनके भीतरसे अैसी आवाज निकलती है मानो किसी वाष्पयंत्रसे क्रोधायमान भाप निकल रही हो। और अुन झरनोंसे सिरसे भी अूंची अुड़ती बूंदें अितनी सरदीमें भी मनुष्यको झुलसा देती हैं। अैसे लोक-चमत्कारी स्थानमें असित ऋषिने यमुनाका मूल स्थान खोज निकाला। अिस स्थानमें शुद्ध जलसे स्नान करना असंभव-सा है। ठंडे पानीमें नहायें तो हमेशाके लिअे ठंडे पड़ जायेंगे और गरम पानीमें नहायें तो वहींके वहीं आलूकी तरह अुबल कर मर जायंगे। अिसीलिअे वहां मिश्र जलके कुंड तैयार किये गये हैं। अेक झरनेके अूपर अेक गुफा है। अुसमें लकड़ीके पटिये डालकर सो सकते हैं। हां, रातभर करवट बदलते रहना चाहिये, क्योंकि अूपरकी ठंड और नीचेकी गरमी, दोनों अेकसी असह्य होती हैं।

दोनों बहनोंमें गंगासे यमुना बड़ी है, प्रौढ़ है, गंभीर है, कृष्ण-भगिनी द्रौपदीके समान कृष्णवर्णा और मानिनी है। गंगा तो मानो बेचारी मुग्ध शकुंतला ही ठहरी, पर देवाधिदेवने अुसका स्वीकार किया अिसलिअे यमुनाने अपना बड़प्पन छोड़कर गंगाको ही अपनी

सरदारी सौंप दी। ये दोनों बहनें अेक-दूसरेसे मिलनेके लिअे बड़ी आतुर दिखाअी देती हैं। हिमालयमें तो अेक जगह दोनों करीब करीब आ जाती हैं। किन्तु अीप्यालु दंडाल पर्वतके बीचमें विघ्नसंतोषीकी तरह आड़े आनेसे अुनका मिलन वहां नहीं हो पाता। अेक काव्य-हृदयी ऋषि वहां यमुनाके किनारे रहकर हमेशा गंगास्नानके लिअे जाया करता था। किन्तु भोजनके लिअे वापिस यमुनाके ही घर आ जाता था। जब वह बूढ़ा हुआ—ऋषि भी अंतमें बूढ़े होते हैं—तब अुसके थकेमांदे पांवों पर तरस खाकर गंगाने अपना प्रतिनिधिरूप अेक छोटासा झरना यमुनाके तीर पर ऋषिके आश्रममें भेज दिया। आज भी वह छोटासा सफेद प्रवाह अुस ऋषिका स्मरण कराता हुआ बह रहा है।

देहरादूनके पास भी हमें आशा होती है कि ये दोनों नदियां अेक-दूसरेसे मिलेंगी। किन्तु नहीं, अपने शैत्य-पावनत्वसे अंतर्वेदीके समूचे प्रदेशको पुनीत करनेका कर्तव्य पूरा करनेके पहले अुन्हें अेक-दूसरेसे मिलकर फुरसतकी बातें करनेकी सूझती ही कैसे? गंगा तो अुत्तरकाशी, टेहरी, श्रीनगर, हरिद्वार, कन्नौज, ब्रह्मावर्त, कानपुर आदि पुराण-प्रसिद्ध और इतिहास-प्रसिद्ध स्थानोंको अपना दूध पिलाती हुअी दौड़ती है; जब कि यमुना कुरुक्षेत्र और पानीपतके हत्यारे भूमि-भागको देखती हुअी भारतवर्षकी राजधानीके पास आ पहुंचती है। यमुनाके पानीमें साम्राज्यकी शक्ति होनी चाहिये। अुसके स्मरण-संग्रहालयमें पांडवोंसे लेकर मुगल-साम्राज्य तकका और गदरके जमानेसे लेकर स्वामी श्रद्धानंदजीकी हत्या तकका सारा इतिहास भरा पड़ा है। दिल्लीसे आगरे तक अैसा मालूम होता है, मानो बादरके खानदानके लोग ही हमारे साथ बातें करना चाहते हों। दोनों नगरोंके किले साम्राज्यकी रक्षाके लिअे नहीं, बल्कि यमुनाकी शोभा निहारनेके लिअे ही मानो बनाये गये हैं। मुगल-साम्राज्यके नगारे तो कबके बंद हो गये; किन्तु मथुरा-वृन्दावनकी बांसुरी अब भी बज रही है।

मथुरा-वृंदावनकी शोभा कुछ अपूर्व ही है। यह प्रदेश जितना रमणीय है अुतना ही समृद्ध है। हरियानेकी गौअें अपने मीठे, सरस, सकस

दूधके लिअे हिन्दुस्तान भरमें मशहूर हैं। यशोदामैयाने या गोपराजा नंदने खुद यह स्थान पसंद किया था, अिस बातको तो मानो यहांकी भूमि भूल ही नहीं सकती। मथुरा-वृन्दावन तो है बालकृष्णकी क्रीड़ा-भूमि, वीरकृष्णकी विक्रमभूमि। द्वारकावासको यदि छोड़ दें तो श्रीकृष्णके जीवनके साथ अधिकसे अधिक सहयोग कालिंदीने ही किया है। जिस यमुनाने कालियामर्दन देखा अुसी यमुनाने कंसका शिरच्छेद भी देखा। जिस यमुनाने हस्तिनापुरके दरबारमें श्रीकृष्णकी सचिव-वाणी सुनी, अुसी यमुनाने रण-कुशल श्रीकृष्णकी योगमूर्ति कुरुक्षेत्र पर विचरती निहारी। जिस यमुनाने वृन्दावनकी प्रणय-वांसुरीके साथ अपना कलरव मिलाया, अुसी यमुनाने कुरुक्षेत्र पर रोमहर्षण गीतावाणीको प्रतिध्वनित किया। यमराजकी बहनका भाअीपन तो श्रीकृष्णको ही शोभा दे सकता है।

जिसने भारतवर्षके कुलका कअी बार संहार देखा है, अुस यमुनाके लिअे पारिजातके फूलके समान ताजबीबीका अवसान कितना मर्मभेदी हुआ होगा? फिर भी अुसने प्रेमसम्राट् शाहजहांके जमे हुअे आंसुओंको प्रतिबिंबित करना स्वीकार कर लिया है।

भारतीय कालसे मशहूर वैदिक नदी चर्मण्यवतीसे करभार लेकर यमुना ज्यों ही आगे बढ़ती है, त्यों ही मध्ययुगीन अितिहासकी झांकी करानेवाली नन्ही-सी सिन्धु नदी अुससे आ मिलती है।

अब यमुना अधीर हो अुठी है। कअी दिन हुअे, बहन गंगाका दर्शन नहीं हुआ है। कहने जैसी बातें पेटमें समाती नहीं हैं। पूछनेके लिअे असंख्य सवाल भी अिकट्ठे हो गये हैं। कानपुर और कालपी बहुत दूर नहीं हैं। यहां गंगाकी खबर पाते ही खुशीसे यहांकी मिश्रीसे मुंह मीठा बनाकर यमुना अैसी दौड़ी कि प्रयागराजमें गंगाके गलेसे लिपट गअी। क्या दोनोंका अुन्माद! मिलने पर भी मानो अुनको यकीन नहीं होता कि वे मिली हैं। भारतवर्षके सबके सब साधु-संत अिस प्रेमसंगमको देखनेके लिअे अिकट्ठे हुअे हैं। पर अिन बहनोंको अिसकी सुधबुध नहीं है। आंगनमें अक्षयवट खड़ा है। अुसकी भी अिन्हें परवाह नहीं है। बूढ़ा अकबर छावनी डाले पड़ा है, अुसे कौन

पूछता है? और अशोकका शिलास्तंभ लाकर वहां खड़ा करें तो भी क्या ये बहनें अुसकी ओर नजर अुठाकर देखेंगी?

प्रेमका यह संगम-प्रवाह अखंड बहता रहता है, और अुसके साथ कवि-सम्राट् कालिदासकी सरस्वती भी अखंड बह रही है!

क्वचित् प्रभा-लेपिभिरिन्द्रनीलैर् मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सित-पंकजानाम् इन्दीवरैर् अुत्खचितान्तरेव॥
क्वचित् खगानां प्रिय-मानसानां कादंब-संसर्गवतीव पंक्तिः।
अन्यत्र कालागरु-दत्तपत्रा भक्तिर् भुवश्चन्दन-कल्पितेव॥
क्वचित् प्रभा चांद्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा-रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा॥
क्वचित् च कृष्णोरग-भूषणेव भस्मांग-रागा तनुर् ईश्वरस्य।
पश्यानवद्यांगि! विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः॥

[हे निर्दोष अंगवाली सीते! देखो सित गंगाके प्रवाहमें यमुनाकी तरंगें घुसकर प्रवाहको खंडित कर रही हैं। यह कैसा दृश्य है! कहीं मालूम होता है, मानो मोतियोंकी मालामें पिरोये हुअे इन्द्रनील मणि मोतियोंकी प्रभाको कुछ धुंधला कर रहे। कहीं अैसा दीखता है, मानो सफेद कमलके हारमें नील कमल गूंथ दिये हों। कहीं मानो मानसरोवर जाते हुअे श्वेत हंसोंके साथ काले कादंब अुड़ रहे हों। कहीं मानो श्वेत चंदनसे लीपी हुअी जमीन पर कृष्णागरुकी पत्र-रचना की गयी हो। कहीं मानो चंद्रकी प्रभाके साथ छायामें सोये हुअे अंधकारकी क्रीड़ा चल रही हो। कहीं शरदृतुके शुभ्र मेघोंके पीछेसे निखर अुघर आसमान दीख रहा हो। और कहीं अैसा मालूम होता है, मानो महादेवजीके भस्मभूषित शरीर पर कृष्ण सर्पोंके आभूषण धारण करा दिये हों।]

कैसा सुंदर दृश्य! अूपर पुष्पक विमानमें मेघ-श्याम रामचंद्र और धवल-शीला जानकी चौदह सालके वियोगके पश्चात् अयोध्यामें पहुंचनेके लिअे अधीर हो अुठे हैं, और नीचे सिंदीवर-श्यामा कालिंदी और सुधा-जला जाह्नवी अेक-दूसरेका परिरंभ छोड़े बिना सागरमें नामरूपको छोड़कर विलीन होनेके लिअे दौड़ रही हैं।

अिस पावन दृश्यको देखकर स्वर्गसे सुमनोंकी पुष्पवृष्टि हुअी होगी और भूतल पर कवियोंकी प्रतिभा-सृष्टिके फुहारे अुड़े होंगे।

सितंबर, १९२९

७

मूल त्रिवेणी

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों मिलकर जिस तरह दत्तात्रेयजी बनते हैं, अुसी तरह अलकनंदा, मंदाकिनी और भागीरथी मिलकर गंगामैया बनती हैं। ये तीनों गंगाकी बहनें नहीं हैं, बल्कि गंगाके अंग हैं। भागीरथी भले गंगोत्रीसे आती हो, तो भी मंदाकिनीका केदारनाथ और अलकनंदाका बदरीनारायण भी गंगाके ही अुद्गम हैं।

ब्रह्मकपालसे होकर जो अलकनंदा बहती है और वहां अेक बार श्राद्ध करनेसे जो अशेष पूर्वजोंको अेकसाथ हमेशाके लिअे मुक्ति दे देती है, अुस अलकनंदाका अुद्गम-स्थान क्या गंगोत्रीसे कम पवित्र है? ब्रह्मकपाल पर अेक बार श्राद्ध करनेके बाद फिर कभी श्राद्ध किया ही नहीं जा सकता। यदि मोहवश करें तो पितरोंकी अधोगति होती है। कितना जाग्रत स्थान है वह!

बदरीनारायणके गरम कुंडोंका पानी लेकर अलकनंदा आती है, जब कि मंदाकिनी गौरीकुंडके अुष्ण जलसे थोड़ी देर कबोष्ण होती है। केदारनाथका मंदिर बनावटकी दृष्टिसे अन्य सब मंदिरोंसे अलग प्रकारका है। अंदरका शिवलिंग भी स्वयंभू, बिना आकृतिका है। वह अितना अूंचा है कि मनुष्य अुस पर झुककर अुससे हृदयस्पर्श कर सकता है। मंदिरोंकी जितनी विशेषता है अुतनी ही मंदाकिनीकी भी विशेषता है। यहांके पत्थर अलग प्रकारके हैं, यहांका बहाव अलग प्रकारका है, और यहां नहानेका आनंद भी अलग प्रकारका है।

गंगोत्री तो गंगोत्री ही है। अिन तीनों प्रवाहोंमें भागीरथीका प्रवाह अधिक वन्य और मुग्ध मालूम होता है। यह नहीं है कि गंगामें सिर्फ यही तीन प्रवाह हैं। नीलगंगा है, ब्रह्मगंगा है, कअी

गंगायें हैं। हिमालयसे निकलनेवाले सभी प्रवाह गंगा ही तो हैं! जिन जिनका पानी हरिद्वारके पास हरिके चरणोंका स्पर्श करता है वे सब प्रवाह गंगा ही हैं। वाल्मीकिने भी जब गंगाको आकाशसे हिमालयके शिखररूपी महादेवजीकी जटाओं पर गिरते और वहांसे अनेक धाराओंमें निकलते देखा तब अुनकी आर्ष दृष्टिने सात अलग अलग प्रवाह गिनाये थे।

तस्यां विसृज्यमानायां सप्त स्रोतांसि जज्ञिरे।
ह्लादिनी, पावनी चैव, नलिनी च तथैव च॥
सुचक्षुश्चैव, सीता च, सिन्धुश्चैव, महानदी।
सप्तमी चान्वगात् तासां भगीरथ-रथं तदा॥

१९३४

८

जीवनतीर्थ हरिद्वार

त्रिपथगा गंगाके तीन अवतार हैं। गंगोत्री या गोमुखसे लेकर हरिद्वार तककी गंगा अुसका प्रथम अवतार है। हरिद्वारसे लेकर प्रयागराज तककी गंगा अुसका दूसरा अवतार है। प्रथम अवतारमें वह पहाड़के बंधनसे — शिवजीकी जटाओंसे — मुक्त होनेके लिअे प्रयत्न करती है। दूसरे अवतारमें वह अपनी बहन यमुनासे मिलनेके लिअे आतुर है। प्रयागराजसे गंगा यमुनासे मिलकर अपने बड़े प्रवाहके साथ सरित्पति सागरमें विलीन होनेकी चाह रखती है। यह है अुसका तीसरा अवतार। गंगोत्री, हरिद्वार, प्रयाग और गंगासागर, गंगापुत्र आर्योंके लिअे चार बड़ेसे बड़े तीर्थस्थान हैं। जितना अूपर चढ़ें अुतना तीर्थका माहात्म्य अधिक, अैसा माना जाता है। अेक प्रकारसे यह सही भी है। किन्तु मेरी दृष्टिसे तो भारत-जातिके लिअे अत्यंत आकर्षक स्थान हरिद्वार ही है। हरिद्वारमें भी पांच तीर्थ प्रसिद्ध हैं। पुराणकारोंने हरेकके माहात्म्यका वर्णन श्रद्धा और रससे किया है। किन्तु यह महत्त्व कुछ भी न जानते

हुये भी मनुष्य कह सकता है कि 'हरिकी पैड़ी' में ही गंगाका माहात्म्य कहें तो माहात्म्य और काव्य कहें तो काव्य अधिक दिखाई देता है।

यों तो हरेक नदीकी लंबाईमें काव्यमय भूमिभाग होते ही हैं। मेरा कहनेका यह आशय नहीं है कि गंगाके किनारे हरिद्वारसे अधिक सुंदर स्थान हो ही नहीं सकते। हरिकी पैड़ीके आसपास बनारसकी शोभाका सौवां हिस्सा भी आपको नहीं मिलेगा। फिर भी यहां पर प्रकृति और मनुष्यने अेक-दूसरेके चैरी न होते हुअे गंगाकी शोभा बढ़ानेका काम सहयोगसे किया है। गंगाका वह सादा और स्वच्छ प्रवाह; मंदिरके पासका वह दौड़ता घाट; घाटके नीचेका वह छोटासा टेढ़ामेढ़ा दह; अिस तरफ हजारों लोग आसानीसे बैठ सकें अैसा नदीके पट जैसा घाट, अुस तरफ छोटे बेटके जैसा टुकड़ा और दोनों बाजुओंको सांधनेवाला पुराना पुल; सभी काव्यमय है। किनारे परके मंदिरों और धर्मशालाओंके सादे शिखर गंगाकी तरफ चिपका हुआ हमारा ध्यान अपनी तरफ नहीं खींचते। फिर भी वे गंगाकी शोभामें वृद्धि ही करते हैं। बनारसके बाजारमें बैठनेवाले आलसी बैल अलग हैं और शांतिसे जुगाली करनेवाले यहांके बैल अलग हैं। यहां गंगामें कहीं पर भी कीचड़का नामोनिशान आपको नहीं मिलेगा। अनंतकालसे अेक-दूसरेके साथ टकरा टकरा कर गोल बने हुअे सफेद पत्थर ही सर्वत्र देख लीजिये।

हरिकी पैड़ीमें सबसे आकर्षक वस्तुकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हम अुसका सहज असर ही अनुभव करते हैं। वह है यहांकी हवा। हिमालयके दूर दूरके हिमाच्छादित शिखरों परसे जो पवन दक्षिणकी ओर बहते हैं, वे सबसे पहले यहांकी ही मनुष्यवस्तीको स्पर्श करते हैं। अितना पावन पवन अन्यत्र कहां मिले? हरिकी पैड़ीके पास पुल पर खड़े रहिये, आपके फेफड़ोंमें और दिलमें केवल आह्लाद ही भर जायगा। अुन्मादक नहीं बल्कि प्राणदायी; फिर भी प्रशम-कारी।

जितनी बार मैं यहां आया हूं, अुतनी बार वही शांति, वही आह्लाद, वही स्फूर्ति मैंने अनुभव की है। चंद लोग बम्बअीकी चौपाटीके

साथ जिस घाटका मुकाबला करते हैं। आत्यंतिक विरोधका सादृश्य जिन दोनोंके बीच जरूर है। यहां यात्री लोग मछलियोंको आहार देते हैं, जब कि वहां मछुआ आहारके लिअे मछलियोंको पकड़ने जाते हैं।

हरिकी पैड़ी देखनी हो तो शामको सूर्यास्तके बाद जाना चाहिये। चांदनी है या नहीं, यह सोचनेकी आवश्यकता नहीं है। चांदनी होगी तो अेक प्रकारकी शोभा मिलेगी, नहीं होगी तो दूसरे प्रकारकी मिलेगी। जिन दोनोंमें जो पसंदगी करने बैठेगा वह कला-प्रेमी नहीं है। संध्याकाशमें अेकके बाद अेक सितारे प्रकट होते हैं, और नीचेसे अेकके बाद अेक जलते दीये उनका जवाब देते हैं। जिस दृश्यकी गूढ़ शांति मन पर कुछ अद्‌भुत असर करती है। जितनेमें मंदिरसे टींग टांग, टींग टांग करते घंटे आरतीके लिअे न्यौता देते हैं। जिस घंटनादका मानो अंत ही नहीं है। टींग टांग, टींग टांग चलता ही रहता है। और भक्तजन तरह तरहकी आरतियां गाते ही रहते हैं। पुरुष गाते हैं, स्त्रियां गाती हैं, ब्रह्मचारी गाते हैं और संन्यासी भी गाते हैं; स्थानिक लोग गाते हैं और प्रांत-प्रांतके यात्री भी गाते हैं। कोअी किसीकी परवाह नहीं करता। कोअी किसीसे नहीं अकुलाता। हरेक अपने अपने भक्तिभावमें तल्लीन। सनातनी स्तोत्र गाते हैं, आर्य-समाजी अुपदेश देते हैं। सिख लोग ग्रंथसाहबके अेकाध 'महोल्ले' में से आत्ता-दि-वार जोरसे गाते हैं। गोरक्षा-प्रचारक आपको यहां बतायेंगे कि संसारमें सफेद रंग किसलिअे है कि गायका दूध सफेद है। गायके पेटमें तैंतीस कोटि देवता हैं; सिर्फ वहां पेटभर घास नहीं है। चंद नास्तिक जिस भीड़का फायदा अुठाकर प्रमाणके साथ यह सिद्ध कर देते हैं कि अीश्वर नहीं है। और अुदार हिन्दूधर्म यह सब सद्‌भावपूर्वक चलने देता है। गंगामैयाके वातावरणमें किसीका भी तिरस्कार नहीं है। सभीका सत्कार है। लाल गेरुवा पहनकर मुक्त होनेका दावा करनेवाले मुक्तिफौजके मिशनरी भी यहां आकर यदि हिन्दूधर्मके विरुद्ध प्रचार करें तो भी हमारे यात्री अुनकी बात शांतिसे सुनेंगे और कहेंगे कि भगवानने जैसी बुद्धि दी है वैसा बेचारे बोलते हैं; अुनका क्या अपराध है?

हिन्दू समाजमें अनेक दोष हैं और अिन दोषोंके कारण हिन्दू समाजने काफी सहा भी है। किन्तु अुदारता, सहिष्णुता और सद्भाव आदि हिन्दू समाजकी विशेषतायें हरगिज दोषरूप नहीं हैं। यह कहने-वाले कि अुदारताके कारण हिन्दू समाजने बहुत कुछ सहा है, हिन्दू धर्मकी जड़ ही काट डालते हैं।

अब भी वह घंटा बज रहा है और आलसी लोगोंको यह कहकर कि आरतीका समय अभी बीता नहीं है, जीवनका कल्याण करनेके लिअे मनाता है।

और वे बालायें खाखरेके पत्तोंके बड़े बड़े दोनोंमें फूलोंके बीच घीके दीये रखकर अुन्हें प्रवाहमें छोड़ देती हैं, मानो अपने भाग्यकी परीक्षा करती हों। और ये दोने तुरन्त नावकी तरह डोलते डोलते—अिस तरह डोलते हुअे मानो अपने भीतरकी ज्योतिका महत्त्व जानते हों, जीवन-यात्रा शुरू कर देते हैं।

चली! यह जीवन-यात्रा चली! अेकके बाद अेक, अेकके बाद अेक, ये दीये अपनेको और अपने भाग्यको जीवन-प्रवाहमें छोड़ देते हैं। जो बात मनुष्य-जीवनमें व्यक्तिकी होती है वही यहां दीयोंकी होती है। कोअी अभागे यात्राके आरंभमें ही पवनके वश हो जाते हैं और चारों ओर विषाद फैलाते हैं। कुछ काफी आशायें दिखाकर निराश करते हैं। कुछ आजन्म मरीजोंकी तरह डगमग करते करते दूर तक पहुंचते हैं। कभी कभी दो दोने पास पास आकर अेक-दूसरेसे चिपक जाते हैं और बादमें यह जोड़ा-नाव दंपतीकी तरह लंबी लंबी यात्रा करती है। अुनको गोल गोल चक्कर काटते देखकर मनमें जो भाव प्रकट होते हैं अुन्हें व्यक्त करना कठिन है। कअी तो जीवन-ज्योति बुझनेसे पहले ही दृष्टिसे ओझल हो जाते हैं। मृत्यु और अदृष्ट दोनों मनुष्य-जीवनके आखिरी अध्याय हैं। अिनके सामने किसीकी चलती नहीं, अिसीलिअे मनुष्यको अीश्वरका स्मरण होता है। मरण न होता तो शायद अीश्वरका स्मरण भी न होता।

हिंमत हो तो किसी दिन सुबह चार बजे अकेले अकेले अिस घाट पर आकर बैठिये। कुछ अलग ही किस्मके भक्त आपको यहां दिखाअी

देंगे। सुबह तीन बजेसे लेकर सूर्योदय तक विशिष्ट लोग ही यहां आवेंगे। वाजिनीवती अुषा सूर्यनारायणको जन्म देती है और तुरन्त व्यावहारिक दुनिया अिस घाट पर कब्जा कर लेती है। अुसके पहले ही यहांसे खिसक जाना अच्छा है। आकाशके सितारे भी खुश होंगे।

मार्च, १९३६

९

दक्षिणगंगा गोदावरी

१

बचपनमें सुबह अुठकर हम भूपाली* गाते थे। अुनमें से ये चार पंक्तियां अब भी स्मृतिपट पर अंकित हैं:

'अुठोनियां प्रातःकाळीं। वदनीं वदा चंद्रमौळी।
श्रीविठुमाधवाजवळी। स्नान करा गंगेचें। स्नान करा गोदेचें॥

* * *

कृष्णा वेण्णा तुंगभद्रा। सरयू कालिंदी नर्मदा।
भीमा भाना गोदा। करा स्नान गंगेचें॥

गंगा और गोदा अेक ही हैं। दोनोंके माहात्म्यमें जरा भी फर्क नहीं है। फर्क कोअी हो भी तो अितना ही कि कलिकालके पापके कारण गंगाका माहात्म्य किसी समय कम हो सकता है; किन्तु गोदावरीका माहात्म्य कभी कम हो ही नहीं सकता। श्री रामचंद्रके अत्यंत सुखके दिन अिस गोदावरीके तीर पर ही बीते थे, और जीवनका दारुण आघात भी अुन्हें यहीं सहना पड़ा था। गोदावरी तो दक्षिणकी गंगा है।

कृष्णा और गोदावरी अिन दो नदियोंने दो विक्रमशाली महाप्रजाओंका पोषण किया है। यदि हम कहें कि महाराष्ट्रका स्वराज्य

* प्रभातियां।

और आंध्रका साम्राज्य अिन्हीं दो नदियोंका ऋणी है, तो अिसमें जरा-सी भी अत्युक्ति नहीं होगी। साम्राज्य बने और टूटे, महाप्रजायें चढ़ीं और गिरीं; किन्तु अिस अैतिहासिक भूमिमें ये दो नदियां अखंड बहती ही जा रही हैं। ये नदियां भूतकालके गौरवशाली अितिहासकी जितनी साक्षी हैं अुतनी ही भविष्यकालकी महान आशाओंकी प्रेरक भी हैं। अिनमें भी गोदावरीका माहात्म्य कुछ अनोखा ही है। वह जितनी सलिल-समृद्ध है अुतनी ही अितिहास-समृद्ध भी है। गोपाल-कृष्णके जीवनमें जिस तरह सर्वत्र विविधता ही विविधता भरी हुअी है, अेकसा अुत्कर्ष ही अुत्कर्ष दिखाअी देता है, अुसी तरह गोदावरीके अति दीर्घ प्रवाहके किनारे सृष्टि-सौंदर्यकी विविधता और विपुलता भरी पड़ी है। ब्रह्मदेवकी अेक कल्पनामें से जिस तरह सृष्टिका विस्तार होता है, वाल्मीकिकी अेक कारुण्यमयी वेदनामें से जिस तरह रामायणी सृष्टिका विस्तार हुआ है, अुसी तरह त्र्यंबकके पहाड़के कगारसे टपकती हुअी गोदावरीमें से ही आगे जाकर राजमहेंद्रीकी विशाल वारिराशिका विस्तार हुआ है। सिंधु और ब्रह्मपुत्राको जिस तरह हिमालयका आलिंगन करनेकी सूझी, नर्मदा और ताप्तीको जिस तरह विंध्य-सातपूड़ाको पिघलानेकी सूझी, अुसी तरह गोदावरी और कृष्णाको दक्षिणके अुन्नत प्रदेशको तर करके अुसे धनधान्यसे समृद्ध करनेकी सूझी है। पक्षपातसे सह्याद्रि पर्वत पश्चिमकी ओर ढल पड़ा, यह मानो अिन्हें पसन्द नहीं आया। अैसा ही जान पड़ता है कि अुसे पूर्वकी ओर खींचनेका अखंड प्रयत्न ये दोनों नदियां कर रही हैं। अिन दोनों नदियोंका अुद्गम-स्थान पश्चिमी समुद्रसे ५०–७५ मीलसे अधिक दूर नहीं है; फिर भी दोनों ८००–९०० मीलकी यात्रा करके अपना जलभार या कर-भार पूर्व-समुद्रको ही अर्पण करती हैं। और अिस कर-भारका विस्तार कोअी मामूली नहीं है। अुसके अन्दर सारा महाराष्ट्र देश आ जाता है, हैदराबाद और मैसूरके राज्योंका अंत-र्भाव होता है, और आंध्र देश तो साराका सारा अुसीमें समा जाता है। मिश्र संस्कृतिकी माता नाअिल नदी हमारी गोदावरीके सामने कोअी चीज ही नहीं है।

त्र्यंबकके पास पहाड़की अेक बड़ी दीवारमें से गोदाका अुद्गम हुआ है। गिरनारकी अूंची दीवार परसे भी त्र्यंबककी अिस दीवारका पूरा खयाल नहीं आयेगा। त्र्यंबक गांवसे जो चढ़ाअी शुरू होती है वह गोदामैयाकी मूर्तिके चरणों तक चलती ही रहती है। अिससे भी अूपर जानेके लिअे बाअीं ओर पहाड़में विकट सीढ़ियां बनायी गयी हैं। अिस रास्ते मनुष्य ब्रह्मगिरि तक पहुंच सकता है। किन्तु वह दुनिया ही अलग है। गोदावरीके अुद्गम-स्थानसे जो दृश्य दीख पड़ता है वही हमारे वातावरणके लिअे विशेष अनुकूल है। महाराष्ट्रके तपस्वियों और राजाओंने समान भावसे अिस स्थान पर अपनी भक्ति अुंड़ेल दी है। कृष्णाके किनारे बाअी सातारा और गोदाके किनारे नासिक पैठण महाराष्ट्रकी सच्ची सांस्कृतिक राजधानियां हैं।

२

किन्तु गोदावरीका अितिहास तो सहन-वीर रामचंद्र और दुःख-मूर्ति सीतामाताके वृत्तांतसे ही शुरू होता है। राजपाट छोड़ते समय रामको दुःख नहीं हुआ; किन्तु गोदावरीके किनारे सीता और लक्ष्मणके साथ मनाये हुअे आनंदका अंत होते ही रामका हृदय अेकदम शतधा विदीर्ण हो गया। बाघ-भेड़ियोंके अभावमें निर्भय बने हुअे हिरण आर्य रामभद्रकी दुःखोन्मत्त आंखें देखकर दूर भाग गये होंगे। सीताकी खोजमें निकले देवर लक्ष्मणकी दहाड़ सुनकर बड़े बड़े हाथी भी भय-कंपित हो गये होंगे। और पशुपक्षियोंके दुःखाश्रुओंसे गोदावरीके विमल जल भी कषाय हो गये होंगे। हिमालयमें जिस तरह पार्वती थी, अुसी तरह जनस्थानमें सीता समस्त विश्वकी अधिष्ठात्री थी। अुसके जाने पर जो कल्पांतिक दुःख हुआ वह यदि सार्वभौम हुआ हो, तो अुसमें आश्चर्य ही क्या है?

राम-सीताका संयोग तो फिर हुआ। किन्तु अुनका जनस्थानका वियोग तो हमेशाके लिअे बना रहा। आज भी आप नासिक-पंचवटीमें घूमकर देखें, चाहे चौमासेमें जायें या गरमीमें, आपको यही मालूम होगा मानो सारी पंचवटी जटायुकी तरह अुदास होकर 'सीता, सीता'

पुकार रही है। महाराष्ट्रके साधु-संतोंने यदि अपनी मंगल-वाणी यहां फैलाअी न होती, तो जनस्थान मानो भयानक अुजाड़ प्रदेश हो गया होता। गरमीकी धूपको टालनेके लिअे जिस तरह तृणसृष्टि चारों ओर फैल जाती है, अुसी तरह जीवनकी विषमताको भुला देनेके लिअे साधु-संत सर्वत्र विचरते हैं, यह कितने बड़े सौभाग्यकी बात है! जब जब नासिक-त्र्यंबककी ओर जाना होता है, तब तब वनवासके लिअे अिस स्थानको पसन्द करनेवाले राम-लक्ष्मणकी आंखोंसे सारा प्रदेश निहारनेका मन होता है। किन्तु हर बार कंपित तृणोंमें से सीतामाताकी कातर तनु-यष्टि ही आंखोंके सामने आती है।

रामभक्त श्रीसमर्थ रामदास जब यहां रहते थे तब अुनके हृदयमें कौनसी अूर्मियां अुठती होंगी! श्रीसमर्थने गोदावरीके तीर पर गोवरके हनुमानकी स्थापना किस हेतुसे की होगी? क्या यह बतानेके लिअे कि पंचवटीमें यदि हनुमान होते तो वे सीताका हरण कभी न होने देते? सीतामाताने कठोर वचनोंसे लक्ष्मण पर प्रहार करके अेक महासंकट मोल ले लिया। हनुमानको तो वे अैसी कोअी बात कह नहीं पातीं! किन्तु जनस्थान और किष्किंधाके बीच बहुत बड़ा अंतर है, और गोदावरी कोअी तुंगभद्रा नहीं है।

* * *

रामकथाका करुण रस द्वापर युगसे आज तक बहता ही आया है। अुसे कौन घटा सकता है? अिसलिअे हम अंत्यज जातिके माने गये पाड़ेके मुंहसे वेदोंका पाठ करवानेवाले श्री ज्ञानेश्वर महाराजसे मिलने पैठण चलें। गोदावरी जिस तरह दक्षिणकी गंगा है, अुसी तरह अुसके किनारे पर बसी हुअी प्रतिष्ठान नगरी दक्षिणकी काशी मानी जाती थी। यहांके दशग्रंथी ब्राह्मण जो 'व्यवस्था' देते थे, अुसे चारों वर्णोंको मान्य करना पड़ता था। बड़े बड़े सम्राटोंके ताम्रपत्रोंसे भी यहांके ब्राह्मणोंके व्यवस्थापत्र अधिक महत्त्वके माने जाते थे। अैसे स्थान पर शास्त्रधर्मके सामने हृदयधर्मकी विजय दिखानेका काम सिर्फ ज्ञानराज ही कर सकते थे। पैठणमें ज्ञानेश्वरको यज्ञोपवीतका

अधिकार नहीं मिला। संन्यासी शंकराचार्यके ऊपर किये गये अत्याचारोंकी स्मृतिको कायम रखनेके लिअे जिस तरह वहांके राजाने नांबुद्री ब्राह्मणों पर कअी रिवाज लाद दिये थे, अुसी तरह संन्यासी-पुत्र ज्ञानेश्वरका यदि कोअी शिष्य राजपाटका अधिकारी होता तो वह महाराष्ट्रीय ब्राह्मणोंको सजा देता और कहता कि ज्ञानेश्वरको यज्ञोपवीतका अिनकार करनेवाले तुम लोग आगेसे यज्ञोपवीत पहन ही नहीं सकते।

हाथकी अुंगलियोंका जिस तरह पंखा बनता है, अुसी तरह बड़ी बड़ी नदियोंमें आकर मिलनेवाली और आत्म-विलोपनका कठिन योग साधनेवाली छोटी नदियोंका भी पंखा बनता है। सह्याद्रि और अजिंठाके पहाड़ोंसे जो कोना बनता है अुसमें जितना पानी गिरता है अुस सबको खींच खींच कर अपने साथ ले जानेका काम ये नदियां करती हैं। धारणा और कादवा, प्रवरा और मुळाको यदि छोड़ दें तो भी मध्यभारतसे दूर दूरका पानी लानेवाली वर्धा और वैनगंगाको भला कैसे भूल सकते हैं? दो मिलकर अेक बनी हुअी नदीका जिसने प्राणहिता नाम रखा, अुसके मनमें कितनी कृतज्ञता, कितना काव्य, कितना आनंद भरा होगा! और ठेठ अीशान कोणसे पूर्व-घाटका नीर ले आनेवाली अप्टवक्रा निद्रावती और अुसकी सखी श्रमणी तपस्विनी शबरीको प्रणाम किये बिना कैसे चल सकता है?

गोदावरीकी संपूर्ण कला तो भद्राचलम्‌से ही देखी जा सकती है। जिसका पट अेकसे दो मील तक चौड़ा है अैसी गोदावरी जब अूंचे अूंचे पहाड़ोंके बीचमें से होकर अपना रास्ता बनाती हुअी सिर्फ दो सौ गजकी खाअीमें से निकलती है तब वह क्या सोचती होगी? अपनी सारी शक्ति और युक्ति काममें ले कर नाजुक समयमें अपनी महाप्रजाको आगे ले चलनेवाले किसी राष्ट्रपुरुषकी तरह और संसारको विस्मयमें डालनेवाली गर्जनाके साथ वह यहांसे निकलती है। नदीमें आनेवाले घोड़ा-पूर और हाथी-पूर जैसे नारी पूरोंकी बातें हम सुनते हैं; किन्तु अेकदम पचास फुट जितना अूंचा पूर क्या कभी कल्पनामें भी आ सकता है? पर जो कल्पनामें संभव नहीं है, वह गोदावरीके प्रवाहमें

संभव है। संकड़ी खाअीमें से निकलते हुअे पानीके लिअे अपना पृष्ठभाग भी सपाट बनाये रखना असंभव-सा हो जाता है। अर्घ्य देते समय जिस प्रकार अंजलिकी छोटी नाली-सी बन जाती है, अुसी प्रकार खाअीमें से निकलनेवाले पानीके पृष्ठभागकी भी अेक भयानक नाली बनती है। किन्तु अद्‌भुत रस तो अिससे भी आगे अधिक है। अिस नालीमें से अपनी नावको ले जानेवाले साहसी नाविक भी वहां मौजूद हैं! नावके दोनों ओर पानीकी अूंची अूंची दीवारोंको नावके ही वेगसे दौड़ते हुअे देखकर मनुष्यके दिलमें क्या क्या विचार अुठते होंगे?

भद्राचलम्‌से राजमहेन्द्री या धवलेश्वर तक अखंड गोदावरी वहती है। अुसके वाद 'त्यागाय संभृतार्थानाम्' का सनातन सिद्धांत अुसे याद आया होगा। यहांसे गोदावरीने जीवन-वितरण करना शुरू कर दिया है। अेक ओर गोतमी गोदावरी, दूसरी ओर वसिष्ठ गोदावरी; वीचमें कअी द्वीप और अंतर्वेदी जैसे प्रदेश हैं; और अिन प्रदेशोंमें गोदाके सरस जलसे और काली चिकनी मिट्टीसे पैदा होनेवाले सोनेके जैसे शालिधान्य पर परिपुष्ट होकर वेदघोष करनेवाले ब्राह्मण रहते आये हैं। अैसे समृद्ध देशको स्वतंत्र रखनेकी शक्ति जब हमारे लोग खो बैठे, तब डच, अंग्रेज और फ्रेंच लोग भी गोदावरीके किनारे पड़ाव डालनेको अिकट्ठे हुअे। आज * भी यानानमें फ्रांसका तिरंगा झंडा फहरा रहा है।

३

मद्राससे राजमहेन्द्री जाते समय वेजवाड़ेमें सूर्योदय हुआ। वर्षा-ऋतुके दिन थे। फिर पूछना ही क्या था? सर्वत्र विविध छटाओं-वाला हरा रंग फैला हुआ था। और हरे रंगका अिस तरह जमीन पर पड़ा रहना मानो असह्य लगनेसे अुसके वड़े वड़े गुच्छ हाथमें लेकर अूपर अुछालनेवाले ताड़के पेड़ जहां तहां दीख पड़ते थे। पूर्वकी ओर अेक नहर रेलकी सड़कके किनारे किनारे वह रही थी। पर किनारा अूंचा होनेके कारण अुसका पानी कभी कभी ही दीख पड़ता था। सिर्फ तितलियोंकी

* सौभाग्यसे आज यह परिस्थिति नहीं है।

तरह अपने पाल फैलाकर कतारमें खड़ी हुअी नौकाओं परसे ही अुस नहरका अस्तित्व ध्यानमें आता था। बीच बीचमें पानीके छोटे बड़े तालाब मिलते थे। अिन तालाबोंमें विविधरंगी बादलोंवाला अनंत आकाश नहानेके लिअे अुतरा था, अिसलिअे पानीकी गहराअी अनंत गुनी गहरी मालूम होती थी। कहीं कहीं चंचल कमलोंके बीच निस्तब्ध बगुलोंको देखकर प्रभातकी वायुका अभिनंदन करनेका दिल हो जाता था। अैसे काव्यप्रवाहमें से होकर हम कोव्वूर स्टेशन तक आ पहुंचे। अब गोदावरी मैयाके दर्शन होंगे अैसी अुत्सुकता यहींसे पैदा हुअी। पुल परसे गुजरते समय दायीं ओर देखें या बायीं ओर, अिसी अुधेड़बुनमें हम पड़े थे। अितनेमें पुल आ ही गया और भगवती गोदावरीका सुविशाल विस्तार दिखाअी पड़ा।

गंगा, सिंधु, शोणभद्र, अैरावती जैसे विशाल वारि-प्रवाह मैंने जी भरकर देखे हैं। बेजवाड़ेमें किये हुअे कृष्णामाताके दर्शनके लिअे मैंने हमेशा गर्व अनुभव किया है। किन्तु राजमहेन्द्रीके पासकी गोदावरीकी शोभा कुछ अनोखी ही थी। अिस स्थान पर मैंने जितना भव्य काव्यका अनुभव किया है, अुतना शायद ही और कहीं बहता देखा होगा। पश्चिमकी ओर नजर डाली तो दूर दूर तक पहाड़ियोंका अेक सुन्दर झुंड बैठा हुआ नजर आया। आकाशमें बादल घिरे होनेसे कहीं भी धूप न थी। सांवले बादलोंके कारण गोदावरीके धूलि-धूसर जलकी कालिमा और भी बढ़ गअी थी। फिर भवभूतिका स्मरण भला क्यों न हो? अूपरकी और नीचेकी अिस कालिमाके कारण सारे दृश्य पर वैदिक प्रभातकी सौम्य सुन्दरता छाअी हुअी थी। और पहाड़ियों पर अुतरे हुअे कअी सफेद बादल तो बिलकुल ऋषियोंके जैसे ही मालूम होते थे। अिस सारे दृश्यका वर्णन शब्दोंमें कैसे किया जा सकता है?

अितना सारा पानी कहांसे आता होगा? विपत्तियोंमें से विजयके साथ पार हुआ देश जैसे वैभवकी नयी नयी छटायें दिखाता जाता है और चारों ओर समृद्धि फैलाता जाता है, वैसे ही गोदावरीका प्रवाह पहाड़ोंसे निकलकर अपने गौरवके साथ आता हुआ दिखाअी देता था। छोटे बड़े जहाज नदीके बच्चों जैसे थे। माताके स्वभावसे परिचित होनेके कारण अुसकी गोदमें चाहे जैसे नाचें तो अुन्हें कौन

रोकनेवाला था? किन्तु बच्चोंकी अुपमा तो अिन नावोंकी अपेक्षा प्रवाहमें जहां तहां पैदा होनेवाले भंवरोंको देनी चाहिये। वे कुछ देर दिखाअी देते, बड़े तूफानका स्वांग रचते, और अेकाध क्षणमें हंस देते। और टूट पड़ते। चाहे जहांसे आते और चाहे जहां चले जाते या लुप्त हो जाते।

अितने बड़े विशाल पटमें यदि द्वीप न हों तो अुतनी कमी ही मानी जायगी। गोदावरीके द्वीप मशहूर हैं। कुछ तो पुराने धर्मकी तरह स्थिर रूप लेकर बैठे हैं। किन्तु कअी-अेक तो कविकी प्रतिभाके समान हर समय नया नया स्थान लेते हैं और नया नया रूप धारण करते हैं। अिन पर अनासक्त बगुलोंके सिवा और कौन खड़ा रहने जाय? और जब बगुले चलने लगते हैं तब वे अपने पैरोंके गहरे निशान छोड़े बगैर थोड़े ही रहते हैं। अपने धवल चरित्रका अनुसरण करनेवालोंको दिशा-सूचन न करा दें तो वे बगुले ही कैसे!

नदीका किनारा यानी मानवी कृतज्ञताका अखंड अुत्सव। सफेद सफेद प्रासाद और अूंचे अूंचे शिखर तो अेक अखंड अुपासना हैं ही। किन्तु अितनेसे ही काव्य संपूर्ण नहीं होता। अतः भक्त लोग हर रोज नदीकी लहरों परसे मंदिरके घंटनादकी लहरोंको अिस पारसे अुस पार तक भेजते रहते हैं।

संस्कृतिके अुपासक भारतवासी अिसी स्थान पर गंगाजलके कलश आधे गोदामें अुंड़ेलते हैं और फिर गोदाके पानीसे अुन्हें भरकर ले जाते हैं। कितनी भव्य विधि है! कितना पवित्र भावप्रधान काव्य है! यह भक्तिरव प्रत्येक हृदयमें भरा हुआ है। वह घंटनाद और वह भक्तिरव पूर्वस्मृतिने ही सुनाया। दरअसल तो केवल अेंजिनकी आवाज ही सुनाअी देती थी। आधुनिक संस्कृतिके अिस प्रतिनिधिके प्रति अपनी घृणाको यदि हम छोड़ दें तो रेलके पहियोंका ताल कुछ कम आकर्षक नहीं मालूम होता। और पुल पर तो अुसका विजयनाद संक्रामक ही सिद्ध होता है।

पुल पर गाड़ी काफी देर चलनेके बाद मुझे खयाल आया कि पूर्व दिशाकी ओर तो देखना रह ही गया। हम अुस ओर मुड़े। वहां

बिलकुल नयी ही शोभा नजर आयी। पश्चिमकी ओर गोदावरी जितनी चौड़ी थी, अुससे भी विशेष चौड़ी पूर्वकी ओर थी। अुसे अनेक मार्गों द्वारा सागरसे मिलना था। सरित्पतिसे जब सरिता मिलने जाती है तब अुसे संभ्रम तो होता ही है। किन्तु गोदावरी तो धीरोदात्त माता है। अुसका संभ्रम भी अुदात्त रूपमें ही व्यक्त हो सकता है। अिस ओरके द्वीप अलग ही किस्मके थे। अुनमें वनश्रीकी शोभा पूरी-पूरी खिली हुअी थी। ब्राह्मणोंके या किसानोंके झोंपड़े अिस ओरसे दिखाअी नहीं पड़ते थे। बहते पानीके हमलेके सामने टक्कर लेनेवाले अिन द्वीपोंमें किसीने अूंचे प्रासाद बनाये होते तो शायद वे दूरसे ही दीख पड़ते। प्रकृतिने तो केवल अूंचे अूंचे पेड़ोंकी विजय-पताकायें खड़ी कर रखी थीं। और बायीं ओर राजमहेंद्री और धवलेश्वरकी सुखी बस्ती आनंद मना रही थी। अैसे विरल दृश्यसे तृप्त होनेके पहले ही नदीके दायें किनारे पर अुन्मत्तताके साथ बहता हुआ कांसकी सफेद कलगियोंका स्थावर प्रवाह दूर दूर तक चलता हुआ नजर आया। नदीके पानीमें अुन्माद था, किन्तु अुसकी लहरें नहीं बनी थीं। कलगियोंके अिस प्रवाहने पवनके साथ षड्यंत्र रचा था, अिसलिअे वह मनमानी लहरें अुछाल सकता था। जहां तक नजर जा सकती थी वहां तक देखा। और नजरकी पहुंच यहां कम क्यों हो? किन्तु कलगियोंका प्रवाह तो बहता ही जा रहा था। गोदावरीके विशाल प्रवाहके साथ भी होड़ करते अुसे संकोच नहीं होता था। और वह संकोच क्यों करता? माता गोदावरीके विशाल पुलिन पर अुसने माताका स्तन्यपान क्या कम किया था?

माता गोदावरी! राम-लक्ष्मण-सीतासे लेकर वृद्ध जटायु तक सबको तूने स्तन्यपान कराया है। तेरे किनारे शूरवीर भी पैदा हुअे हैं, और तत्त्वचिंतक भी पैदा हुअे हैं। संत भी पैदा हुअे हैं और राजनीतिज्ञ भी। देशभक्त भी पैदा हुअे हैं और अीश-भक्त भी। चारों वर्णोंकी तू माता है। मेरे पूर्वजोंकी तू अधिष्ठात्री देवता है। नयी नयी आशायें लेकर मैं तेरे दर्शनके लिअे आया हूं। दर्शनसे तो कृतार्थ हो गया हूं। किन्तु मेरी आशायें तृप्त नहीं हुअी हैं। जिस प्रकार तेरे किनारे रामचंद्रने दुष्ट

रावणके नाशका संकल्प किया था, वैसा ही संकल्प मैं कबसे अपने मनमें लिये हुअे हूं। तेरी कृपा होगी तो हृदयमें से तथा देशमें से रावणका राज्य मिट जायेगा, रामराज्यकी स्थापना होते मैं देखूंगा और फिर तेरे दर्शनके लिअे आअूंगा। और कुछ नहीं तो कांसकी कलगीके स्थावर प्रवाहकी तरह मुझे अुन्मत्त बना दे, जिससे बिना संकोचके अेक-ध्यान होकर मैं माताकी सेवामें रत रह सकूं और बाकी सब कुछ भूल जाअूं। तेरे नीरमें अमोघ शक्ति है। तेरे नीरके अेक बिंदुका सेवन भी व्यर्थ नहीं जायेगा।

अक्तूबर, १९३१

१०

वेदोंकी धात्री तुंगभद्रा

जलमग्न पृथ्वीको अपने शूलदंतसे बाहर निकालनेवाले वराह भगवानने जिस पर्वत पर अपनी थकान दूर करनेके लिअे आराम किया, अुस पर्वतका नाम वराह-पर्वत ही हो सकता है। भगवान आराम करते थे तब अुनके दोनों दंतोंसे पानी टपकने लगा और अुसकी धाराअें पैदा हुअीं। बायें दंतकी धारा हुअी तुंगा नदी और दाहिने दंतसे निकली भद्रा नदी। आज अिस अुद्गम-स्थानको कहते हैं गंगामूल और वराह-पर्वतको कहते हैं बाबाबुदान। बाबाबुदान शायद वराह-पर्वत नहीं है, लेकिन अुसका पड़ोसी है। तुंगाके किनारे शंकराचार्यका शृंगेरी मठ है। मैंने तुंगाके दर्शन किये थे तीर्थहळ्ळीमें। (कन्नड़ भाषामें हळ्ळीके मानी हैं ग्राम।) तीर्थहळ्ळीमें मैं शायद अेक घंटे जितना ही ठहरा था। लेकिन वहांकी नदीके पात्रकी शोभा देखकर खुश हुआ था। तीर्थहळ्ळीका माहात्म्य तो मैं नहीं जानता, लेकिन कन्नड़ भाषाकी अेक छोटीसी लघुकथामें मैंने तीर्थहळ्ळीका वर्णन पढ़ा था। वही मेरे लिअे तीर्थहळ्ळीका स्मरण कायम करनेके लिअे काफी है। तुंगाके किनारे शिमोगा शहरके पास किसी

समय महात्मा गांधीके साथ मैं घूमने गया था। किस कारण भी यह नदी स्मृतिपट पर अंकित है।

नदीके किनारे बेंकिपुर आता है। यहांकी भाषामें अग्निको बेंकि कहते हैं। क्या नदीका पानी बेंकिपुरकी आग बुझानेके लिये काफी नहीं था?

तुंगा और भद्राका संगम होता है कूडलीके पास। शायद किसी संगमके महादेवके भक्त थे श्री बसवेश्वर, जो एक राजाके प्रधान-मंत्री होने पर भी लिंगायत पंथकी स्थापना कर सके। बसवेश्वरके काव्यमय गद्यवचनोंके अंतमें 'कूडल-संगम देवरया' का जिक्र बार बार आता है। उसे पढ़कर 'मीराके प्रभु गिरवर नागर' का स्मरण हुये बिना नहीं रहता। कूडलीके पास जो तुंगभद्रा बनती है वह आगे जाकर कुर्नूलके पास मेरी माता कृष्णासे मिलती है। किंतु बीच कुमुद्वती, वरदा, हरिद्रा और वेदावति जैसी नदियां तुंगभद्रासे मिलती हैं। (वेदावति भी तुंग-भद्राके जैसी ढंढ नदी है। वेद और अवति मिलकर वह बनती है)। किस प्रदेशमें तुल्यबल ढंढ संस्कृतिका ही बोलबाला होगा। क्योंकि तुंगभद्राके किनारे ही हरिहर जैसी पुण्यनगरीकी स्थापना हुयी है। शैव और वैष्णवोंका झगड़ा मिटानेके लिये किसी अज्ञात-भक्तने हरि और हर दोनोंको मिला कर एक मूर्ति बना दी। उसके मंदिरके आसपास जो शहर बसा उसका नाम हरिहर ही पड़ा।

तुंगभद्राका पात्र पथरीला है। जहां देखें गोल-मटोल बड़े बड़े पत्थर नदीके पात्रमें स्नान करते पाये जाते हैं। ऐसे पत्थर कभी कभी किस प्रदेशमें टेकरियोंके शिखर पर भी एकके ऊपर एक विराजमान पाये जाते हैं। किन्हीं पत्थरोंके बीच एक प्रचंड विस्तार पर विजयनगर साम्राज्यकी राजधानी थी।

विजयनगरके खंडहर देखनेके लिये जब मैं होस्पेटसे विरूपाक्ष गया था तब जिन भीमकाय बट्टोंका या चट्टानोंका दर्शन किया था। विजयनगरके अप्रतिम कारीगरीके भग्न मंदिरोंका दर्शन करते करते मेरा हृदय सम्राट् कृष्णरायका याद कर रहा था। राजको विरूपाक्षके मंदिरमें हम सो गये तब तीन सौ साल जिसकी कीर्ति कायम रही उस साम्राज्यके

वैभवके ही स्वप्न मैंने देखे। दूसरे दिन ब्राह्म मुहूर्तमें अुठकर हम नजदीकके मातंग पर्वतके शिखर पर जा पहुंचे। वहां हमें अरुणोदयका और बादमें अुतने ही काव्यमय सूर्योदयका दृश्य देखना था। मातंग पर्वतकी चोटी परसे तुंगभद्राका दर्शन करके हम धीरे धीरे लेकिन कूदते कूदते नीचे अुतरे।

जब रावण सीतामाताको अुठाकर गगनमार्गसे जा रहा था तब सीताके वल्कलका अंचल यहांकी चट्टानोंको घिस गया था। अुसकी रेखाअें आज भी यहांके पत्थरों पर पाअी जाती हैं।

अभी अभी चार साल पहले मैंने कुर्नूलके पास तुंगभद्राको अपना समस्त जीवन कृष्णाको अर्पण करते देखा; और अुसके पाससे स्वार्पणकी दीक्षा ली।

सुनता हूं कि अब अिस तुंगभद्रा पर बांध बांधकर अुसके अिकट्ठा किये हुअे पानीसे सारे मुल्कको समृद्धि पहुंचायी जायेगी और अुसी पानीसे बिजली पैदा करके अुसकी शक्तिसे अुद्योगोंका विकास किया जायेगा। माताकी सेवाकी भी कभी कोअी मर्यादा हो सकती है?

नदीके प्रवाहमें ये हाथीके जैसे बड़े बड़े पत्थर बादमें आकर पड़े हैं या हाथीके जैसे पत्थरोंमें से ही नदीने अपना रास्ता खोज निकाला है, अिसकी खोज कौन कर सकता है? दक्षिणमें वैदिक संस्कृतिके विजयका सूचन करनेवाला विजयनगरका साम्राज्य अिसी नदीके किनारे निर्माण हुआ। और अिसी नदीके किनारे वह कच्चे घड़ेके समान टूट गया। विजयनगरके साम्राज्यकी कीर्ति-पताका त्रिखंडमें फहराती थी। चीनका सम्राट्, बगदादका बादशाह और विजयनगरका महाराजाधिराज, तीनोंका वैभव सबसे बड़ा माना जाता था। अुस समय क्या तुंगभद्रा आजके जैसी ही दिखाअी देती होगी? नहीं तो कैसी दिखाअी देती होगी? नदी क्या मनुष्यकी कृति है, जिससे अुसके वैभवमें अुत्कर्ष और अपकर्ष हो?

मुळा और मुठा मिलकर जैसे मुळामुठा नदी बनी है, वैसे ही तुंगा और भद्राके संगमसे तुंगभद्रा बनी है। 'द्वंद्वः सामासिकस्य च' के न्यायसे अिन दोनों नदियोंमें अुच्चनीच भाव तनिक भी नहीं है। दोनों

नाम समान भावसे साथ साथ वहते हैं। अिस नदीके पानीकी मिठास और अुपजाअूपनकी तारीफ प्राचीन कालसे होती आयी है। सभी नदी-भक्तोंने स्वीकार किया है कि गंगाका स्नान और तुंगाका पान मनुष्यको मोक्षके रास्ते ले जाता है। मोटरकी यात्रा यदि न होती तो तुंगभद्राको मैं अनेक स्थानों पर अनेक तरहसे देख लेता। तुंगभद्रा अेक महान संस्कृतिकी प्रतिनिधि है। आज भी वेदपाठी लोगोंमें तुंगभद्राके किनारे वसे हुअे ब्राह्मणोंके अुच्चारण आदर्श और प्रमाणभूत माने जाते हैं। वेदोंका मूल अध्ययन भले सिंधु और गंगाके किनारे हुआ हो, परन्तु अुनका यथार्थ सादर रक्षण तो सायणाचार्यके समयसे तुंगभद्राके ही किनारे हुआ है।

१९२६–'२७

११

नेल्लूरकी पिनाकिनी

नेल्लूर यानी धानका गांव। दक्षिण भारतके अितिहासमें नेल्लूरने अपना नाम चिरस्थायी कर दिया है। वेजवाड़ेसे मद्रास जाते हुअे रास्तेमें नेल्लूर आता है।

भारत सेवक समाजके स्व० हणमंतरावने नेल्लूरसे कुछ आगे पल्लीपाडु नामक गांवमें अेक आश्रमकी स्थापना की है। अुसे देखनेके लिअे जाते समय सुभग-सलिला पिनाकिनीके दर्शन हुअे। श्रीमती कनकम्माके पवित्र हाथोंसे काते हुअे सूतकी धोतीकी भेंट स्वीकार करके हम आश्रम देखनेके लिअे चले। कुछ दूर तक तो वगीचे ही वगीचे नजर आये। जहां तहां नहरोंमें पानी दौड़ता था, और हरियाली ही हरियाली हंसती दिखाअी देती थी।

वादमें आयी रेत। आगे, पीछे, दायें, वायें रेत ही रेत। पवन अपनी अिच्छाके अनुसार जहां तहां रेतके टीले वनाता था, और दिल वदलने पर अुतनी ही सहजतासे अुन्हें विखेर देता था। अैसी रेतमें

शांतिसे गुजर करनेवाले तुंगकाय ताड़वृक्ष आनंदके साथ डोल रहे थे। धूपसे अकुलाकर वे खुद अपने ही अूपर चमर डुलाते थे या हमारे जैसे पथिकों पर तरस खाकर पंखा करते थे, यह भला ताड़ोंने कभी स्पष्ट किया है? दोपहरकी धूप कर्मकांडी ब्राह्मणोंके समान कठोरतासे तप रही थी। पांव जलते थे। सिर तपता था। और शरीरके बीचके हिस्सेको सम-वेदना देनेके लिअे प्यास अपना काम करती थी।

अिस प्रकार त्रिविध तापसे तप्त होकर हम आश्रममें पहुंचे। वहां मैं अेक बड़े टेकरे पर जा चढ़ा। और अेकाअेक पिनाकिनीका तरल प्रवाह आंखोंमें बस गया। कितना शीतल अुसका दर्शन था! गेहूंके रवेके जैसी सफेद रेत पर स्फटिक जैसा पानी बहता हो, और अूपरसे चंड भास्करके प्रतापी किरण बरसते हों, अैसी शोभाका वर्णन कैसे हो सकता है? मानों चांदीके रसकी कोठी भट्टीका ताप सहन न कर सकनेके कारण टूट गयी है, और अंदरका रस जिस ओर मार्ग मिले अुस ओर दौड़ रहा है! पवनने दिशा बदली और पिनाकिनी परसे बहकर आनेवाला ठंडा पवन सारे शरीरको आनंद देने लगा। पासकी अमराअीके अेक पेड़ पर चढ़कर दो डालियोंके बीच आरामकुर्सी जैसा स्थान ढूंढ़कर मैं बैठ गया। दूर ताड़वृक्ष डोल रहे थे। वयोवृद्ध आम्रवृक्ष छांव फैला रहे थे। और पिनाकिनी शीतल वायु फूंक रही थी। क्या नंदनवनमें भी अिससे अधिक सुख मिलता होगा?

नदी-किनारेके अिस काव्यका पान करके आंखें तृप्त हुअीं और मुंदने लगीं। स्वर्गीय अस्थिर आम्रासनसे भ्रष्ट होनेका डर यदि न होता तो जाग्रतिके अिस काव्यसे तुलना हो सके अैसा स्वप्नकाव्य मैं वहां जरूर अनुभव कर लेता।

पिनाकिनीका पट बहुत बड़ा है। सुना है कि वर्षाऋतुमें वह रुद्रावतार धारण करती है। अुसकी अिस लीलाके वर्णनोंकी शैली परसे मालूम हुआ कि पिनाकिनीके प्रति यहांके लोगोंकी कुछ अनोखी ही भक्ति है। असलमें पिनाकिनी दो हैं। जिसे मैं देख रहा था वह है अुत्तर पिनाकिनी अथवा पेन्नेर। यह ठेठ नंदीदुर्गसे आती है। वहांसे

आते आते वह जयमंगली, चित्रावती और पापघ्नीका पानी ले आती है। मानवन अिन नदियोंके स्तन्यसे बहुत लाभ अुठाया है। और अब तो तुंगभद्राका भी कुछ पानी पेन्नारको मिलेगा। और वह सब धान अुगानेके काममें आयेगा।

१९२६–'२७

१२

जोगका प्रपात

ठेठ बचपनसे ही, मैं पश्चिम समुद्रके किनारे कारवारमें था तबसे, गिरसप्पाके बारेमें मैंने सुना था। अुस समय सुना था कि कावेरी नदी पहाड़ परसे नीचे गिरती है और अुसकी अितनी बड़ी आवाज होती है कि दो मीलकी दूरी पर अेकके अूपर अेक रखी हुअी गागरें हवाके धक्केसे ही गिर जाती हैं! तब फिर अुस प्रपातकी आवाज तो कहां तक पहुंचती होगी? बादमें जब भूगोल पढ़ने लगा तब मनमें संदेह पैदा हुआ कि कावेरीका अुद्गम तो ठेठ कुर्गमें है और वह पूर्व-समुद्रसे जा मिलती है। वह पश्चिम घाटके पहाड़ परसे नीचे गिर ही नहीं सकती। तब गिरसप्पामें जो गिरती है वह नदी दूसरी ही होगी। अुसे तो शीघ्रतासे होन्नावरके पास ही पश्चिम-समुद्रसे मिलना था। अिसलिअे सवा-सौ, डेढ़-सौ पुरुष जितनी अूंचाअी से वह कूद पड़ी है। अुस नदीका नाम क्या होगा?

नायगराके प्रपातके कअी वर्णन मेरे पढ़नेमें आये थे। प्रकृति माताका अमरीकाको दिया हुआ वह अद्भुत आभूषण है। दुनिया भरके लोग अुसकी यात्राके लिअे जाते हैं। कअी लोगोंने बड़े मजबूत पीपेमें बैठकर अुस प्रपातमें से पार होनेके प्रयत्न किये हैं आदि वर्णन जैसे जैसे मैं अधिक पढ़ता गया वैसे वैसे मेरा कुतूहल बढ़ता गया। अनेक दिशाओंसे लिये हुअे चित्र और अक्षिपट (Bioscopes) नायगराको नजरके सामने प्रत्यक्ष करने लगे। अिस प्रकार नायगराका अप्रत्यक्ष दर्शन जैसे जैसे बढ़ता

गया, वैसे वैसे बचपनमें सुने हुये अुस गिरसप्पाके प्रपातकी मानसपूजा बढ़ती गयी। बादमें जब यह पता चला कि नायगरा तो सिर्फ १६४ फुटकी अूंचाअीसे गिरता है, जब कि गिरसप्पाकी अूंचाअी ९६० फुट है, तब तो मेरे अभिमानका कोअी पार न रहा। सबसे मुख्य और संसारका सबसे बड़ा पर्वत हिन्दुस्तानमें है। सिंधु, गंगा, और ब्रह्मपुत्रा जैसी नदियोंके बारेमें किसी भी देशको जरूर गर्व हो सकता है। यह सिद्ध करनेके लिअे कि सबसे लंबी नदी हमारे ही यहां है, अमरीकाको दो नदियोंकी लंबाअी मिलाकर अेक करनी पड़ी। मिसोरी और मिसिसिपीको अलग अलग मानें तो अुनकी लंबाअी कितनी होगी? हिन्दुस्तानका अितिहास जिस तरह पृथ्वी पर सबसे पुराना है, अुसी तरह हिन्दुस्तानकी भू-रचना भी सारे संसारमें अद्‌भुत है।

क्या हिन्दुस्तान केवल प्रपातके बारेमें हार जायगा? सारे संसारने कबूल किया है कि अशोकके समान दूसरा सम्राट् दुनियामें नहीं हुआ है। भूगोलमें भी लोगोंको स्वीकारना चाहिये कि भव्यतामें गिरसप्पासे (अुसका सही नाम जोग है) मुकाबला हो सके अैसा दूसरा अेक भी प्रपात संसारमें नहीं है।

कारकल राजकीय परिषद्‌के लिअे मैं दक्षिण कर्णाटकमें गया था तब अुम्मीद रखी थी कि अगुंबा घाट चढ़कर शिमोगा होते हुअे गिरसप्पा देखनेके लिअे जाअूंगा। किन्तु वैसा नहीं हो सका।

मनसा चिंतितं कार्यं दैवेनान्यत्र नीयते।

निराशामें मैंने मान लिया कि अिस चिरसंचित आशासे आखिर मैं हमेशाके लिअे वंचित हो गया हूं और गिरसप्पाका दर्शन मुझे ध्यानके द्वारा ही करना होगा।

किन्तु अितना तो जान लिया था कि जोग मैसूर राज्यकी सीमा पर है। वहां जानेके दो रास्ते हैं। अूपरका रास्ता शिमोगा सागर होकर जाता है और दूसरा नदीके मुखकी ओरसे जाता है। अिसमें बंदर होन्नावरसे नावमें बैठकर जंगलोंको पार करके गिरसप्पा गांव तक जाना होता है और वहांसे घाट चढ़ना पड़ता है। दोनों रास्तोंसे जाकर आये हुअे लोग कहते हैं कि अेक ओरकी शोभा दूसरी ओर देखनेको

नहीं मिलती। यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि अेक ओरकी शोभा दूसरी ओरकी शोभासे अुतरती है। अेक रास्तेसे जाअूं और दूसरी ओरका साक्षात् अनुभव न करूं, तब तक तो मुझे कबूल करना ही चाहिये कि मैंने जोगके आधे ही दर्शन किये हैं।

गुजरातमें बाढ़ आयी थी अुस समय गांधीजी अपनी बीमारीके दिन बंगलोरमें बिता रहे थे। मैं अुनसे मिलने गया था। वहांसे मैसूर राज्यमें घूमते घागते गांधीजी सागर तक पहुंचे। श्री गंगाधरराव और राजगोपालाचार्य साथमें थे। सागर पहुंचनेके बाद गिरसप्पा देखनेके लिअे न जाना तो मेरे लिअे असंभव था। मोटरसे अेक ही घण्टेका रास्ता था। शिमोगामें तुंगाके किनारे घूमने गये थे तब मैंने गांधीजीसे आग्रह किया था, "आप गिरसप्पा देखने चलिये न? लॉर्ड कर्जन सिर्फ गिरसप्पा देखनेके लिअे खास तौर पर यहां आये थे। अिस ओर आना फिर कब होगा?" गांधीजी बोले, "मुझसे अितनी भी मनमानी नहीं हो सकेगी। तुम जरूर हो आओ। तुम देख आओगे तो विद्यार्थियोंको भूगोलका अेकाध पाठ पढ़ा सकोगे।" मैंने दलील पेश की: "मगर यह संसारका अेक अद्भुत दृश्य है। नायगरासे जोग छः गुना अूंचा है। ९६० फुट अूपरसे पानी गिरता है। आपको अेक बार अुसे देखना ही चाहिये।"

अुन्होंने पूछा, "बारिशका पानी आकाशसे कितनी अूंचाअीसे गिरता है?" और मैं हार गया। मनमें कहा: "स्थितधीः किं प्रभाषेत? किमासीत? व्रजेत किम्?"

मुझे मालूम था कि गांधीजीको संगीतकी तरह सृष्टि-सौंदर्यका भी बड़ा शौक है। घूमने जाते हुअे सूर्यास्तकी शोभाकी ओर या बादलोंमें से झांकते हुअे किसी अकेले सितारेकी ओर अुन्होंने मेरा ध्यान किसी समय खींचा न हो अैसी बात नहीं थी। किन्तु प्रजाकी सेवाका व्रत लिये हुअे गांधीजी जैसे सेवक महात्मा मनमानी किस तरह कर सकते हैं?

कुलशिखरिणः क्षुद्रा नैते न वा जलराशयः।

अेक बात अिस तरह समाप्त हुअी अिसलिअे मैंने दूसरी बात शुरू कर दी: "आप नहीं आते अिसलिअे महादेवभाअी भी नहीं आते। आप अुनसे कहेंगे तो ही वे आयेंगे।"

"अुसकी अिच्छा हो तो वह भले तुम्हारे साथ जाये। मैं मना नहीं करूंगा। किन्तु वह नहीं आयेगा। मैं ही अुसका गिरसप्पा हूं।"

वाकीके हम सब ठहरे दुनियवी आदर्शके लोग! पहाड़ परसे गिरता हुआ प्रपात चर्मचक्षुसे न देखें तब तक हमें तृप्ति नहीं हो सकती थी। अिसलिअे भोजनके पहले ही हम सागरसे रवाना हुअे और मोटरकी मददसे जंगल पार करने लगे। पहाड़ोंको कुरेदकर रेलवेवाले जब खोह या सुरंग बनाते हैं तब हमें बहुत आश्चर्य होता है। किन्तु बम्बअीकी बस्तीसे भी घने सह्याद्रिके जंगलोंमें से रास्ता तैयार करना अुससे भी अधिक कठिन है। यहां आपका डायनेमाअिट (सुरंग) नहीं चलेगा। तनेको काटनेके बाद भी अेक अेक पेड़को शाखाओंके जालसे मुक्त करना हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ोंको निबटाने जितना कठिन काम है। खंडाला घाटकी गहरी खोहके बीचोंबीच जाने पर आदमी जिस भयानक रमणीयताका अनुभव करता है, अुसी तरहकी स्थितिका अनुभव अिन जंगलोंमें होता है। अैसे जंगलोंमें हाथी, बाघ या अजगर जैसे प्राणी ही शोभा देते हैं। अिनमें मनुष्य तो बिलकुल तुच्छ प्राणी मालूम होता है। लगता है, यह अैसे जंगलमें कहांसे आ गया!

खैर; हम जंगल पार करके शरावतीके किनारे पहुंचे। अिस ओर अुसे भारंगी भी कहते हैं। भारंगी यानी बारहगंगा। यहांके लोग यदि यह मानते हों कि गंगा नदीसे अिस नदीका माहात्म्य बारह गुना अधिक है, तो हम अुनसे झगड़ा नहीं करेंगे। हरेक बच्चेको अपनी ही मां सर्वश्रेष्ठ मालूम होती है न? पानी रिमझिम बरस रहा था। यहां गगनभेदी महावृक्ष भी थे, और छोटे-बड़े झाड़-झंखाड़ भी थे। अमर घास भी थी और जमीन तथा पेड़ोंकी बूढ़ी छाल पर अुगनेवाली शैवाल (काअी) भी थी। अुस पारके छोटे-बड़े पेड़ नदीका पानी कितना ठंडा या गहरा है यह जांचनेके लिअे अपने पत्तोंवाले हाथ पानीमें

डालते थे। और कुहरेके चंद बादल आलसी सांड़की तरह इधर-उधर भटक रहे थे।

नदीको देखकर हमेशा सवाल उठता है कि यह नदी कहांसे आती है और कहां जाती है? मेरे मनमें तो हमेशा नदी कहांसे आती है, यही सवाल प्रथम उठता है। दूसरोंके मनमें भी यही सवाल उठता होगा। इसका क्या कारण है? नदी कहां जाती है, यह जांचना आसान है। नदीमें कूद पड़े कि वह हमें अनायास अपने साथ ले चलती है। इतनी हिम्मत न हो तो अेकाध पेड़के तनेको कुरेदकर बस उसमें बैठ जाइये। किन्तु नदी कहांसे आती है, यह जांचनेके लिअे प्रतीप गतिसे जाना चाहिये। अैसा तो सिर्फ ऋषिगण हो कर सकते हैं। उस दिनका दृश्य अैसा था जिससे मनमें संदेह उत्पन्न होता था कि भारंगी या शरावतीका पानी पहाड़से आता है या बादलोंसे?

नावमें बैठकर हम उस पार गये। किनारेकी जमीनसे कअी नन्हें नन्हें झरने कूद कूदकर नदीमें गिरते थे। उन परसे हम सहज अनुमान लगा सके कि अगले दिन भारी बरसात होनेके कारण नदीका पानी काफी बढ़ गया था। आज वह करीब पांच फुट उतरा था। नाव हमें नीचे उतारकर दूसरोंको लाने वापस गअी। शांत पानीमें नाव जब डांडकी डब् डब् आवाज करती हुअी जाती या आती है उस समयका दृश्य कितना सुंदर मालूम होता है! और जब यह नाव हमारे प्रियजनोंको अपने पेटमें स्थान देकर उन्हें गहरे पानीकी सतह परसे खींचकर लाती है, तब चिंताका कोअी कारण न होते हुअे भी मनमें डर मालूम हुअे बिना नहीं रहता। राजगोपालाचार्य अपने पुत्र और पुत्रीको साथ लेकर नावमें बैठने जा रहे थे। मैंने उनसे कहा, 'हमारे पुरखोंने कहा है कि अेक ही कुटुंबके सब लोग अेकसाथ अेक ही नावमें बैठें यह ठीक नहीं है। या तो पिता हमारे साथ आयें या पुत्र; दोनों नहीं।' साथी लोग अिस रिवाजकी चर्चा करने लगे। किसीको अिसमें प्रतिष्ठाकी बू आअी, किसीको और कुछ सूझा। किन्तु किसीके ध्यानमें यह बात नहीं आअी कि सर्वनाशकी संभावनाको टालनेके लिअे ही यह नियम बनाया गया है। मुझे यह अर्थ स्पष्ट करके वायुमंडलको विषण्ण नहीं बनाना

था। अिसलिअे पुरखोंकी बुद्धिकी निंदा सुनता हुआ मैं अुस पार पहुंचा। जब नाव मझधारमें पहुंची तब मंत्र बोलकर आचमन करना मैं नहीं भूला। नदीके दर्शनके साथ स्नान, पान और दानकी विधि होनी ही चाहिये। तभी कहा जायगा कि नदीका पूरा साक्षात्कार किया।

दूसरी टुकड़ी आ पहुंची और हम दाहिनी ओरके रास्तेसे चलने लगे। नदीका वह बायां किनारा था। रास्तेके बड़े बड़े पेड़ोंको मस्जिदके स्तंभोंकी तरह सीधे अूंचे जाते देखकर हमें आनंद हुआ। हमारी टोली अितनी बड़ी थी कि अिस निर्जन अरण्यमें देखते ही देखते हमारा वार्ताविनोद और हमारा अट्टहास्य चारों ओर फैल गया। मगर कितनी देर तक? हम कुछ ही दूर गये होंगे कि नदीने अपनी गंभीर ध्वनि शुरू की। अिस आवाजको किसकी अुपमा दी जाय? अितनी गंभीर आवाज और कहीं सुनी हो तभी तो अुपमा दी जा सके न? मेघगर्जना भीषण जरूर होती है, और यह भी सच है कि वह सारे आकाशमें फैल जाती है। किन्तु वह सतत नहीं होती। यहां तो आप सुन सुनकर थक जायें तो भी आवाज रुकती ही नहीं। क्या यहां बादल टूट पड़ते हैं? क्या तोपें छूटती हैं? अथवा पहाड़के बड़े बड़े पत्थरोंकी घानी फूटती है? या नदी अपना ध्यानमौन छोड़कर महारुद्रका स्तवराज बोलती है?

'अब कौनसा दृश्य आयेगा?', 'अब कौनसा दृश्य आयेगा?' अैसे कुतूहलसे आंखें फाड़कर चारों ओर देखते देखते हम मुसाफिरखाने (डाकबंगले) तक पहुंचे। जहांसे प्रपातका दर्शन सबसे सुन्दर होता है, वहीं मैसूर राज्यकी ओरसे यह अतिथिशाला बनायी गयी है। हम निरीक्षणके चबूतरे पर जा पहुंचे। मगर यह क्या! सर्वव्यापी कुहरेके अलावा और कुछ दिखायी ही नहीं देता था। और प्रपात अपनी गंभीर आवाजसे सारी घाटीको गूंजा रहा था। ठीक दोपहरको भी सूर्यके दर्शन नहीं हो पाये। जहां देखें वहां कुहरा ही कुहरा! कुहरेके घने बादल मानो कुरुक्षेत्रका महायुद्ध मचा रहे हों और जोग अपने तालसे अुनका साथ दे रहा हो। अितनी अुम्मीदके साथ आनेके बाद अिस तरहका तमाशा हमें कभी देखनेको नहीं मिला था। मिनट पर

मिनट वीतते जाते थे और हमारी निराशाके साथ कुहरा भी घना होता जाता था। आखिर हम मौन तोड़कर आपसमें बातें करने लगे। बातें करनेके लिअे कोअी खास विषय नहीं था, किन्तु निराशाकी शून्यताको भरनेके लिअे कुछ तो चाहिये था।

क्या अिंद्रदेव कुपित हो गये हैं या वरुणदेव अप्रसन्न हो गये हैं? मैं यह सोच ही रहा था कि अितनेमें वायुदेवने मदद की और अेक क्षणके लिअे—सिर्फ अेक ही क्षणके लिअे—कुहरेका वह घना परदा दूर हटा और जिंदगीभर जिसके लिअे तरसता रहा था वह अद्‌भुत दृश्य आखिर आंखोंके सामने आया! महादेवजीके सिर पर जिस तरह गंगाका अवतरण होता है, अुसी प्रकार अेक बड़ा प्रपात नीचेकी खोहसे बाहर निकले हुअे हाथी जैसे पत्थर पर गिरकर, पानीका आटा बनाकर, चारों ओर अुसकी बौछारें अुड़ा रहा है!!

नहीं। अिस दृश्यका वर्णन शब्दोंमें हो ही नहीं सकता। आश्चर्यमग्न होकर मैं बोल अुठा:

नमः पुरस्तात्, अथ पृष्ठतस् ते नमोऽस्तु ते सर्वत अेव सर्व।
अनन्त-वीर्यामित-विक्रमस् त्वम् सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥

तुरन्त सामनेका वह हाथीके समान पत्थर सिरसे प्रपातकी जटाओंको झाड़कर बोला:

सुदुर्दर्शम् अिदं रूपं दृष्टवान् असि यन् मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शन-कांक्षिणः॥

कुहरेका परदा फिर पहलेकी तरह जम गया और हमारी स्थिति अैसी हो गयी मानो हमने जो दृश्य देखा था वह सब स्वप्न था, माया थी या मतिभ्रम था! वह विस्तीर्ण खोह, वह विशाल पात्र, वह भयानक गहराअी और अुसके बीच पानीका नहीं बल्कि आटेका—नहीं, मैदेका—वह अद्‌भुत प्रपात और फव्वारा! सारा दृश्य कल्पनातीत था। यह प्रतीति दृढ़ होनेके पहले ही कि हम जो अपनी आंखोंसे देख रहे हैं वह सच्चा ही है, कुहरेका क्षीरसागर फिर फैल गया और हम सामनेके काव्यके साथ अुसमें डूब गये।

अब कोअी किसीसे बोलता नहीं था। जो देखा था अुस पर सब सोचने लगे। जहां कुछ भी नहीं था वहां अितनी बड़ी और गहरी सृष्टि कहांसे पैदा हुअी और देखते ही देखते वह कहां लुप्त हो गयी — अिसी आश्चर्यने मानो हम सबको घेर लिया।

मनमें आया, चाहे अेक क्षणके लिअे ही क्यों न हो, जो देखने आये थे अुसे हमने देख लिया। अद्भुत रीतिसे देख लिया। अेक क्षणके लिअे जो दर्शन हुआ अुसके स्मरण और ध्यानमें घंटों बिताये जा सकते हैं।

अितनेमें वह शुभ्र जटाधारी पत्थर फिरसे बोला:

व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस् त्वं तदेव मे रूपम् अिदं प्रपश्य।

कुहरेका आवरण फिर दूर हटा और अब तो अिस छोरसे अुस छोर तक सब कुछ स्पष्ट दीख पड़ने लगा। सामनेकी ओरसे ठेठ बायें छोर पर 'राजा' अर्धचंद्राकार पत्थर परसे नीचे कूद रहा था। अुसका पानी बारिशके कीचड़के कारण कॉफीके रंगका हो गया था। किन्तु सबसे अधिक पानी राजाको ही मिलता है। छाती फुलाता हुआ जब वह ठेठ सीधा नीचे गिरता है तब अिस बातका खयाल होता है कि प्रकृतिकी शक्ति कितनी अपरिमित है। राजा प्रपातका विस्तार भी कुछ कम नहीं है। और अुसके दोनों ओर बड़े बड़े मोतियोंके कअी हार लटकते दीड़ते हैं। सचमुच यह प्रपात राजाके नामके काबिल ही है।

अुसके पासके जिस प्रपातका दर्शन मुझे सबसे प्रथम हुआ था वह बस्तवमें तीसरा था। अुसका नाम है वीरभद्र। बीचका अेक प्रपात रुद्र अिस ओरसे स्पष्ट दिखाअी ही नहीं देता। वह कदम कदम पर जोरसे चिल्लाता हुआ आखिर राजामें मिल जाता है।

ठेठ दाहिनी ओर अेक छोटासा प्रपात है। अुसकी कमर कुछ पतली है। अिसलिअे मैंने अुसका नाम पार्वती रखा। जी भरकर देखनेके बाद हमारी बातें फिरसे शुरू हुअीं। स्वयं जो कुछ देखा हो अुसे दूसरेको दिखानेकी अुमंग जिसमें न हो वह आदमी आदमी नहीं

है। आदमी संचारशील होता है, संवादशील होता है। अुसने जो अनुभव किया वही दूसरोंको भी होता है—हो सकता है—अैसा विश्वास जब तक न हो तब तक अुसे परम संतोष नहीं होता। राजाजीने ध्यान खींचा, 'यह नीचे तो देखो! ठंडी भापके ये बादल कैसे अूपर कूद आते हैं?' देवदास कहने लगे, 'अुन पक्षियोंको तो देखो! कैसे निर्भय होकर अुड़ रहे हैं?' मणिबहनने भी अैसा ही कुछ कहा और लक्ष्मीने अपने अण्णाको तमिल भाषामें बहुत कुछ समझाकर अपना आनंद व्यक्त किया। हमारे साथ और अेक भाअी आये थे। वे रास्तेमें अकारण ही नाराज हो गये थे। हम जब अिस स्वर्गीय दृश्यके आनंदमें विभोर हो रहे थे तब अुन भाअीको अपने माने हुअे अपमानकी ही जुगाली करनी थी। चंद्रशंकरने अुनकी अिस स्थितिकी ओर मेरा ध्यान खींचा। मैं मन ही मन बोला:

पत्रं नैव यदा करीर-विटपे दोषो वसंतस्य किम्?
नोलूकोप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्?

अिस संसारमें निराशा, गलतफहमी, अप्रतिष्ठा, या वियोग सच्चे दुःख नहीं हैं। बल्कि अहंकार ही सबसे बड़ा दुःख है। अहंकारकी विकृतिको बड़े बड़े धन्वंतरि भी दूर नहीं कर सकते।

अुन भाअीकी अनेक प्रकारकी परेशानियों और विकृतियोंको मैं जानता था। अिसलिअे गिरसप्पाके जोगके सामने भी अुन्हें दो क्षण दिये बिना मुझसे रहा नहीं गया। मैंने अुनको गिरसप्पाके बारेमें थोड़ी जानकारी दी और अुन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया।

राजा प्रपातके पीछेकी ओरकी खोहमें असंख्य पक्षी रहते हैं, और दूर दूरके खेतोंसे चुनकर लाये हुअे 'अुच्छिष्ट' और अुत्कृष्ट दानोंका संग्रह करते हैं। अेक बार किसीसे सुना था कि यह संग्रह अितना बड़ा होता है कि सरकारकी ओरसे अुसका नीलाम किया जाता है। मधुमक्खियोंका मधु लूटनेवाला मानव-प्राणी पक्षियोंके संग्रहको भी लूटे तो अुसमें आश्चर्यकी क्या बात है? जो संग्रह करता है वह लूटा जाता है, अैसी सृष्टिकी व्यवस्था ही दीख पड़ती है: 'परिग्रहो भयायैव'।

फिर कुहरेका आवरण फैला और मुझे अन्तर्मुख होकर विचारमें डूब जानेका मौका मिला। अैसे भव्य दृश्योंका रहस्य क्या है? भूगोलवेत्ता और भूस्तरशास्त्री फौरन कह देंगे 'यहांका पहाड़ 'निस्' कोटिके पत्थरके स्तरका है। घाटीमें से अेक कगार टूट गअी होगी और आसपासकी मिट्टी घुल गअी होगी। अेक बार प्रपात शुरू होने पर वह नीचेकी जमीनको अधिकाधिक गहरा खोदता जाता है और जहांसे प्रपात शुरू होता है अुस कोनेको घिसता जाता है। अूपरका वह माथा यदि सख्त पत्थरका हो, तो अूंचाअी हजारों बरसों तक कायम रह सकती है। प्रपातसे समुद्र अधिक दूर न होनेसे नदीका आगेका हिस्सा साफ हो गया है और प्रपातकी अूंचाअी कायम रही है।' किन्तु यह तो हुआ प्रपातका जड़ रहस्य। किसी आधुनिक यांत्रिकसे पूछिये तो वह कहेगा: 'अकेले गिरसप्पाके प्रपातमें अितना प्रचंड सामर्थ्य है कि मैसूर और कानड़ा (कर्णाटक) अिन दोनों जिलोंको चाहिये अुतनी शक्ति वह दे सकता है। फिर, आप अुससे बिजली लीजिये, हरेक शहर और गांवको प्रकाशित कीजिये, कल-कारखाने चलाअिये और अपने मुल्कके या दूसरोंके मुल्कके चाहे अुतने लोगोंको बेकार बना दीजिये।'

प्रकृतिसे जो कुछ फायदा मिलता है वह पृथ्वीकी सभी संतानें आपसमें समझ-बूझकर बांट लें और जीवनयात्राका बोझा हल्का कर लें, अैसी बुद्धि आदमीको जब सूझेगी तबकी बात अलग है। किन्तु आज तो मनुष्यके हाथमें किसी भी तरहकी शक्ति आ गयी कि वह फौरन अुसका अुपयोग दूसरोंसे स्पर्धा करके श्रेष्ठत्व पानेके लिअे ही करता है। फिर वह श्रेष्ठत्व अुसे भले दूसरोंको मारकर मिलता हो, गुलाम बनाकर मिलता हो, या आधे पेट पर रखकर मिलता हो।

मैसूर राज्य अेक आगे बढ़ा हुआ राज्य है। बड़े बड़े अिंजीनियरोंने दीवानपदको सुशोभित करके यहांकी समृद्धिको बढ़ानेकी कोशिश की है। यदि कहें कि सारे संसारके लिअे आवश्यक चंदनका तेल सिर्फ मैसूर राज्य ही देता है तो अिसमें अधिक अत्युक्ति नहीं होगी। हिन्दुस्तानकी बड़ीसे बड़ी सोनेकी खानें मैसूरमें ही हैं। भद्रावतीके लोहेके कल-कारखानेकी कीर्ति बढ़ती ही जा रही है। और

कृष्णसागर तालाब तो मानव-पराक्रमका अेक सुन्दर नमूना है। यह तो हो ही नहीं सकता कि अैसे मैसूर राज्यको गिरसप्पाके प्रपातको भुनाकर खानेकी बात सूझी न हो। किन्तु अब तक यह बात अमलमें नहीं आयी — अितनी बड़ी शक्तिका कौनसा अुपयोग किया जाय, यह न सूझनेसे या सीमाका कोअी झगड़ा बीचमें आनेसे या अन्य किसी कारणसे, यह में भूल गया हूं। मगर अिसमें कोअी शक नहीं कि गिरसप्पाकी शोभा अब भी अुतनी ही प्राकृतिक, अुदात्त और अक्षुण्ण है।

भगिनी निवेदिताकी प्रख्यात तुलनाका यहां स्मरण हो आता है। किसी भी स्थानकी रमणीयताने जब भारतवासीको आकर्षित किया है तब अुसने फौरन अुसका धार्मिक रूपान्तर कर ही दिया है। भारतका हृदय जब किसी अद्‌भुत, रमणीय या भव्य दृश्यको देखता है, तब तुरंत अुसको लगता है कि यह तो गाय जैसे बछड़ेको पुकारती है वैसे परमात्मा जीवात्माको पुकार रहा है। नायगराका प्रपात यदि हिन्दुस्तानमें गंगामैयाके प्रवाहमें होता तो यहांकी जनताने अुसका वायुमंडल कैसा बना डाला होता? आमोद-प्रमोद और पिकनिककी टोलियोंके बदले और रेलके यात्रियोंके बदले प्रपातकी पूजा करनेके लिअे वार्षिक या मासिक यात्रियोंकी टोलियां ही टोलियां यहां अिकट्ठा होतीं। भोगविलासके सब साधन मुहैया करनेवाले होटलोंके बदले प्रपातके किनारे या अुसके बीचोंबीच अुमड़े हुअे हृदयकी भक्ति अुंडेलनेके लिअे बड़े बड़े मंदिर बनाये गये होते। सृष्टिके वैभवको देखकर भड़कीले अैश-आराम और शान-शौकतके बदले लोगोंने यहां तप किया होता। और अितनी प्रचंड शक्तिको मनुष्यके फायदेके लिअे और सुख-चैनके लिअे कैद करनेकी बात सूझनेके बदले अुसे प्रकृतिके साथ अैक्यका अनुभव करनेवाली मस्तीमें भैरवजापके साथ पानीके प्रवाहमें अपने जीवन-प्रवाहको मिला देनेकी ही बात सूझती। स्वभाव-भिन्नतामें क्या कुछ बाकी रहता है?

मगर प्रकृतिकी भव्यताको देखकर अुसमें अपने शरीरको छोड़ देनेमें आध्यात्मिकता है क्या? नहीं। अिसमें कोअी संदेह नहीं कि शरीरके बंधन टूट जायें, 'किसी भी हालतमें जीवित रहूंगा ही' अिस तरहकी पामर जीवनाशा मनुष्य छोड़ दे, अिसमें आध्यात्मिक प्रगति

है। किन्तु यह वृत्ति स्थायी होनी चाहिये। क्षणिक उन्मादका कोओी अर्थ नहीं है। फना होनेकी अिच्छा हरेक मनुष्यके दिलमें किसी समय पैदा होती ही है। अिसकी यह अेक विकृति है। अिसमें किन्हीं आध्यात्मिक तत्त्वोंकी झांकी देखकर अुस पर फिदा होना मनुष्य-जीवनकी महत्ताको शोभा नहीं देता। भगवान बुद्धने अपनी अचूक नजरसे अुसको विभव-तृष्णाका नाम देकर अुसे धिक्कारा है। विभवका अर्थ है नाश। भगवान मनुने भी यह बात साफ शब्दोंमें बताओी है:

नाभिनन्देत मरणम्; नाभिनन्देत जीवितम्।

अिसमें संदेह नहीं कि गिरसप्पाके प्रपात जैसे रोमहर्षण दृश्यके सामने यंत्रों, शक्तिके हॉर्स-पावर, बिजलीके प्रकाश या कल-कारखानोंके बारेमें सोचना आत्माको भूलकर बाहरी वैभवका ध्यान करनेके बराबर है। किन्तु आसपासका प्रदेश यदि अकालसे पीड़ित हो, लोग अनेक रोगोंके शिकार होते हों, और जनताका यह दुःख प्रपातके पानीका अन्य अुपयोग करनेसे ही दूर होता हो, तो अुस समय हमारा क्या आग्रह होगा? सृष्टि-सौंदर्यका रसपान करनेवाले हमारे चित्तके आह्लादक साधनको — प्रपातको — वैसाका वैसा रखनेका, या हमारे आपद्ग्रस्त भाअियोंको दुःखमुक्त करनेके लिअे अुसका बलिदान देनेका? जहां पर्याप्त अनाज न मिलता हो वहां अनाजकी खेतीको छोड़कर गुलाबकी खेती करने लगें, तो क्या अिससे हमारा हृदयविकास होगा? गुलाबमें काव्य है, अनाजमें कारुण्य है। दोनोंमें से हम किसे पसन्द करेंगे? अिंग्लैंडके अेक प्राचीन राजाने अनेक गांवोंको अुजाड़कर मृगयाके लिअे अेक महान अुपवन तैयार किया था। अिसमें कोओी संदेह नहीं कि यह राजा मर्दाने खेलोंका रसिया था। किन्तु सवाल यह है कि अुसे प्रजासेवक मानें या नहीं? जब कलाके सामने सेवाका सवाल खड़ा होता है, किस वृत्तिको — काव्यकी या कारुण्यकी — पोषण दें यह तय करना होता है, तब निर्णय किस कसौटी पर कसकर दिया जाय? जलते हुअे रोमको देखकर नीरोका फिडल बजाना और जलती मिथिलाको देखकर जनक राजाकी आध्यात्मिक चर्चा करना, दोनोंमें फर्क है। जनताकी सेवा जितनी बन सकती थी अुतनी सब करनेके बाद व्यर्थकी चिंतामें दिलको जलानेकी

अपेक्षा हृदयमें अंतर्यामीके स्मरणको दृढ़ करनेका प्रयत्न आर्यवृत्तिको सूचित करता है। अिनेगिने लोगोंके विलास या अैश्वर्यके लिअे प्रकृतिकी शक्तिका अुपयोग करना और प्राकृतिक सौंदर्यका नाश करना अधर्म है। किन्तु प्राणियोंके आर्तिनाशसे होनेवाले हृदयविकासको छोड़कर प्रकृतिके विभूति-दर्शनमें अुसको ढूंढ़नेकी अिच्छा रखना अुचित है या नहीं, यह विचारने जैसा है।

वे रूठे हुअे भाअी अपने कल्पित अपमानकी जलनमें सामनेका दृश्य भूल गये थे और मैं अपने तात्त्विक कल्पना-विहारमें शून्य दृष्टिसे सामने देख रहा था। दोनों अभागे थे, क्योंकि कल्पना या जलन चलानेके लिअे बादमें चाहे अुतना समय मिलता। कुहरेका आवरण फिर फैला। अब क्या प्रपात फिरसे दिखाअी देनेवाला था? राजाजीने कहा, 'गरमीके दिनोंमें जब प्रपात गिरता है तब पानीकी फुहार पर तरह तरहके अिंद्रधनुष दिखाअी देते हैं। अुस समयकी शोभा बिलकुल निराली होती है।' और यह भी नहीं कहा जा सकता कि चांदनी रातमें भी धनुष नहीं दिखाअी देते। मैसूरका सर्वसंग्रह (गॅजेटियर) लिखता है कि घासके बड़े बड़े गट्ठोंको आग लगाकर प्रपातमें छोड़ देनेसे अैसा दिखाअी देता है मानो अंधेरी रातमें सारी घाटी जल अुठी हो। चंद लोगोंने रातके समय आतिशबाजी करके भी यहां अद्‌भुत आनंद पाया है। अुत्पाती मानव क्या क्या नहीं करता? मुझे तो अैसी कोअी बात पसन्द नहीं है। अैसे स्थान पर प्रकृति जो खुराक परोसती है अुसकी स्वाभाविक रुचि अनुभव करनेमें ही सच्ची रसिकता है। मानवी मसाले डालनेसे स्वाद और पाचनशक्ति, दोनों खराब होते हैं।

अब हम बंगलेके भीतर पहुंचे। साथमें जो भोजन लाये थे अुसको अुदरस्थ किया। यहांका पानी पी नहीं सकते, क्योंकि फौरन मलेरिया होता है। अधिकतर लोगोंने गरम-गरम कॉफी पीकर ही प्यास बुझाअी। मैंने तो अुस दिन चातककी तरह बारिशकी कुछ बूंदें पाकर ही संतोष माना।

प्रपातका और अेक बार दर्शन करके हम वापस लौटे। अब तो सब तरहसे स्पष्ट हो चुका कि प्रपात तीन नहीं बल्कि चार हैं।

बाअीं ओरका पहला बड़ा प्रपात है राजा। अुसकी बगलकी खोहसे आक्रोश करता हुआ अुससे आ मिलनेवाला 'रोअरर' (Roarer) मेरा रुद्र है। सिर पर छूट रहे फव्वारेकी शुभ्र जटाओंवाला 'रॉकेट'। अुसे अब वीरभद्र कहनेके सिवा चारा नहीं था। और अंतमें आनेवाले प्रपातका नाम मैंने तन्वंगी पार्वती ही रखा। अंग्रेजोंने रुद्रको Roarer नाम दिया है। वीरभद्रको Rocket और पार्वतीको Lady का नाम दिया है।

अब हम वापस लौटे। पांवोंमें जोंकें चिपकनेका डर था। यहांके लोगोंने हम सबको सावधानीसे चलनेके बारेमें चेतावनी दे रखी थी। अुन्होंने कहा था, जोंकें चिपकेंगी तो मालूम ही नहीं होगा कि चिपक गयी हैं, और खून चूसा जायेगा। मैंने कहा, आप अिसकी फिक्र मत कीजिये। अंग्रेजोंको हम पहचान गये हैं, तो क्या जोंकोंसे सावधान नहीं रहेंगे? तिस पर भी करीब करीब हरेकके पांवमें अेक अेक जोंक चिपक ही गअी। हो सकता है, मेरे शरीरमें खूनका विशेष आकर्षण न होनेसे या मेरा खून कसैला होनेसे या शायद काकदृष्टिसे देख देखकर मैं चलता था अिससे, मैं बच गया था। हम कुछ आगे गये। किन्तु मणिबहनसे रहा नहीं गया। 'जरा ठहरिये। बन सके तो फिर अेक बार अिस ओरसे प्रपातके दर्शन कर आती हूं।' 'मगर कुहरा खुले ही नहीं तो?' 'न खुले तो कोअी हर्ज नहीं। वापस लौट आयेंगे। किन्तु अेक बार देखने तो दीजिये।'

वापस लौटते समय बीचमें अेक जगह रास्ता फूटा था। वहांसे होकर कअियोंने नजदीकसे पार्वतीका दर्शन किया और वहांकी जमीन फिसलनेवाली होनेसे पार्वतीको 'वंदे मातरम्' कहकर साष्टांग प्रणिपात भी किया!

जाते समय जिस रास्तेसे अज्ञात और अननुभूत दशाका काव्य अनुभव किया था, अुसी रास्तेसे वापस लौटते समय हम संस्मरणोंके स्मृतिकाव्यका अनुभव करने लगे, हालांकि वही दृश्य अुलटी दिशासे देखनेमें कम नवीनता न थी। जिन पेड़ोंके बारेमें जाते समय हमने बातें की थीं, वही पेड़ वापस लौटते समय ध्यान तो खींचेंगे ही।

अिसलिअे अिन परिचित भाअियोंसे 'क्योंजी कैसे हो?' कहकर कुशल-समाचार पूछे बिना भला आगे कैसे जाया जा सकता है? और पेड़-पेड़के बीच प्रेमका पुल बांधनेवाली लतायें? अुनकी नम्रताको नमन किये बिना जो आगे जाता है वह अरसिक है। हम आहिस्ता-आहिस्ता नदीके किनारे तक आ पहुंचे। अब अुसी शांत प्रवाहके अूपरसे वापस लौटना था। कुहरेके बादल बिखर गये थे। नदीके शांत पानीको आहिस्ता-आहिस्ता प्रपातकी ओर जाता हुआ देखकर मेरे मनमें बलिदानके लिअे जाते हुअे भेड़ोंके झुंडकी तस्वीर खड़ी हो गअी। मैंने अुस पानीसे कहा: 'तुम्हारे भाग्यमें कितना बड़ा अवःपतन लिखा है अिस बातका खयाल तक तुम्हें नहीं है। अिसीलिअे अितने शांत चित्तसे तुम आगे बढ़ते हो। या नहीं — मैं ही गलती कर रहा हूं। तुम जीवनधर्मी हो। तुम्हें विनाशका क्या डर है?

प्रायः कन्दुक-पातेन पतत्यार्यः पतन्नपि।

जितनी अूंचाअीसे गिरोगे अुतने ही अूंचे अुछलोगे। तुम्हारी दया खानेवाला मैं कौन हूं? शरावतीके पवित्र पानीका स्पर्श करनेके लिअे मैंने अपना हाथ लंबा किया। पानी खिलखिलाकर हंसा और बोला, 'न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात! गच्छति।' नाव अिस पार आ गअी और हमें सूझा कि मोटरको अिस ओर जरा नीचे तक दौड़ाया जाय तो अुसी प्रपातकी फिरसे दाहिनी यात्रा भी होगी। हम जिस ओर हो आये थे अुसे 'मैसूरकी तरफ' कहते हैं और दाहिनी ओरसे जानेके लिअे निकले अुसे 'बम्बअीकी तरफ' कहते हैं। क्योंकि जोग दोनों राज्यकी सीमा पर है।

यहां तो हम बिलकुल नजदीक आ पहुंचे। मैं बड़ी बड़ी शिलाओंके बीचसे दौड़ने लगा। दो सालके बीमारके रूपमें मेरी ख्याति काफी फैली हुअी थी। अिससे मुझे दौड़ते देखकर राजाजीको आश्चर्य हुआ। किसीने कहा, 'वे तो महाराष्ट्रके मावले हैं और हिमालयके यात्री भी हैं। मछलियोंको जिस तरह पानी, अुसी तरह अिन मराठोंको पहाड़ होते हैं।' अिन वचनोंको सुननेके लिअे मुझे कहां रुकना था? मैं तो दौड़ता दौड़ता राजा प्रपातकी बगलमें अुस प्रख्यात टीलेके पास

जा पहुंचा। यहांसे खड़े खड़े नीचेकी ओर देखा ही नहीं जा सकता। चक्कर खाकर आदमी गिर जाता है। कानोंमें चारों प्रपातोंकी आवाज अितनी भरी हुअी थी कि दूसरा कुछ सुननेके लिअे अुनमें गुंजाअिश ही बाकी न थी। जिस तरह प्रपातका पानी अूपरसे नीचे गिरकर फिर अूंचा अुछलता था, अुसी तरह कानमें आवाज भी अुछलती होगी। प्रथम मेरा ध्यान खींचा राजाके गंडस्थल पर लटकती मोतियोंकी लड़ियोंने और जलप्रलयसे लोगोंको बचानेके लिअे जिस तरह वीर तैराक पानीमें कूदते हैं अुसी तरह अिस ओरके प्रपातमें होकर युक्तिसे गुजरनेवाले पक्षियोंने। क्या अिन पक्षियोंको अिस प्रपातकी भीषण भव्यताका खयाल ही नहीं है, या अीश्वरने अुनके दिलमें अितनी हिम्मत भर दी है? मेरा खयाल है कि आगंतुक पक्षियोंकी अितनी हिम्मत नहीं होगी। अिन जोगवासियोंका जन्म यहीं हुआ, प्रपातके पटलकी सुरक्षितितामें अुनकी परवरिश हुअी। शेरके बच्चे शेरनीसे नहीं डरते। सागरकी मछलियां लहरोंमें आनंद मानती हैं, अुसी तरह ये जोगके बच्चे जोगके साथ खेलते होंगे।

राजा प्रपातको मैसूरकी ओरसे दूरसे देखा था, तब अुसका असर भिन्न प्रकारका हुआ था। यहां तो हम अुसके अितने नजदीक थे, मानो हाथीके गंडस्थल पर ही सोये हों। अूपरका पानी प्रपातकी ओर अैसा खिचा चला आता था, मानो कोअी महाप्रजा जाने-अनजाने, अिच्छा-अनिच्छासे महान क्रांतिकी ओर घसीटी जाती हो। कोअी महाप्रजा जब सामाजिक और राजनीतिक प्रगतिके प्रवाहमें बहने लगती है तब आगे क्या होनेवाला है अिस बातका अुसे खयाल तक नहीं होता। और खयाल हो भी तो 'हमारे बारेमें यह सच्चा नहीं होगा, हम किसी न किसी तरह बच जायेंगे,' अैसी अंधी आशा वह रखती है। अिस बीच प्रगतिका नशा बढ़ता ही जाता है। अंतमें अुग्र लोग संयम सुझाते हैं और नरम (मॉडरेट) लोग अंधे होकर गैरजिम्मेदार लोगोंके साथ मिल जाते हैं और फिर अिच्छा होने पर भी पीछे नहीं हट सकते। या खुद पीछे हटें तो भी क्या? धनुषसे निकला हुआ तीर कभी पीछे खींचा जा सका है? जो अटल न हो वह क्रांति काहेकी?

प्रपातका पानी नीचे कहां तक जाता है यह देखना या जानना असंभव था। क्योंकि अुछलते हुअे पानीके बड़े बड़े बादल प्रपातके पांवोंसे लिपटे हुअे थे। पानीके अुन्मत्त अुत्सवको देखकर लगता था मानो महादेवजी संहारकारी तांडव-नृत्य ही कर रहे हों और सामनेका रुद्र अुसमें ताल दे रहा हो! परन्तु रोमांचकारी शोभाका परम अुत्कर्ष तो वीरभद्र ही दिखाता है। आपको यह मालूम ही नहीं होगा कि यहां पानी गिरता है और पानी अुछलता है। अैसा मालूम होता था मानो बड़ी बड़ी तोपोंसे गोलोंके सहारे कोरे आटेके फव्वारे अुड़ते हों। अुस दृश्यका वर्णन शब्दोंमें हो ही नहीं सकता, क्योंकि शब्दोंकी परवरिश 'शांति और व्यवस्था' के बीच होती है।

हमने लेटे लेटे यहांसे अिस दृश्यको जी भरकर देखा। या सच कहें तो चाहे अुतने लेटने पर भी तृप्त होना असंभव है अिस बातका यकीन हुआ तब तक देखा। आखिर हम खड़े होकर वापस लौटे। लेकिन वापस लौटना आसान न था। कोअी तो अुठता ही नहीं था। अुसे खींचकर लानेके लिअे दूसरा जाता था तो वह भी खुद अुस नयनोत्सवमें चिपक जाता था। पहला पछताकर अुठता था तो जो बुलाने जाता वह नहीं अुठता था। और जब दोनों मुश्किलसे संयम करके वापस लौटते, तब अिन पर गुस्सा होकर झगड़ा करनेके लिअे गये हुअे तीसरे भाअी अेक क्षणके लिअे आंखोंको तृप्त करने वहां खड़े हो जाते और अुन दोनोंके संयमको थोड़ा शिथिल बना देते। अुन दोनोंके मनमें आता: अितने चिढ़े हुअे समाज-नियंता जितनी छूट लेते हैं अुतनी यदि हम भी लें तो अिसमें कोअी गलती नहीं है। हम कहां अुनसे अधिक संयमी होनेका दावा करते हैं? मेरे दिलमें आया कि अुस शिला पर पहुंच जाअूंगा तो राजाके पानीमें पांव डाल सकूंगा। किन्तु नदीका पानी कुछ बढ़ता जा रहा था और अुसमें वह शिला अेक छोटे द्वीपके जैसी बन गअी थी। अिसलिअे राजाजीने मुझे मना किया। मुझे भी लगा कि अुनकी बात नहीं मानूंगा तो दूनी अुद्धतता होगी। राजाजीकी आज्ञाका अुल्लंघन कैसे किया जाय? और 'राजा' के सिर पर पांव कैसे रखा जाय?

हम वापस लौटे। भक्ति, विस्मय, मानव-जीवनकी क्षणभंगुरता, दृश्यकी भव्यता, अिस क्षणकी धन्यता — कअी वृत्तियोंके बादल हृदयमें भरे थे और वहांसे अुस वीरभद्रकी तरह सिरमें अपने तीर छोड़ते थे। विचारोंकी यह आतिशबाजी अद्‌भुत होती है। हृदयसे तीर छूटकर सीधे सिर तक पहुंचता है और वहां फूटता है तब स्वस्थ शरीर कैसा अस्वस्थ हो जाता है, अिस बातका जिसने अनुभव लिया है वही अिसके चमत्कारको जान सकता है।

अिस स्थान पर मंदिर क्यों नहीं है? हमारे मंदिर तो मानो जन्मभूमिके काव्यमय स्थान हैं। अगर पहाड़का अमुक शिखर अुत्तुंग है, तो वहां कोअी ऋषि ध्यान करनेके लिअे जाकर बैठा ही है और भक्तोंने वहां अेक मंदिर बनाया ही है। फिर वह चाहे पूनाके पासका पार्वती शिखर हो, चंपानगरके पासका पावागढ़ हो, जूनागढ़के पासका गिरनार हो या हिमालयका कैलास शिखर हो। दक्षिणकी ओर दौड़नेवाली नदी कहीं अुत्तरवाहिनी हुअी है? तो चलो, वहां अेकाध तीर्थकी स्थापना करो, करोड़ों लोग आकर पावन हो जायंगे। बड़ी बड़ी दो नदियां अेक-दूसरेसे मिलती हों तो अुस प्रयागमें हमारे संतोंने तीसरी अपनी सरस्वती बहायी ही है। सारी यात्रा पूरी करके समुद्र तक पहुंचे, तो वहां भक्तोंने जगन्नाथजीकी या सेतुबंध महादेवजीकी स्थापना की ही है। जहां जमीनका अंत दीख पड़ा वहां या तो कन्याकुमारी होगी या देवेंद्र होगा। लंबे रेगिस्तानमें अेकाध सरोवर दिखाअी दे तो वह नारायणका ही सरोवर है, अुसकी पूजा होनी ही चाहिये। और क्षीरभवानीकी स्थापना भी होनी ही चाहिये!

हमारे संत कवियोंने तीर्थस्थानोंकी स्थापना कहां कहां की है, यह खोजने चलेंगे तो हिन्दुस्तानका सारा भूगोल पूरा करना पड़ेगा। मुसलमान संतोंने और रोमन कैथलिक पादरियोंने भी हमारे देशमें अिसी तरह अद्‌भुत काव्यमय स्थान पसंद किये हैं और वहां पूजा-प्रार्थनाकी व्यवस्था की है। फिर अिस प्रपातके पास मंदिर क्यों नहीं है? क्या जीवनराशिके अितने बड़े अधःपतनको देखकर मुनि खिन्न हुअे होंगे? क्या भैरवघाटीकी तरह यहां शरीर छोड़नेका नशा पैदा

होगा, अिस खयालसे लोकसंग्रह करनेवाले मुनियोंने लोकयात्राके लिअे अिस स्थानको नापसन्द किया होगा? या दिमागको भर देनेवाली अखंड और भीषण गर्जना ध्यानके लिअे अनुकूल नहीं है, अैसा मानकर अुपासक यहांसे विमुख हुअे होंगे? या यह प्रपात ही स्वयं अभयब्रह्मकी मूर्ति है, अुसके पास ध्यान खींच सके अैसी कीमती मूर्ति खड़ी करें, अिस अुधेड़बुनमें पड़कर अुन्होंने यह विचार छोड़ दिया? कौन बता सकता है? हमारे पुरखोंने यहां कोअी मंदिर नहीं बनाया, अिस बातका मुझे जरा भी दुःख नहीं है। किन्तु अिस स्थानको देखकर सूझे हुअे भावोंका अेकाध तांडवस्तोत्र तो अवश्य अुनको लिखना चाहिये था। पार्थिव मूर्ति जहां काम नहीं करती वहां वाङ्मयी मूर्ति जरूर अुद्दीपक हो सकती है।

यह सारी शोभा हम प्रपातके सिर परसे देख रहे थे। होन्नावरकी ओरसे आनेवाले लोग जब अुत्तर कानड़ा जिलेके महाकांतारसे आते हैं तब अुन्हें नीचेसे अिस प्रपातका आ-पाद-मस्तक दर्शन होता होगा। दोनोंमें कौनसा दर्शन ज्यादा अच्छा है, यह बिना अनुभव किये कौन बता सकेगा? और अनुभव लें भी तो क्या? प्रकृतिकी अलग अलग विभूतियोंमें किसी समय तुलना हुअी है? हिमालयकी भव्यता, सागरकी गंभीरता, रेगिस्तानकी भीषणता और आकाशकी नम्र अनंतताके बीच तुलना या पसंदगी कौन कर सकता है? अिसलिअे अेक बार होन्नावरके रास्तेसे जोगके दर्शनके लिअे आना चाहिये।

समुद्रमें जहाजी बेड़ेका अनुभव लेकर कुशल बने हुअे चंद फौजी अफसर प्रपातको नापनेके लिअे आये थे और हिंडोलेमें लटकते हुअे प्रपातकी पीछेकी ओर पहुंच गये थे। अुन्हें किस तरहका अनुभव हुआ होगा? जोगके पक्षियोंने अुनका कैसा स्वागत किया होगा? प्रपातके परदेमें से अंदर फैलनेवाला बाहरका प्रकाश अुन्हें कैसा मालूम हुआ होगा? और अंधेरी रातमें प्रपातके पीछे यदि घास जलाकर बड़ा प्रकाश किया जाय तो सारी घाटीमें किस तरहकी गंधर्वनगरी पैदा होगी, अिस बातका खयाल क्या किसीको है? जब यहां बिजलीका कल-कारखाना तैयार होगा तब कुछ कल्पनाशूर लोग अिस प्रपातके पीछे बिजलीकी बत्तियोंकी कतार जरूर लगायेंगे और संसारने कभी न

देखा हो अैसा अिंद्रजाल फैलायेंगे। अुस समय सारी घाटी अेक महान रंगभूमिके जैसी बन जायगी और चारों खंडोंके भूदेव अुसे देखनेके लिअे अवतार लेंगे। परन्तु अुस समय क्या किसीको अीश्वरका स्मरण होगा? मालूम होता है, अपनी बुद्धिशक्तिका अुपयोग अीश्वरको पहचाननेके लिअे करनेके बदले मनुष्यने अुसका अुपयोग अीश्वरको भूलनेकी युक्तियां और पद्धतियां खोजनेमें ही किया है।

शायद अैसा भी हो कि सब ओरसे परास्त होनेके बाद ही बुद्धि अीश्वरको अधिक अच्छी तरहसे समझ सकेगी।

हरेक वस्तुका अंत होता है। अिसलिअे हमारी अिस जोग-यात्राका भी अंत हुआ। अत्यंत पवित्र और मीठे संस्मरणोंके साथ हम वापस लौटे। किन्तु फिर अेक बार वहां जानेकी वासना तो रह ही गअी। अिसलिअे 'पुनरागमनाय च' अिन शास्त्रोक्त शब्दोंका अुच्चार करके हम भारत-वैभवकी अिस असाधारण विभूतिसे विदा ले सके।

सितंबर, १९२७

१३

जोगके प्रपातका पुनर्दर्शन

हिमालय, नीलगिरी और सह्याद्रि जैसे अुत्तुंग पर्वत; गंगा, सिंधु, नर्मदा, ब्रह्मपुत्र जैसी सुदीर्घ नद-नदियां; और चिलका, वुलर तथा मंचर जैसे प्रसन्न सरोवर जिस देशमें विराजते हों, अुस देशमें अेकाध महान, भीषण और रोमांचकारी जलप्रपात न हो तो प्रकृतिमाता कृतार्थताका अनुभव भला किस प्रकार करे? दक्षिण भारतमें कारवार जिले तथा मैसूर रियासतकी सीमा पर अैक अैसा प्रपात है, जो संसारमें अद्वितीय या सर्वश्रेष्ठ पदका अेकमात्र भोक्ता चाहे न हो, फिर भी अैसे सर्व-श्रेष्ठ प्रपातोंमें अेक जरूर है। अंग्रेज लोग अुसे 'गिरसप्पा फॉल्स' के नामसे पहचानते हैं। अुसका स्वदेशी नाम है 'जोग'।

लॉर्ड कर्जन जब भारतमें आया तब जोगका प्रपात देखनेके लिअे वह अितना अुत्सुक हुआ था कि अिस देशमें आनेके बाद पहले मौकेका

फायदा अुठाकर वह अुसे देखने गया और अुसके अद्‌भुत सौंदर्यसे अुसने अपनी आंखें ठंडी कीं। अुसके बाद हमारे देशमें अिस प्रपातकी प्रतिष्ठा बढ़ गअी। जहांसे लॉर्ड कर्ज़नने प्रपातको देखकर अपने आपको कृतार्थ किया था, वहां मैसूर सरकारने अेक चबूतरा बनवाया है। अुसको 'कर्ज़न सीट' कहते हैं।

प्रपातके पास ही मैसूर सरकारने अेक अतिथिशाला बनवाअी है। अुसके मेहमानोंकी सूचीमें प्रकृति-प्रेमी देशी-विदेशी यात्रियोंने समय समय पर अपने आनंदोद्‌गार लिख रखे हैं। अिन अुद्‌गारोंका ही अेक संग्रह यदि प्रकाशित करें तो वह प्रकृति-काव्यकी अेक असाधारण मंजूषा हो। यह सारा काव्य अुच्च कोटिका होता तो भी जोगके प्रत्यक्ष दर्शनसे अुसकी अपूर्णता ही सिद्ध होती और मुंहसे यकायक अुद्‌गार निकलते :

अेतावान् अस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पूरुषः।

शरावती तो है अेक छोटीसी नदी। फिर भी अुसके तीन तीन नाम क्यों रखे गये होंगे? प्रथम वह भारंगी या वारहगंगाके नामसे पहचानी जाती है। बीचके हिस्सेमें अुसे शरावती कहते हैं। और जहां वह प्रौढ़तासे समुद्रमें मिलती है वहां अुसे वालेनदी कहते हैं! शरावतीके प्रवाहने यदि अिस रोमांचकारी प्रपातका रूप धारण न किया होता तो भी अुसने अपने प्राकृतिक सौंदर्यके द्वारा मनुष्योंका मन हरण किया ही होता। किन्तु तब वह हिन्दुस्तानकी अनेक सुन्दर नदियोंमें से अेक नदी ही मानी जाती। अिस प्रपातके कारण छोटीसी शरावती भारतवर्षकी अेक अद्वितीय सरिता बन गअी है।

जोगके अिस अलौकिक दृश्यका दर्शन करनेके लिअे राजाजी तथा दूसरे मित्रोंके साथ मैं प्रथम गया था, अुस समयके अुस अद्‌भुत दृश्यके दर्शनसे अेक कुतूहल तृप्त हो ही रहा था कि अितनेमें मनुष्य-स्वभावके अनुसार मनमें कुतूहलजन्य अेक नया संकल्प अुठा कि अितनी अूंचाअीसे कूदनेके बाद यह नदी आगे कहां जाती होगी, वहां कैसी मालूम होती होगी और सरित्पतिके साथ अुसका किस तरह मिलन होता होगा,

यह सब कभी न कभी जरूर देखना चाहिये। और बन सके तो बच्चा बनकर शरावतीके वक्षस्थल पर (नौका) विहार करना चाहिये। अंतरात्माकी अिस जिज्ञासाको सत्यसंकल्प अीश्वरने आशीर्वाद दिया और अेक तप (१२ वर्ष) की अवधि पूरी होनेके पहले ही जोगका दूसरी बार दर्शन करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहली बार हम अूपरकी ओरसे प्रपातकी तरफ गये थे। अिस बार नदीके मुखकी ओरसे प्रवेश करके नावमें बैठकर हमने प्रतीप यात्रा की। और नाव जहां अटक गअी वहांसे तैलवाहन (मोटर) के सहारे घाट चढ़कर हम प्रपातके सिर पर पहुंचे।

वहां शरावतीकी अुस अर्धचंद्राकार घाटीमें चार प्रपात हैं। दाअीं ओर 'राजा' नामक प्रपात है, जो अूपरसे अेकदम ९६० फुट नीचे कूदता है। अुसका 'राजा' नाम यथार्थ ही है। अुसकी जलराशि, अुसका अुन्माद और अुसकी हिम्मत किसी जगदेक-सम्राट्को शोभा दे सके अैसी है। अुसकी बाअीं ओरका महारुद्रके समान गर्जना करनेवाला 'रुद्र (Roarer) प्रपात' राजाके चरणों पर जाकर गिरता है। रुद्रकी घोर गर्जना आसपासकी टेकरियों तथा घाटीको मीलों तक निनादित करती है। अुसकी ध्वनिको न तो मेघ-गंभीर कह सकते हैं, न सागर-गंभीर। क्योंकि मेघगर्जना आकाश-विद्रावी होने पर भी क्षण-जीवी होती है और सागरकी सनातन गर्जनाको ज्वार-भाटेके अनुसार झूलना पड़ता है। रुद्रकी ध्वनि अविरत, अखंड और धारावाही होती है। अुस ध्वनिका अुन्माद विलक्षण होता है।

राजा और रुद्रको संसारमें कहीं पर भी सम्राट्की पदवी मिल सकती है। किन्तु जोगका सच्चा वैभव तो आकाशमें विविध रूपसे अुड़नेवाली वीरभद्र (Rocket) की शुभ्र जल-जटाओंके कारण है। वीरभद्रका प्रपात हाथीके गंडस्थल जैसे अेक विशाल शिलाखंड पर गिरते ही अुसमें से बारूदखानेके तीरों जैसे फव्वारे अूंचे और अूंचे अुड़ते ही चले जाते हैं। यह क्या शंकरका तांडव-नृत्य है? या महाकवि व्यासकी प्रतिभा-का नवनवोन्मेषशाली कल्पना-विलास है? या सूर्यबिंबके पृष्ठभागसे बाहर पड़नेवाली सर्वसंहारकारी किन्तु कल्पनारम्य ज्वालायें हैं? या भूमाताकी वात्सल्य-प्रेरित स्तन्यधाराओंके फव्वारे हैं? अैसी अैसी अनेक

कल्पनायें मनमें अुठती हैं। वीरभद्र सचमुच देखनेवालोंकी आंखोंको पागल बना देता है।

वीरभद्रकी बायीं ओरकी कर्पूरगौरा, तन्वंगी और अनुदरी पर्वत-कन्या पार्वती (Lady) अपने लावण्यसे हमें आनंदित करती है।

चारों प्रपातोंकी मानो रक्षा करनेके लिअे ही अुनके दोनों ओर दो प्रचंड पहाड़ खड़े हैं। ये संतरी खड़े खड़े और क्या कर सकते हैं? प्रपातोंकी अखंड गर्जनाको प्रतिक्षण प्रतिध्वनित करते रहना, अुनके अिंद्रधनुषोंको धारण करना और विविध प्रकारकी वनस्पतिसे अपनी देहको सजा कर पुलकित रहना, यही अुनकी अविरत प्रवृत्ति हो बैठी है।

अबकी बार जब हम गये तब गरमीके दिन थे। भारंगीका पानी अच्छा खासा अुतर गया था। वीरभद्रकी जटायें कहीं भी नजर नहीं आती थीं। रुद्रकी लंबी लंबी अुछल-कूद भी कम हो गअी थी। पार्वतीने अब विरहिणीका वेश धारण कर लिया था। हमें अुम्मीद थी कि कमसे कम राजाका वैभव तो देखने लायक होगा ही। किन्तु विश्व-जित् यज्ञके अंतमें धन्यता अनुभव करनेवाला कोअी सम्राट् जिस प्रकार अकिंचन बन जाता है और अुस हालतमें भी अपने वैभवको व्यक्त करता है, ठीक वही हालत 'राजा' की हो गअी थी।

अबकी बार हम शरावतीकी दायीं ओर यानी अुत्तरकी ओर आ पहुंचे थे। अतिथिगृहमें रुके बिना हम दौड़ते दौड़ते सीधे 'राजा' प्रपातकी बगलमें जा खड़े हुअे।

वहां अेक ओर सख्त धूप थी और दूसरी ओर नीचेसे अुड़नेवाले तुषारोंका ठंडा कोहरा था; अिन दोनोंके बीच फंसनेसे हमारी जो दशा हुअी अुसका वर्णन करना कठिन है। राजाके मुकुट जैसे शोभनेवाले गरम गरम पत्थरों पर झुककर हमने नीचे घाटीमें देखा। अूपरसे राजाकी जो धारा नीचे गिरती थी वह ठेठ जमीन तक पहुंचती ही नहीं थी। किसी मन्दोमत्त हाथीकी सूंड़के समान अेक प्रचंड स्रोत अूपरसे नीचे गिरता हुआ दीख पड़ता था। नीचे गिरते गिरते शतधा विदीर्ण होकर अुसकी सहस्र धारायें बन जाती थीं, और आगे जाकर अुन धाराओंके बड़े बड़े जलबिंदु बन जानेके कारण वे मोतीकी मालाओंकी तरह शोभा

पाने लगती थीं। अिन मोतियोंका भी आगे जाकर चूर्ण बन गया और अुसके बड़े बड़े कण नजर आने लगे। अब नीचे और आगे जाना छोड़कर अुन्होंने थोड़ा स्वच्छंद-विहार शुरू किया। ये बड़े कण भी छिन्नभिन्न हो गये, अुन्होंने सीकर-पुंजका रूप धारण किया और बादलोंके समान विहार करने लगे। मगर प्रकृति-माताको अितनेसे ही संतोष नहीं हुआ। आगे जाकर अिन बादलोंसे नीहारिकाओंका कोहरा बना और पवनकी लहरोंके साथ अुड़कर वह सारी हवाको शीतल बनाने लगा। आश्चर्यकी बात तो यह थी कि अितनी बड़ी जलधाराकी अेक बूंद भी जमीन तक पहुंच नहीं पाती थी। नीचेकी जमीन गरम और अूपरकी ठंडी! अिस स्थितिको देखकर मुझे राजाओंका बगैर किसी व्यवस्थाका दान याद आया। प्रजाजनोंको अकालसे पीड़ित देखकर हमारे राजा जब अुदार हाथोंसे पैसे देने लगते हैं तब अुनके जयनादसे सारा वायुमंडल गूंज अुठता है। किन्तु बेचारी गरीब जनताके मुंह तक अन्नका अेक दाना भी पहुंच नहीं पाता! बीचके अमले ही सब खा जाते हैं।

अलकेश्वरके दिलमें भी अीर्ष्या अुत्पन्न हो अैसी यहांके अिंद्रधनुषोंकी शोभा थी। भेद केवल यह था कि ये अिंद्रधनुष स्थायी नहीं थे। पवनकी तरंगें जैसे जैसे दिशायें बदलती जातीं, वैसे वैसे ये सीकर-पुंज भी अपने स्थान बदलते जाते। अिस कारणसे, पार्वतीके अिशारेसे जिस तरह शंकर नाचने लगते हैं, अुसी तरह ये अिंद्रधनुष भी अिधर-अुधर दौड़ते हुअे नजर आते थे। क्षणमें क्षीण हो जाते, तो दूसरे ही क्षण मयासुरके महलकी शोभा धारण करते। कर्मके साथ जिस प्रकार अुसका फल आता ही है, अुसी प्रकार हरेक धनुषके साथ अुसका प्रति-धनुष भी अपना वर्णक्रम ठीक अुलटा करके हाजिर होता ही था। हमने स्थान बदला, अिसलिअे अुन सुरधनुषोंने भी अपना स्थल बदला। सुरधनु और सुरधुनीका यह आह्लादजनक खेल हम काफी देर तक विस्मय-विमुग्ध भावसे देखते ही रहे। जितना अधिक देखते अुतनी दर्शनकी पिपासा बढ़ती जाती। हमें मालूम था कि हम घंटे दो घंटे ही यहां पर रह सकेंगे। प्रति-क्षण हमारा समयरूपी पुण्य क्षीण होता जा रहा है, और थोड़ी ही देरमें हमें मर्त्यलोकमें वापस लौटना होगा, अिस बातका हमें खयाल था।

स्वर्गलोकी देवता जिस विषादके साथ स्वर्गसुखका अुपभोग करते हैं, पराक्रमी पुरुष अपने यौवनके अुत्तरार्धमें अपने संकल्पकी पूर्तिके लिअे जितने अधीर बन जाते हैं, अुतने ही विषादसे और अुतने ही अधीर बनकर हम सब अुस गंधर्व-नगरीका आंख, कान, नाक और सारी त्वचासे सेवन करने लगे और साथ साथ हमारी कल्पनाओं द्वारा अुसी आनंदको शतगुणित करके अुसका अुपभोग करने लगे।

* * *

अेक दिन पहले हम तीन नावें लेकर निकले थे। बीचकी नावमें स्त्रियां और बालक थे और हम पुरुष लोग दोनों ओरकी दोनों नावोंमें बैठे थे। रातका समय था। अूपर आकाशमें चांद हंस रहा था। अुसका वह काव्य लड़कियोंने हृदयमें ग्रहण कर लिया और वहांसे वह अुनके आलापोंके रूपमें बाहर आने लगा। हरेक लड़कीने अपना प्यारा गीत नदीकी सतह पर तैरता छोड़ दिया। वह नाद कानों पर पड़ते ही किनारे परके नारियल और सुपारीके पेड़ रोमांचित हो अुठे और अपने अुन्नत सिर कुछ झुकाकर अुन आलापोंका पान करने लगे। थक जाने तक लड़कियोंने गीत गाये। फिर वे सो गयीं। चांद अस्त हुआ। सर्वत्र अंधकारका साम्राज्य प्रस्थापित हुआ। और अनंत सितारे आसपासकी ठेकरियोंको अनिमेष दृष्टिसे देखने लगे। यह कहना मुश्किल था कि आसपासकी नीरव शांति जाग रही थी या वह भी निद्रामें पड़ी थी।

जब जब हम नींदमें से जग जाते तब तब कभी पतवारकी आवाज, कभी खलासियोंके बांसके साथ कुश्ती खेलते हुअे पानीकी आवाज, और कभी खलासियोंके अेक-दूसरेको पुकारनेकी तीक्ष्ण आवाज सुनायी देती। आखिर पौ फटी। पंछियोंने अपना कलरव शुरू किया। मेरे मनमें आया: बीचकी नावमें सोयी हुअी कोयलें भी यदि जग जायें तो कितना अच्छा हो! मेरे गद्य निमंत्रणका अुन्होंने आलापोंसे ही अुत्तर दिया। वृक्षोंने भी रातके समय सुने हुअे आलापोंको याद करके, अेक-दूसरेको यह बतानेके लिअे कि 'यही तो रातका संगीत है' अपने सिर हिलाना शुरू किया। रातका जलविहार सचमुच सात्त्विक, शांतिमय और यौवनमय था।

अुषःकालका जलविहार भी अुतना ही सात्त्विक, शांतिमय और यौवन-प्रसन्न था, जब कि प्रपातका यहांका दर्शन तो अद्‌भुत-भीषण और रोम-हर्षण था। अब अुन लड़कियोंके चेहरों पर प्रातःकालकी मुग्ध प्रसन्नता नहीं रही थी। 'अितने अद्‌भुत दृश्यका सर्जन किस प्रकार हुआ होगा? सचमुच हम पृथ्वीतल पर हैं या स्वप्नसृष्टिमें?' अिसका विस्मय अुनके चेहरों पर स्पष्ट रूपसे नजर आता था। वे अेक-दूसरेकी आंखोंकी ओर देखकर अपना विस्मय बढ़ाती जा रही थीं। और अुनके अिस विस्मयको देखकर हमें अिस प्रकारका गर्व मालूम होता था, मानो हम ही अिस काव्यमय सृष्टिके विधाता हों।

भोजनका समय हो चुका था। नौकायें छोड़कर हम अेक गांवके नजदीक आ पहुंचे। वहां चावल कूटनेकी अेक चक्की थी। भक् भक् भक् करती हुअी यह चक्की गरीब लोगोंकी शांति, अुनका स्वास्थ्य और अुनकी आजीविकाको भी कूटपीट कर नष्ट कर रही थी। हमने अधाकर खाना खाया और हमारे अिन्तजारमें खड़े तैलवाहनमें हम आरूढ़ हुअे।

पेट्रोलके अेक डिब्बेमें थोड़ासा तेल बाकी था। हमारा सारथी अुसीमें पानी भरकर ले आया और मोटरमें डाला। पानी गरम हुआ और तेलका धुआं पानीमें मिला। फिर क्या पूछना था? कदम कदम पर मोटर रुकने लगी; चिल्लाने लगी; शिकायत करने लगी और बदबू छोड़ने लगी। हम भी अूब गये, गुस्सेमें आये, आग-बबूला हुअे और अंतमें यह देखकर कि अब कोअी अिलाज ही नहीं है, ठंडे पड़ गये। बंगला भाषाकी अेक कहावतका मुझे स्मरण हो आया: 'जले तेले मिश खाये ना'। बड़ी मुश्किलसे, किसी न किसी तरह जब हम पानीवाली जगह पर आ पहुंचे तब पुराने विप्लवी पानीको निकालकर हमने अुसमें शुद्ध सज्जन पानी भर लिया। अुसके बाद हमारा रास्ता बिलकुल आसान हो गया।

बरसोंसे चर्चा चल रही है कि गिरसप्पाके प्रपातसे बिजली पैदा की जाय या नहीं। शरावतीके पानीको अेक ओरसे मोड़कर बड़े बड़े नलों द्वारा नीचे अुतारकर वहां अुसकी मददसे यदि बिजली पैदा की जा सके,

तो सारी मैसूर रियासतको सस्ते दाममें बिजली दी जा सकेगी। इतना ही नहीं, बल्कि उत्तर और दक्षिण कानड़ा जिलोंको भी दी जा सकेगी। इससे लोगोंको बड़ा फायदा होगा। किन्तु इससे वह अद्भुतरम्य प्राकृतिक दृश्य हमेशाके लिअे नष्ट हो जायगा। इन दो बातोंमें से कौनसी अधिक इष्ट है, इसका अब तक कोअी निर्णय नहीं हो सका है। हजारों—नहीं, लाखों लोगोंको पेटभर अन्न मिलेगा। सैकड़ों विज्ञानवेत्ता नवयुवकोंको अपनी योग्यता सिद्ध करनेका मौका मिलेगा। हजारों जानवरोंकी पीड़ा दूर होगी। अेक स्थान पर इस तरहका कारखाना सफल हो सका तो भारतके सब प्रपातोंका अैसा ही अुपयोग किया जा सकेगा। और देशको अेक महान शक्तिका हमेशाके लिअे लाभ मिल जायगा। तब क्या केवल अेक भीषणरम्य दृश्यके लोभसे हम इन अनेक हितकर बातोंको छोड़ दें? कलाके शौककी भी कोअी सीमा है या नहीं? अपनी रानीके मनोविनोदके लिअे अपनी राजधानी रोमको जला डालनेवाले नीरोकी सुलतानी वृत्तिमें और इस प्रकारकी कला-भक्तिमें तत्त्वतः क्या फर्क है?

इस प्रश्नके अुत्तरमें जो कुछ कहा जाता है अुसका जिक्र करनेके पहले थोड़ेसे विषयांतरकी आवश्यकता है। यूरोपमें जब महा-युद्ध छिड़ गया और लाखों नौजवान तोपों तथा बंदूकोंके शिकार हुअे, तब साहित्य-शिरोमणि रोमें रोलांकी भूतदया द्रवीभूत हुअी और अन्य लोगोंके समान, खुद अुन्होंने भी इन घायल लोगोंकी सेवाका कुछ प्रबंध किया। किन्तु जब अुभय पक्षके शत्रुओंने अेक-दूसरेकी कलापूर्ण अिमारतों पर बम-वर्षा शुरू की तब अुनकी कलात्मा पुण्यप्रकोपसे सुलग अुठी और अुन्होंने बुलंद आवाजसे सारे यूरोपको चेतावनी दी: "अै कमबख्तो, तुम्हें अेक-दूसरेको मार डालना हो तो मार डालो; इस संसारसे तुम्हें बिलकुल नष्ट हो जाना हो तो नष्ट हो जाओ। किन्तु ये कलाकृतियां तो आत्माकी अभिव्यक्ति करनेवाली अमर कृतियां हैं। अुन्हींके द्वारा समस्त मानव-जातिकी आत्मा अपने आपको व्यक्त करती है—और कुछ नहीं तो कम-से-कम अिनका तो नाश न करो!!"

रोमें रोलांकी आर्षवाणी युरोपकी आत्माने सुनी और युध्यमान पक्षोंने कलाकृतियोंका संहार बंद कर दिया। अब सवाल यह है कि क्या कलाकृतियां सचमुच मानवकी आत्माकी अभिव्यक्तिकी द्योतक या प्रेरक हैं? या अुच्च अभिरुचिके आवरणके पीछे रही हुअी विलासिताकी ही साधन-सामग्री हैं?

कलाको जिसने सचमुच पहचाना है वह फौरन बता देगा कि कला और विलासिताके बीच जमीन आसमानका फर्क है और सच्ची कलाकृतिके द्वारा जो निरतिशय आनंद होता है वह सोयी हुअी आत्माको सचमुच जाग्रत करता ही है। करोड़ों वॉल्टकी विद्युतशक्ति पैदा करके लाखों लोगोंकी आजीविकाका प्रबंध करना कोअी साधारण बात नहीं है। किन्तु असंख्य लोगोंको कलाके द्वारा जो आनंद या संस्कारिता प्राप्त होती है वह तो अुनकी आत्माको पोषण देनेवाली चीज है।

और जोग कोअी मानवकृत कलाकृति नहीं है। अुल्टे, वह तो कलाकारोंको भव्यता और सभ्यताकी अेक ही साथ शिक्षा और दीक्षा देनेवाली प्रकृति-माताकी अलौकिक विभूति है। अुसे नष्ट करना नास्तिक विद्रोहके समान है। अुसे नष्ट करनेके पहले हमें सहस्र बार सोचना होगा। जोगका प्रपात वर्तमान युगकी ही संपत्ति नहीं है। हमारे अनेक ऋषि-पूर्वजोंने अुसके पास बैठकर अीश्वरका ध्यान किया होगा, और भविष्यमें हमारे वंशजोंके वंशज अुसका दर्शन करके अपने जीवनकी अज्ञात वृत्तियों और शक्तियोंका साक्षात्कार करेंगे।

अुपयुक्ततावादका सहारा लेकर 'अल्पस्य हेतोः बहु हातुम् अिच्छन्' जैसे जड़ हम न बनें। अिस प्रपातको सुरक्षित रखकर अुससे कोअी लाभ अुठाया जा सकता हो तो भले अुठायें। मानव-बुद्धिके लिअे यह बात असंभव न होनी चाहिये। किन्तु अिस तांडवयोगके दर्शनसे मनुष्य-जातिको वंचित करनेका धर्मतः किसीको हक नहीं है। मंदिरमें हम मूर्तिकी स्थापना करते हैं। अुसी तरह प्रकृतिने भी विराट् स्वरूपकी भव्य प्रतिमाओंकी यहां, हमारे सामने, स्थापना की है। यहां केवल दर्शन, ध्यान और अुपासनाके लिअे आना चाहिये और

हृदयमें यदि कुछ सामर्थ्य हो तो अिनके साथ तदाकार हो जाना चाहिये। यही हमारा अधिकार है।

मअी, १९३८

१४

जोगका सूखा प्रपात

याद नहीं किस कविने यह विचार प्रकट किया है; मगर अुसका वह विचार मैं अपनी भाषामें यहां रख देता हूं।

"यह सही है कि पहाड़ोंके जैसी अूंची अूंची लहरें अुछालनेवाला समुद्र भयानक मालूम होता है। मगर अुसका सारा पानी सूखकर यदि पात्र खाली हो जाय तो हजारों मील तक फैले हुअे अुसके गहरे गड्ढे कितने भयावने मालूम होंगे, अिसकी कल्पना भी करना कठिन है। यह सही है कि किसी दुर्जनके पास संपत्तिके भंडार हों तो वह अुनका दुरुपयोग करके लोगोंको सतायेगा। मगर अुसकी यह संपत्ति नष्ट होकर वह यदि भूखा कंगाल बन जाय, तो वह किस राक्षसी दुष्टतासे बाज आयेगा? अच्छा ही है कि समुद्र पानीसे भरपूर है, और दुर्जनोंके पास अुनकी दुष्टताकी आग बुझानेके लिअे पर्याप्त संपत्ति रहती है।"

जोगके प्रपातमें से राजा और रुद्रके सूखे हुअे प्रपातोंको देखकर कविकी अूपर बताअी हुअी अुक्ति याद आनेका यद्यपि कोअी कारण नहीं था, फिर भी यह अुक्ति याद आअी जरूर।

सन् १९२७ में जब पहले पहल मैंने जोगका प्रपात देखा था, तब अुसका वैभव सोलहों कलासे प्रकट हुआ था। पानीका मुख्य प्रपात अपनी प्रचंड जलराशिके साथ ८४० फुट नीचे कूदकर नीचेकी घाटीमें प्रपातके प्रवाहके ही द्वारा तैयार की हुअी १५० फुट गहरे तालावकी गद्दी पर गिरता था। अिस मुख्य प्रवाहकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिअे अुसके

दोनों ओर मोतियोंकी मालाओंके समान पानीकी अनेक धारायें अनेक ढंगसे गिरती थीं। अुसके दक्षिणकी ओर टेढ़ी सीढ़ियों परसे कूदता कूदता रुद्र अपना पानी, आधेसे अधिक पतनके बाद, राजाके पानीमें फेंक देता था। राजाकी गर्जना प्रायः नीचे पहुंचनेके बाद ही पैदा होती है। रुद्रका प्रपात रावणकी तरह अपने जन्मके साथ ही चिल्लाने लगता है।

दोनों प्रपात अद्‌भुत तो हैं ही। किन्तु अुस समय मुझे जो दृश्य अलौकिक लगा था वह था वीरभद्रकी अुछलती जटाओंका। यह दृश्य मैं फिर कभी नहीं देख पाया। किसी तसवीरमें भी वीरभद्रकी अुन जटाओंका चित्र नहीं आया है।

आखिरी प्रपात है पार्वतीका। अुसे देखते ही मनमें स्त्रीदाक्षिण्य पैदा होता है।

दस सालके बाद जब मैंने फिरसे जोगका दर्शन किया, तब राजाका स्रोत काफी क्षीण हो चुका था। वीरभद्रकी जटाओंका मुंडन हो गया था। रुद्रकी चिल्लाहट यद्यपि कम नहीं हुअी थी, फिर भी अुसका वह बड़ा ताल जोगके क्षीण प्रपातके साथ मिलता नहीं था। और पार्वती तो बिलकुल कृषांगी तपस्विनी जैसी बन गयी थी।

किन्तु अिन सब संकोचोंको भुला दे अैसी खूबी तो थी प्रपातकी ठंडी भापमें से अुत्पन्न होनेवाले अिन्द्रधनुषोंके भ्रूविलासमें। यह शोभा जितनी ओरसे देखने जाते अुतनी ओरसे अिन्द्रधनुष अपने मुंह घुमाकर नया नया सौंदर्य प्रकट करते थे।

फिर ठीक दस सालके बाद जोगका वही प्रपात देखनेके लिअे जब हम अबकी बार गये तब चार प्रपातोंमें से तीन तो बिलकुल सूख गये थे। रुद्रके अभावमें सर्वत्र स्मशान-शांति फैली हुअी थी। राजाके सूख जानेसे अुसके पीछेकी अेकके नीचे अेक दो बड़ी दरारें औरंगजेब द्वारा निकाली हुअी संभाजीकी आंखों जैसी भयावनी मालूम होती थीं। पार्वती तो मानो दक्षके यज्ञमें जाकर भस्म हो गअी थी और वीरभद्र अैसा मालूम होता था मानो दक्षका नाश करनेके बाद कुछ शांत होकर

अपने स्वामीके ससुरकी मृत्यु पर नीरव आंसू ढाल रहा हो। कितनी खिन्नता तो शायद महाभारतके युद्धके बाद कुरुक्षेत्र पर भी नहीं छायी होगी!

पहली बार हम गये थे शिवोगा-सागरके रास्तेसे—गुजरातमें आयी हुई बाढ़के संकटके दिनोंमें। दूसरी बार गये सिरादतन समुद्रके छोरसे उलटे क्रमसे—शरावतीके पानीमें ऊपरकी ओर यात्रा करके। हमारे पूर्वजोंने कहा है: 'नदीमुखेनैव समुद्रमाविशेत्।' किस मनोहरसे ठीक उलटे हम शरावती-सागर-संगमसे नावमें बैठकर प्रतीप क्रमसे प्रपातकी सीढ़ियों तक पहुंचे और वहांसे पहाड़की पगडंडीसे ऊपर चढ़कर प्रपातके सिर पर जा पहुंचे थे। अबकी बार हमने तीसरा रास्ता लेकर यात्रा की। शिरसीसे सिद्धापुर होकर हम प्रपातकी बंबलीवाली बाजू पर गये। वहां राजाके सिर पर विराजनेवाली अेक बड़ी शिला पर लेटकर हमने नीचेका रोमहर्षण दृश्य देखा। आलेके जैसी भयावनी दरारके सिर पर जाकर अंदर देखनेसे सारा बदन कांप उठता है। मनमें यह संदेह पैदा हुअे बिना नहीं रहता कि यह शिला अपने ही भारसे कहीं छूट तो नहीं जायगी?

अिस शिलाके बगलमें अुतनी ही बड़ी और अुतनी ही भयावनी जगह पर दूसरी शिला है। अुस पर प्राचीन कालमें किसी राजाका लग्नमंडप खड़ा किया गया होगा। आज अुस मंडपके चार स्तंभ जिस पर खड़े किये गये थे वह चार सुराखोंवाला अेक बड़ा चबूतरा अुस शिला पर दिखायी देता है। भवानने प्रपातकी दरारके किनारे मंडप खड़ा करके विवाह करनेवाले राजाकी काव्यमय वृत्तिकी बलिहारी है! अैसे शौकीन राजाके साथ जिसने शादी की अुस राजकन्याको अिस मंडपमें बैठते समय कैसा अनुभव हुआ होगा! किसीने बताया, 'भीषण रसके रसिया अुस राजाके नाम पर ही अिस प्रपातका नाम राजा रखा गया है।' मैंने मनमें सोचा, 'तब तो अुससे शादी करनेवाली राजकन्याका नाम हम नहीं जानते अिस बातका फायदा अुठाकर अुसीको हम पार्वती क्यों न कहें? पर्वतकी दरारके किनारे अुसने शादी की; क्या अितना कारण अुसे पार्वती कहनेके लिअे बस नहीं है?'

अैसा नहीं है कि पहाड़ोंमें आलेकी जैसी गहरी दरारें मैंने न देखी हों। मस्जिदोंमें भी दीवारोंमें गहराअी साधकर अुनके किनारे मेहराब बनाते हैं। किन्तु राजाके नीचेका आला तो कालपुरुषके मुंहसे भी बड़ा और गहरा था। अुसके भीतर जहां जगह मिले वहां पक्षी अपने घोंसले बनाते हैं और चुनकर लाये हुअे अनाजके दानोंका संग्रह करते हैं।

वम्बअीकी ओरसे यानी अुत्तरकी ओरसे जी भरकर देखनेके बाद हम मोटरमें बैठकर पूर्वकी ओर गये। वहां दो नावोंको बांधकर बनाये हुअे बेड़े पर—जिसे यहां 'जंगल' कहते हैं—हमारी मोटरको चढ़ाकर हम शरावती नदीको पार करके दक्षिणके किनारे आ पहुंचे। वहां मैसूर सरकारकी अतिथिशालाके पाससे फिर अेक बार सारी दरारका दृश्य देखा। बीस साल पहले यहींसे राजा, वीरभद्र और पार्वतीका देवदुर्लभ दृश्य देखा था। अैसा नहीं था कि अबकी बारके सूखे दृश्यमें काव्य न हो। अेकके नीचे अेक, दो बड़े आले ८४० फुटके पतनको नाप रहे हैं। अैसा दृश्य विधाताकी अिस विविध सृष्टिमें हर कहीं देखनेको थोड़े ही मिलनेवाला है!

मेरे मनमें छाया हुआ विषाद मैंने पेड़ों पर नहीं देखा। दोनों आलोंमें गोल गोल चक्कर काटनेवाले पक्षी भी विषण्ण नहीं दिखाअी देते थे। आकाशमें तैरते हुअे और प्रपातकी दरारमें ताकनेवाले बादल भी गंभीर नहीं मालूम होते थे। फिर रिक्तताका यह दृश्य देखकर मैं ही अितना बेचैन क्यों होता हूं? क्या बीस साल पहले यहां देखी हुअी जल-समृद्धिकी याद आनेसे? या दस साल पहले अुसमें देखे हुअे अिन्द्र-धनुषोंको याद करके? मगर वह जल-समृद्धि और वर्णसंकरका वह चमत्कार हमेशाके लिअे थोड़े ही लुप्त हो गये हैं? हजारों सालसे हर ग्रीष्मकालमें अैसी ही रिक्तता देखनेको मिलती होगी और हर वर्षाकालमें भारंगी सारी घाटीको जलमग्न कर देती होगी। यह क्रम तो चलता ही रहेगा। तब 'तत्र का परिदेवना'?

जोगके प्रपातके अिस तीसरे दर्शनके बाद हमने यहांके अितिहासका नया अध्याय खोला।

दीस साल पहले मैंने सुना था कि 'मैसूर सरकार जिस प्रपातके पानीसे बिजली पैदा करना चाहती है। बम्बई सरकार और मैसूर सरकारके बीच जिस सिलसिलेमें पत्रव्यवहार चल रहा है। अब तक ये दोनों सरकारें अेकमत नहीं हो पाईं, जिसलिअे बिजलीकी वह योजना अमलमें नहीं लाअी गअी।'

बुस समय मैंने मनमें चाहा था कि अीश्वर करे ये दोनों सरकारें अेकमत न होने पायें। मेरे मनमें डर था कि बिजली पैदा करके यहां कल-कारखाने चलेंगे और देशकी समृद्धि बढ़ानेके बहाने देशकी गरीब जनता चूसी जायगी। और जिससे भी अधिक अकुलाहट तो यह थी कि यंत्र आने पर प्रपात टूट जायगा और प्रकृतिका यह भव्य दर्शन हमेशाके लिअे मिट जायगा। किन्तु सौभाग्यसे मेरा यह डर सच्चा नहीं निकला।

अिंजीनियर लोगोंने प्रपातसे काफी अूपर अेक बांध बांधकर वहां पानीके जत्थेको रोका है। अभी यह काम पूरा नहीं हुआ है। बांध बांधकर जो पानी रोका गया है अुसकी चार नहरोंको अेक दिशामें ले जाकर मैसूरकी ओर, प्रपातसे काफी दूर, टेकरी परसे नीचे छोड़ दिया गया है—प्रपातके रूपमें नहीं, बल्कि टेढ़े अुतरे हुअे महाकाय चार नलों द्वारा। पानी नलके द्वारा जहां पहुंचता है वहां जिस पानीकी रफ्तारसे चलनेवाले यंत्र रखकर अुनसे बिजली पैदा की जाती है। अब यहां जितनी बिजली पैदा होगी कि मैसूर राज्यकी भूख मिटाकर थोड़ी हैदराबाद राज्यको भी दी जायगी। और बंबअी सरकारकी होन्नावर तालुकेकी सीमा परसे शरावती नदी गुजरती है जिसलिअे कुछ हजार किलोवाट बिजली बम्बअी सरकारको भी दी जायगी। न्यायतः जिस बिजली पर सबसे पहला अधिकार है होन्नावर तालुकेका और कारवार जिलेका। किन्तु यह जिला औद्योगिक दृष्टिसे अभी खिला हुआ नहीं है। जिस कारणसे यह तय हुआ है कि बिजली धारवाड़ जिलेको दी जाय। जिससे कारवार जिलेके लोग नाराज हुअे हैं। कारवार जिलेकी खनिज-संपत्ति और अुद्भिज्ज-संपत्ति धारवाड़ जिलेसे कअी गुनी अधिक है। अुसके पास समुद्र-किनारा होनेसे

अुसका व्यापार भी काफी बढ़ सकता है। कारवार जिलेमें काली, गंगावली, अघनाशिनी और शरावती—ये चार नदियां नौकानयनके लिअे अनुकूल होनेसे अिस जिलेका अुद्योगीकरण भी बहुत आसान है। किन्तु आज यह कहकर कि अिस जिलेमें बड़े अुद्योग नहीं हैं, अुसको बिजली देनेसे अिनकार किया जाता है! और अुसके पास बिजली न होनेसे वहां अुद्योग नहीं बढ़ाये जा सकते, यह भी अुसे सुना दिया जाता है!! तामिल भाषाकी अेक कहावत है कि 'शादी नहीं होती अिसलिअे लड़कीका पागलपन नहीं जाता, और पागलपन नहीं जाता अिसलिअे अुसकी शादी नहीं होती'। अैसी है यह स्थिति।

मैं अुम्मीद रखता हूं कि स्वराज्य सरकार द्वारा यह अन्याय दूर होगा और कारवार जिलेको शरावतीकी बिजली मिलेगी। अलावा अिसके, कारवारके पास अुंचळ्ळी, भागोड जैसे दूसरे भी छोटे बड़े तीन चार प्रपात हैं। शरावतीकी बिजली मिलने पर अुसकी मददसे दूसरे प्रपातों पर भी जीन कसा जायेगा और कारवार जिलेमें बारिशकी तरह बिजलीकी भी समृद्धि होगी। जहां चार नदियां पहाड़की अूंचाअीसे नीचे गिरती हैं वहां आज नहीं तो कल मनुष्य तिजारती बिजली पैदा करने ही वाला है।

मुझे संतोष हुआ केवल अिसीलिअे कि शरावतीके पानीसे बिजली तैयार करने पर भी जोगके प्रपातका प्राकृतिक स्वरूप तनिक भी खंडित होनेवाला नहीं है। बांधके कारण चाहे जितना पानी रोकने पर भी नदीके सामान्य प्रवाहमें पानी कम नहीं होगा। बारिशका पानी भर देनेके बाद हमेशाका प्रवाह हमेशाकी ही तरह चलेगा। अिसमें प्रवाहकी दिशा, गति या पानीका जत्था—किसी बातमें भी कमी नहीं आयेगी। अुलटा, लाभ यह होगा कि गरमीके दिनोंमें हजारों सालसे जो प्रपात सूख जाता था वह, किसी दिन चाहने पर बांधके खजानेमें से पानी छोड़कर, चाहे जितने प्रचंड और तूफानी रूपमें प्रत्यक्ष किया जा सकेगा, जिसे देखकर आकाशके गरमीके अुष्मपा देवता भी चकित हो जायेंगे।

बलिहारी है मानवी विज्ञानकी!

अप्रैल, १९४७

१५

गुर्जर-माता साबरमती

अंग्रेज सरकारके खिलाफ असहयोग पुकार कर महात्माजी स्वराज्यकी तैयारी कर रहे हैं। अहमदाबादमें गुजरात विद्यापीठकी स्थापना हुअी है। स्वातंत्र्यवादी नौजवान महाविद्यालयमें शरीक हुअे हैं। वे अपनी आकांक्षायें और कल्पना-विलास व्यक्त करनेके लिअे अेक मासिक पत्रिका चाहते हैं। मेरे पास आकर वे पूछते हैं, "मासिक पत्रिकाका नाम क्या रखेंगे?" वह जमाना अैसा था जब चाचा (काका) को ही बुआका काम करना पड़ता था।

मैंने कहा, "मासिक पत्रिकाअें तो काफी प्रकाशित हो रही हैं। तुम दो-दो महीनोंमें, ऋतु ऋतुमें, नये रूपसे प्रकट होनेवाली पत्रिका शुरू करो और अुसका नाम रखो 'साबरमती'।" द्विमासिककी कल्पना तो पसंद आअी। किन्तु 'साबरमती' नाम किसीको न भाया। 'साबरमती' तो है हमारी हमेशाकी परिचित नदी! हम अुसमें रोज स्नान करते हैं। अुसमें क्या नावीन्य है कि हम यह नाम अपने नवचेतनवाले साहित्य-प्रवाहको दें? मैंने कहा, "साबरमतीका प्रवाह सनातन है — अिसीलिअे नित्य-नूतन है।" मिसाल देनेकी दृष्टिसे मैंने दलील पेश की, "सिंध-हैदराबादके हमारे मित्रोंने अपनी कॉलिजकी पत्रिकाका 'फुलेली' नाम रखा है। 'फुलेली' सिंधुकी अेक नहर है। हमारी यह अनाविला (कीचड़-रहित) साबरमती गांधीयुगकी प्रतीक बन सकती है। मेरी बात मान लो और साबरमती नाम अपना लो।"

युवकोंने मेरी आज्ञाका पालन करनेके लिअे साबरमती नामको अपनाया, हालांकि वे चाहते थे अिससे कोअी अधिक जोशीला नाम।

मैंने नरहरिभाअीसे कहा — "साबरमती गुजरातकी विशेष लोकमाता है। आबूके परिसरसे जिन नदियोंका अुद्गम होता है अुनमें यह ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। अुसका अेक गद्यस्तोत्र लिख दीजिये।" अुन्होंने अुत्साहपूर्वक अेक छोटासा, सुन्दर लेख लिख दिया। विद्यार्थियोंकी भावनायें जाग्रत हुअीं। अिस लोकमाताके प्रति अुनमें भक्ति पैदा हुअी

देखकर मैंने मौकेसे लाभ अुठाया और विद्यार्थियोंसे कहा, "मेरा सुझाया हुआ नाम तुम लोग अनिच्छासे स्वीकार करो, यह मुझे पसन्द नहीं है। चाहो तो मैं दूसरा नाम सुझाता हूं।" सबने अेक ही आवाजसे जवाब दिया, "नहीं, नहीं, हम दूसरा नाम नहीं चाहते। 'साबरमती' ही सबसे सुन्दर है।"

मैंने कहा, "अिसमें तो कोअी संदेह ही नहीं है।"

* * *

मेरे नदी-पूजक हृदयने भारतकी अनेक नदियोंको समय समय पर अंजलियां अर्पित की हैं। सिंधुसे लेकर ब्रह्मपुत्रा और अिरावती तक और दक्षिणमें पिनाकिनी तथा कावेरी तक, अनेक नदियोंको मैंने संस्मरणांजलि दी है। किन्तु यह देखकर कि अिनमें गुजरातकी ही मुख्य नदियां रह गअी हैं, मेरे कअी पाठकोंने अिसका कारण पूछा और गुजरातकी लोकमाताओंके बारेमें लिखनेकी आग्रहपूर्वक सूचना की।

मैंने कहा, "नदीके अुपस्थानकी प्रेरणा मैं दे चुका हूं। अब गुजरातकी नदियोंके बारेमें गुजरातीमें कोअी गुर्जरी-पुत्र लिखे, अिसीमें औचित्य है।"

अिसकी भी काफी राह देखी गयी और बार बार मुझे सूचना की गयी। किन्तु अन्तमें मेरी श्रद्धा सच्ची साबित हुअी और गुजरात विद्यापीठके अेक विद्यार्थी, वनस्पति-अुपासक श्री शिवशंकरने गुजरातकी लोकमाताओंके बारेमें लिखना शुरू किया। यह काम किसी समय अवश्य पूरा होगा। मुझे संतोष है कि साबरमतीके प्रवाह-कुटुंबके बारेमें अुन्होंने पर्याप्त लिखा है। अिसलिअे मुझे विस्तारपूर्वक लिखनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। किन्तु जिस नदीके किनारे मैंने महात्माजीके और सब साथियोंके संपर्कमें २५–३० साल बिताये, अुस नदीको श्रद्धांजलि अर्पण करनेका कर्तव्य तो रह ही जाता था। अुसे आह्लादपूर्वक पूरा करनेके लिअे थोड़ासा लिखता हूं।

हमारे कवि हरेक नामको संस्कृत रूप देनेका प्रयत्न तो करेंगे ही। साबरमतीका संस्कृत शब्द बनाते समय अुन्होंने 'साभ्रमति' शब्द खोज

निकाला और फिर अुसका दो तरहसे पदच्छेद किया। अेक दलने बताया 'सा भ्रमति' —वह भ्रमण करती है, टेढ़े-मेढ़े मोड़ लेती है। दूसरेने कहा कि जिस नदीके प्रवाहके अूपरके आकाशमें अभ्र — बादल दिखाअी देते हैं; अिसलिअे वह अभ्रमति या 'साभ्र-मति' है। मेरा खयाल है कि यह सारा प्रयास मिथ्या है।

जिस नदीके किनारे गायोंके झुंड घूमते हैं, चरते हैं और पुष्ट होते हैं, वह जिस प्रकार या तो गो-दा (गोदावरी) या गो-मती होती है; जिस नदीके किनारे और प्रवाहमें बहुत पत्थर होते हैं, वह जिस प्रकार दृषद्-वती होती है, अुसी प्रकार अनेक सरोवरोंको जोड़नेवाली या सारस पक्षियोंसे शोभनेवाली नदी सरस्-वती या सारस-वती कही जाती है। अिसी न्यायसे भारतकी नदियोंको वाघ-मती, हाथ-मती, अैरावती आदि अनेक नाम हमारे पूर्वजोंने दिये हैं। अिनमें हाथमती तो साबरमतीसे ही मिलनेवाली नदी है। हिरन या सावर जिसके किनारे बसते हैं, लड़ते हैं और आजादीसे विहार करते हैं, वह है सावर-मती। अुसका संबंध 'श्वभ्र' के साथ जोड़ देनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है।

गुजरातकी नदियोंमें तीन-चार बड़ी नदियां आंतरप्रांतीय हैं। नर्मदा, ताप्ती, मही —तीनों दूर दूरसे निकलकर पूर्वकी ओरसे आकर गुजरातमें घुसती हैं और समुद्रमें विलीन हो जाती हैं। साबरमती अिनसे अलग है। आरवल्ली पहाड़में जन्म पाकर तथा अनेक नदियोंको साथमें लेकर दक्षिणकी ओर बहती हुअी अंतमें वह सागरसे जा मिलती है। साबरमतीके जैसी कुटुंब-वत्सल नदियां हमारे देशमें भी अधिक नहीं हैं। साबरमतीको विशेष रूपसे गुर्जरी माता कह सकते हैं। अुसके किनारे गुजरातके आदिम निवासी सनातन कालसे बसते आये हैं। अुसके किनारे ब्रह्मणोंने तप किया है। राजपूतोंने कभी धर्मके लिअे, तो बहुत बार अपनी बेटबेटीसे भरी हुअी जिदके लिअे, वीर पुरुषार्थ कर दिखाया है। वैश्योंने अिसके किनारे गांव और शहर बसा-कर गुजरातकी समृद्धि बढ़ायी है और अब आधुनिक युगका अनुकरण करके शूद्रोंने भी साबरमतीके किनारे मिलें चलाअी हैं।

सच पूछा जाय तो अिन नदियोंके साथ घनिष्ठ संपर्क तो पशु-पक्षियोंकी तरह आदिम निवासियोंका ही होता है। अिसलिअे साबरमतीके कुटुंब-विस्तारका काव्य यदि अिकट्ठा करना हो तो पुराणोंकी ओर मुड़नेके बदले आदिम निवासियोंकी लोक-कथाओं और लोक-गीतोंकी ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये। डर यह है कि आजके संशोधक नवयुवकोंमें अिस कामके लिअे अुत्साह पैदा हो और आदिम निवासी गिरिजनोंके साथ मिलजुल जानेके लिअे वे समय निकाल सकें, अुसके पहले ही आदिम निवासियोंकी नदी-कथायें कहीं लुप्त न हो जायं।

केवल नदी-भक्तिसे प्रेरित होकर आदिम निवासियोंका 'वौठा' का मेला जब तक होता है, तब तक बिलकुल निराश होनेका कोअी कारण नहीं है। सात नदियोंका पानी क्रमशः अेक-दूसरेमें मिलकर जिस जगह अेकत्र होता है, अुसके काव्यका आनन्द भोगने या नहाने के लिअे जहां आदिम निवासी तथा दूसरे लोग अिकट्ठे होते हैं, वहां 'वौठा'में साबरमतीके बारेमें आदि-कथायें हमें मिलनी ही चाहिये।

साबरमतीके पुराने नामोंकी खोज करते हुअे कश्यपगंगा या अैसा ही दूसरा अेकाध नाम अवश्य मिल जायगा। नदीको किसी न किसी प्रकार गंगाका अवतार जब तक न बनायें तब तक आर्योंको संतोष नहीं होता। किन्तु मुझे तो साबरमतीका पुराना नाम 'चंदना' सबसे अधिक आकर्षित करता है। क्योंकि—जैसा मैंने सुना है—कहीं कहीं पीली मिट्टीके बीचसे बहनेके कारण वह गोरोचनका रंग धारण करती है। किन्तु साबरमतीके जिस किनारे पर मैंने तीस साल बिताये, वहां अुसका पानी सज्जनों और महात्माओंके मनकी तरह बिलकुल निर्मल है।

जहां नदीका पानी छिछला होनेसे अुस पार तक आसानीसे जाया जा सकता है, अैसे स्थानको संस्कृतमें तीर्थ कहते हैं। अनेक स्थानों पर प्रयत्न कर देखनेके बाद यात्री लोग तय करते हैं कि अमुक अमुक जगह अैसे घाट हैं। अतः थोड़ा बहुत चलकर वे अैसे घाटके पास आते हैं, वहीं अिकट्ठे होते हैं, बैठकर विश्रांति लेते हैं, बातचीत करते हैं और नदीका पानी यकायक बढ़ गया हो तो जब तक वह कम न हो जाय तब तक कुछ घंटों या कुछ दिनों तक वहां ठहरते भी हैं। अिस प्रकार जहां स्वाभाविक

रूपमें लोग अिकट्ठे होते हैं, वहां धर्मसेवा और लोकसेवाके लिअे परम कारुणिक संत आकर बस जाते हैं। अिसीलिअे तीर्थ शब्दको अुसका नया अर्थ प्राप्त हुआ। मूलमें तीर्थ शब्दका अर्थ होता था केवल अैसा घाट जहांसे नदीको आसानीसे पार किया जा सके। अिससे अधिक अर्थ कुछ नहीं। किन्तु जहां साधु-सन्त लोगोंको भवनदी पार करनेकी नसीहत देते हैं और अुसकी कला भी सिखाते हैं, अुस तीर्थ स्थानको विशेष पवित्रता अपने आप प्राप्त होती है।

अहमदाबादके पास साबरमतीमें रेलवे-पुलसे लेकर सरदार-पुल तक और अुससे भी अधिक दक्षिणकी ओर कअी तीर्थ हैं। अिनमें भी जहां चंद्रभागा नदी साबरमतीसे मिलती है वहां दधीचिने तप किया था, अिसलिअे वह स्थान अधिक पवित्र माना जाता है। और आसपासके लोगोंने अिहलोकको छोड़कर परलोक जानेवाले यात्रियोंको अग्निदाह देकर विदा करनेकी जगह भी वहीं पसंद की है। अिससे वह स्मशान घाट भी है। स्मशानके अधिपति दूधेश्वर महादेव वहां विराजमान हैं और अिस महायात्राकी निगरानी करते हैं।

* * *

मुझे वह दिन याद है जब पूज्य गांधीजी अपने स्नेही रंगूनवाले डॉ० प्राणजीवन महेता तथा रणोलीके मेरे स्नेही नाथाभाअी पटेलको साथमें लेकर आश्रमकी भूमि पसन्द करनेके लिअे निकले थे। मैं भी साथ था। अुस दिनसे अिस भूमिके साथ मेरा सम्बन्ध बंध गया। अिस स्थान पर पहली कुदाली मैंने ही चलाअी। पहला खेमा भी मैंने ही खड़ा किया और अुसके बाद अनेक तंबू भी खड़े किये। झोंपड़ियां बनाअीं; मकान बंधवाये। खादीकी प्रवृत्ति, खेती और गोशालाकी प्रवृत्ति, राष्ट्रीय शाला, राष्ट्रीय त्यौहार, रास-नृत्य, लोक-संगीत तथा शास्त्रीय संगीत, 'नव-जीवन' तथा 'यंग अिंडिया', साहित्य-निर्माण, सत्याग्रह, मिल-मालिकोंके साथका मजदूरोंका झगड़ा और अंतमें ब्रिटिश साम्राज्यको जड़मूलसे अुखाड़ फेंकनेके लिअे शुरू किया गया दांडी-कूच — अिन सब प्रवृत्तियोंका अिस आश्रममें ही अुद्भव हुआ और यहीं वे विकसित भी हुअीं। रौलेट

अेक्टके खिलाफ आन्दोलन, अुसमें से अुत्पन्न हुअे पंजाबके दंगे, जलियांवाला बाग, खेड़ा-सत्याग्रह, बारडोलीकी लड़ाअी, गुजरात विद्यापीठकी स्थापना, कांग्रेसके अधिवेशन, देशके हरेक राजकीय, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनका केंद्र साबरमतीका यह किनारा था। साबरमतीकी रेतमें जब सभायें होती थीं तब लाख लाख लोगोंकी भीड़ जम जाती थी। अिस साबरमतीकी जीवनलीलाने केवल गुजरातका ही नहीं बल्कि सारे हिन्दुस्तानका जीवन बदल दिया। अुस समयका वायुमंडल आज सारी दुनियाकी राजनीतिमें अेक नया सिलसिला शुरू कर रहा है और नये युगकी नींव डाल रहा है।

अिस साबरमतीके नीरमें हमने क्या क्या आनन्द नहीं मनाया है? आश्रमके कअी लड़के-लड़कियोंको, और शिक्षकोंको भी, मैंने वहां तैरनेकी कला सिखाअी है। अुसकी रेतमें गीता और अुपनिषदोंका चिंतन-मनन किया है। गीता-पारायणके अनेक सप्ताह चलाये हैं। अिस आश्रम-भूमि पर खड़े करीब करीब सभी पेड़ हमारे हाथों ही बोये गये हैं।

वह रचनाकाल था ही अद्भुत। हरेक हृदयमें अेक नअी शक्तिशाली आत्मा आकर बसी थी। वह सबोंसे तरह तरहके काम ले सकी। केवल आहारके प्रयोग भी हमने वहां कम नहीं किये। कौटुंबिक जीवनके अनेक प्रकार आजमाये। शिक्षाका तंत्र अनेक बार बदला और अुसमें भी कअी दफा क्रांति की। और जीवनके हरेक पहलूके लिअे हम नयी नयी स्मृतियां तैयार करते गये। अिस सारे पुरुषार्थकी साक्षी साबरमती नदी है।

जब तक भारतका अितिहास दुनियाके लिअे बोध-दायक रहेगा और भारतके अितिहासमें महात्मा गांधीका स्थान कायम रहेगा, तब तक साबरमतीका नाम दुनियाकी जबान पर अवश्य रहेगा।

मअी, १९५५

१६

अुभयान्वयी नर्मदा

हमारा देश हिन्दुस्तान महादेवजीकी मूर्ति है। हिन्दुस्तानके नक्शेको यदि अुल्टा पकड़ें, तो अुसका आकार शिवलिंगके जैसा मालूम होगा। अुत्तरका हिमालय अुसका पाया है, और दक्षिणकी ओरका कन्या-कुमारीका हिस्सा अुसका शिखर है।

गुजरातके नक्शेको जरा-सा घुमायें और पूर्वके हिस्सेको नीचेकी ओर तथा सौराष्ट्रका छोर—ओखा मंडल—अूपरकी ओर ले जायं तो यह भी शिवलिंगके जैसा ही मालूम होगा। हमारे यहां पहाड़ोंके जितने भी शिखर हैं, सब शिवलिंग ही हैं। कैलासके शिखरका आकार भी शिवलिंगके समान ही है।

अिन पहाड़ोंके जंगलोंसे जब कोअी नदी निकलती है, तब कवि लोग यह कहे बिना नहीं रहते कि 'यह तो शिवजीकी जटाओंसे गंगाजी निकली हैं!' चंद लोग पहाड़ोंसे आनेवाले पानीके प्रवाहको अप्सरा कहते हैं। और चंद लोग पर्वतकी अिन तमाम लड़कियोंको पार्वती कहते हैं।

अैसी ही अप्सरा जैसी अेक नदीके बारेमें आज मुझे कुछ कहना है। महादेवके पहाड़के समीप मेकल या मेखल पर्वतकी तलहटीमें अमर-कंटक नामक अेक तालाब है। वहांसे नर्मदाका अुद्गम हुआ है। जो अच्छा घास अुगाकर गौओंकी संख्यामें वृद्धि करती है, अुस नदीको गो-दा कहते हैं। यश देनेवालीको यशो-दा और जो अपने प्रवाह तथा तटकी सुन्दरताके द्वारा 'नर्म' याने आनंद देती है, वह है नर्म-दा। अिसके किनारे घूमते-घामते जिसको बहुत ही आनंद मिला, अैसे किसी ऋषिने अिस नदीको यह नाम दिया होगा। अुसे मेखल-कन्या या मेखला भी कहते हैं।

जिस प्रकार हिमालयका पहाड़ तिब्बत और चीनको हिन्दुस्तानसे अलग करता है, अुसी प्रकार हमारी यह नर्मदा नदी अुत्तर भारत अथवा हिन्दुस्तान और दक्षिण भारत या दक्खनके बीच आठ सौ मीलकी अेक चमकती, नाचती, दौड़ती सजीव रेखा खींचती है। और कहीं

अिसको कोअी मिटा न दे, अिस खयालसे भगवानने अिस नदीके अुत्तरकी ओर विंध्य तथा दक्षिणकी ओर सातपुड़ाके लंबे लंबे पहाड़ोंको नियुक्त किया है। अैसे समर्थ भाअियोंकी रक्षाके बीच नर्मदा दौड़ती कूदती अनेक प्रांतोंको पार करती हुअी भृगुकच्छ यानी भड़ौंचके समीप समुद्रसे जा मिलती है।

अमरकंटकके पास नर्मदाका अुद्गम समुद्रकी सतहसे करीब पांच हजार फुटकी अूंचाअी पर होता है। अब आठ सौ मीलमें पांच हजार फुट अुतरना कोअी आसान काम नहीं है; अिसलिअे नर्मदा जगह जगह छोटी-बड़ी छलांगें मारती है। अिसी परसे हमारे कवि-पूर्वजोंने नर्मदाको दूसरा नाम दिया 'रेवा'। 'रेव्' धातुका अर्थ है कूदना।

जो नदी कदम कदम पर छलांगें मारती है, वह नौका-नयनके लिअे यानी किश्तियोंके द्वारा दूर तककी यात्रा करनेके लिअे कामकी नहीं। समुद्रसे जो जहाज आता है, वह नर्मदामें मुश्किलसे तीस-पैंतीस मील अंदर जा-आ सकता है। वर्षा ऋतुके अंतमें ज्यादासे ज्यादा पचास मील तक पहुंचता है।

जिस नदीके अुत्तरकी और दक्षिणकी ओर दो पहाड़ खड़े हैं, अुसका पानी भला नहर खोदकर दूर तक कैसे लाया जा सकता है? अतः नर्मदा जिस प्रकार नाव खेनेके लिअे बहुत कामकी नहीं है, अुसी प्रकार खेतोंकी सिंचाअीके लिअे भी विशेष कामकी नहीं है। फिर भी अिस नदीकी सेवा दूसरी दृष्टिसे कम नहीं है। अुसके पानीमें विचरनेवाले मगर और मछलियोंकी, अुसके तट पर चरनेवाले ढोरों और किसानोंकी, और दूसरे तरह-तरहके पशुओंकी तथा अुसके आकाशमें कलरव करनेवाले पक्षियोंकी वह माता है।

भारतवासियोंने अपनी सारी भक्ति भले गंगा पर अुंड़ेल दी हो; पर हमारे लोगोंने नर्मदाके किनारे कदम कदम पर जितने मंदिर खड़े किये हैं, अुतने अन्य किसी नदीके किनारे नहीं किये होंगे।

पुराणकारोंने गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी, गोमती, सरस्वती आदि नदियोंके स्नान-पानका और अुनके किनारे किये हुअे दानके माहात्म्यका वर्णन भले चाहे जितना किया हो, किन्तु अिन नदियोंकी

प्रदक्षिणा करनेकी बात किसी भक्तने नहीं सोची। जब कि नर्मदाके भक्तोंने कवियोंको ही सूझनेवाले नियम बनाकर सारी नर्मदाकी परिक्रमा या 'परिकम्मा' करनेका प्रकार चलाया है।

नर्मदाके अुद्गमसे प्रारंभ करके दक्षिण-तट पर चलते हुअे सागर-संगम तक जाअिये; वहांसे नावमें बैठकर अुत्तरके तट पर जाअिये और वहांसे फिर पैदल चलते हुअे अमरकंटक तक जाअिये — अेक परिक्रमा पूरी होगी। नियम बस अितना ही है कि 'परिकम्मा' के दरम्यान नदीके प्रवाहको कहीं भी लांघना नहीं चाहिये, न प्रवाहसे बहुत दूर ही जाना चाहिये। हमेशा नदीके दर्शन होने चाहिये। पानी केवल नर्मदाका ही पीना चाहिये। अपने पास धन-दौलत रखकर अैश-आरामसे यात्रा नहीं करनी चाहिये। नर्मदाके किनारे जंगलोंमें बसनेवाले आदिम निवासियोंके मनमें यात्रियोंकी धन-दौलतके प्रति विशेष आकर्षण होता है। आपके पास यदि अधिक कपड़े, बर्तन या पैसे होंगे, तो वे आपको अिस बोझसे अवश्य मुक्त कर देंगे।

हमारे लोगोंको अैसे अकिंचन और भूखे भाअियोंका पुलिसके द्वारा अिलाज करनेकी बात कभी सूझी ही नहीं। और आदिम निवासी भाअी भी मानते आये हैं कि यात्रियों पर अुनका यह हक है। जंगलोंमें लूटे गये यात्री जब जंगलसे बाहर आते हैं, तब दानी लोग यात्रियोंको नये कपड़े और सीधा देते हैं।

श्रद्धालु लोग सब नियमोंका पालन करके — खास तौर पर ब्रह्मचर्यका आग्रह रखकर नर्मदाकी परिक्रमा धीरे धीरे तीन सालमें पूरी करते हैं। चौमासेमें वे दो-तीन माह कहीं रहकर साधु-संतोंके सत्संगसे जीवनका रहस्य समझनेका आग्रह रखते हैं।

अैसी परिक्रमाके दो प्रकार होते हैं। अुनमें जो कठिन प्रकार है, अुसमें सागरके पास भी नर्मदाको लांघा नहीं जा सकता। अुद्गमसे मुख तक जानेके बाद फिर अुसी रास्तेसे अुद्गम तक लौटना तथा अुत्तरके तटसे सागर तक जाना और फिर अुसी रास्तेसे अुद्गम तक लौटना। यह परिक्रमा अिस प्रकार दूनी होती है। अिसका नाम है जलेरी।

मौज और आरामको छोड़कर तपस्यापूर्वक अेक ही नदीका ध्यान करना, अुसके किनारेके मंदिरोंके दर्शन करना, आसपास रहनेवाले संत-महात्माओंके वचनोंको श्रवण-भक्तिसे सुनना, और प्रकृतिकी सुन्दरता तथा भव्यताका सेवन करते हुअे जीवनके तीन साल बिताना कोअी मामूली प्रवृत्ति नहीं है। अिसमें कठोरता है, तपस्या है, बहादुरी है; अंतर्मुख होकर आत्म-चिंतन करनेकी और गरीबोंके साथ अेकरूप होनेकी भावना है; प्रकृतिमय बननेकी दीक्षा है; और प्रकृतिके द्वारा प्रकृतिमें विराजमान भगवानके दर्शन करनेकी साधना है।

और अिस नदीके किनारेकी समृद्धि मामूली नहीं है। असंख्य युगोंसे अुच्च कोटिके संत-महंत, वेदांती, संन्यासी और अीश्वरकी लीला देखकर गद्‌गद होनेवाले भक्त अपना अपना अितिहास अिस नदीके किनारे बोते आये हैं। अपने खानदानकी शान रखनेवाले और प्रजाकी रक्षाके लिअे जान कुरबान करनेवाले क्षत्रिय वीरोंने अपने पराक्रम अिस नदीके किनारे आजमाये हैं। अनेक राजाओंने अपनी राजधानीकी रक्षा करनेके हेतुसे नर्मदाके किनारे छोटे-बड़े किले बनवाये हैं। और भगवानके अुपासकोंने धार्मिक कलाकी समृद्धिका मानो संग्रहालय तैयार करनेके लिअे जगह जगह मंदिर खड़े किये हैं। हरेक मंदिर अपनी कलाके द्वारा आपके मनको खींचकर अंतमें अपने शिखरकी अुंगली अूपर दिखाकर अनंत आकाशमें प्रकट होनेवाले मेघश्यामका ध्यान करनेके लिअे प्रेरित करता है।

जिस प्रकार 'अजान' की आवाज सुनकर खुदापरस्तोंको नमाजका स्मरण होता है, अुसी प्रकार दूर दूरसे दिखाअी देनेवाली मन्दिरोंकी शिखररूपी चमकती अुंगलियां हमें स्तोत्र गानेके लिअे प्रेरित करती हैं।

और नर्मदाके किनारे शिवजी या विष्णुका, रामचंद्र या कृष्णचंद्रका, जगत्पति या जगदंबाका स्तोत्र शुरू करनेसे पहले नर्मदाष्टकसे प्रारंभ करना होता है—'सविदुर्सिधु सुस्खलत् तरंगभंग-रंजितम्'। अिस प्रकार जब पंचचामरके लघु-गुरु अक्षर नर्मदाके प्रवाहका अनुकरण करते हैं, तब भक्त लोग मस्तीमें आकर कहते हैं, 'हे माता! तेरे पवित्र जलका दूरसे दर्शन करके ही अिस संसारकी समस्त बाधायें दूर

हो गयीं—'गतं तदैव मे भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा'। और अंतमें भक्तिलीन होकर वे नमस्कार करते हैं—'त्वदीय पाद-पंकजं नमामि देवि! नर्मदे!'।

हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि जिस प्रकार नर्मदा हमारी और हमारी प्राचीन संस्कृतिकी माता है, अुसी प्रकार वह हमारे भाअी आदिम निवासी लोगोंकी भी माता है। अिन लोगोंने नर्मदाके दोनों किनारों पर हजारों साल तक राज्य किया था, कअी किले भी बनवाये थे और अपनी अेक विशाल आरण्यक संस्कृति भी विकसित की थी।

मुझे हमेशा लगा है कि हिन्दुस्तानका अितिहास प्रांतोंके अनुसार या राज्योंके अनुसार लिखनेके बजाय यदि नदियोंके अनुसार लिखा गया होता, तो अुसमें प्रजा-जीवन प्रकृतिके साथ ओतप्रोत हो गया होता और हरेक प्रदेशका ,पुरुषार्थी वैभव नदीके अुद्गमसे लेकर मुख तक फैला हुआ दिखाअी देता। जिस प्रकार हम सिन्धुके किनारेके घोड़ोंको सैंधव कहते हैं, भीमाके किनारेका पोषण पाकर पुष्ट हुअे भीमथड़ीके टट्टुओंकी तारीफ करते हैं, कृष्णाकी घाटीके गाय-बैलोंको विशेष रूपसे चाहते हैं, अुसी प्रकार पुराने समयमें हरेक नदीके किनारे पर विकसित हुअी संस्कृति अलग अलग नामोंसे पहचानी जाती थी।

अिसमें भी नर्मदा नदी भारतीय संस्कृतिके दो मुख्य विभागोंकी सीमारेखा मानी जाती थी। रेवाके अुत्तरकी ओरकी पंचगौड़ोंकी विचार-प्रधान संस्कृति और रेवाके दक्षिणकी ओरकी द्रविड़ोंकी आचार-प्रधान संस्कृति मुख्य मानी जाती थी। ,विक्रम संवत्का काल-मान और शालिवाहन शकका काल-मान, दोनों नर्मदाके किनारे सुनाअी देते हैं और बदलते हैं।

मैंने कहा तो सही कि नर्मदा अुत्तर भारत तथा दक्षिण भारतके बीच अेक रेखा खींचनेका काम करती है; किन्तु अुसके साथ मुकाबला करनेवाली दूसरी भी अेक नदी है। नर्मदाने भव्य हिन्दुस्तानसे पश्चिम किनारे तक सीमा-रेखा खींची है। गोदावरीने यों मानकर कि यह ठीक नहीं हुआ, पश्चिमके पहाड़ सह्याद्रिसे लेकर पूर्व-सागर तक अपनी अेक तिरछी रेखा खींची है। अतः अुत्तरकी ओरके ब्राह्मण संकल्प बोलते

समय कहेंगे—"रेवायाः अुत्तरे तीरे;" और पैठणके अभिमानी हम दक्षिणके ब्राह्मण कहेंगे—"गोदावर्याः दक्षिणे तीरे।" जिस नदीके किनारे शालिवाहन या शातवाहन राजाओंने मिट्टीमें से मानव बनाकर अुनकी फौजके द्वारा यवनोंको परास्त किया, अुस गोदावरीको संकल्पमें स्थान न मिले, यह भला कैसे हो सकता है?

* * *

नर्मदा नदीकी 'परिक्रम्मा' तो मैंने नहीं की है। अमरकंटक तक जाकर अुसके अुद्गमके दर्शन करनेका मेरा संकल्प बहुत पुराना है। पिछले वर्ष विन्ध्यप्रदेशकी राजधानी रीवा तक हम गये भी थे। किन्तु अमरकंटक नहीं जा सके। नर्मदाके दर्शन तो जगह जगह किये हैं। किन्तु अुसके विशेष काव्यका अनुभव किया जबलपुरके पास भेड़ाघाटमें।

भेड़ाघाटमें नावमें बैठकर संगमरमरकी नीली-पीली शिलाओंके बीचसे जब हम जलविहार करते हैं, तब यही मालूम होता है मानो योगविद्यामें प्रवेश करके मानव-चित्तके गूढ़ रहस्योंको हम खोल रहे हैं। अिसमें भी जब हम बंदरकूदके पास पहुंचते हैं, और पुराने सरदार यहां घोड़ोंको अिशारा करके अुस पार तक कूद जाते थे आदि बातें सुनते हैं, तब मानो मध्यकालका अितिहास फिरसे सजीव हो अुठता है।

अिस गूढ़ स्थानके अिस माहात्म्यको पहचानकर ही किसी योग-विद्याके अुपासकने समीपकी टेकरी पर चौंसठ योगिनियोंका मंदिर बनवाया होगा और अुनके चक्रके बीच नंदी पर विराजित शिव-पार्वतीकी स्थापना की होगी। अिन योगिनियोंकी मूर्तियां देखकर भारतीय स्थापत्यके सामने मस्तक नत हो जाता है और अैसी मूर्तियोंको खंडित करनेवालोंकी धर्मांधताके प्रति ग्लानि पैदा होती है। मगर हमें तो खंडित मूर्तियोंको देखनेकी आदत सदियोंसे पड़ी हुअी है!!

* * *

धुवांधार प्रकृतिका अेक स्वतंत्र काव्य है। पानीको यदि जीवन कहें तो अधःपातके कारण खंड खंड होनेके बाद भी जो अनायास पूर्वरूप धारण करता है और शांतिके साथ आगे बहता है, वह सचमुच

जीवनतम कहा जायगा। चौमासेमें जब सारा प्रदेश-जलमग्न हो जाता है, तब वहां न तो होती है 'धार' और न होता है अुसमें से निकलनेवाला ठंडी भापके जैसा 'धुवां'। चौमासेके बाद ही धुवांधारकी मस्ती देख लीजिये। प्रपातकी ओर टकटकी लगाकर ध्यान करना मुझे पसन्द नहीं है, क्योंकि प्रपात अेक नशीली वस्तु है। अिस प्रपातमें जब धोबीघाट परके साबुनके पानीके जैसी आकृतियां दिखाअी देती हैं और आसपास ठंडी भापके बादल खेल खेलते हैं, तब जितना देखते हैं अुतनी चित्तवृत्ति अस्वस्थ होती जाती है। यह दृश्य मन भरकर देखनेके बाद वापस लौटते समय लगता है, मानो जीवनके किसी कठिन प्रसंगमें से हम बाहर आये हैं और अितने अनुभवके बाद पहलेके जैसे नहीं रहे हैं।

* * *

अिटारसी-होशंगाबादके समीपकी नर्मदा बिलकुल अलग ही प्रकारकी है। वहांके पत्थर जमीनमें तिरछे गड़े हुअे हैं। किस भूकंपके कारण अिन पत्थरोंके स्तर अैसे विषम हो गये हैं, कोअी नहीं बता सकता। नर्मदाके किनारे भगवानकी आकृति धारण करके बैठे हुअे पाषाण भी अिस विषयमें कुछ नहीं बता सकते।

और वही नर्मदा जब शिरोवेष्टनके साफेके समान लंबे किन्तु कम चौड़े भड़ौंचके किनारेको धो डालती है और अंकलेश्वरके खलासियोंको खेलाती है, तब वह बिलकुल निराली ही मालूम होती है।

* * *

कबीरवड़के पास अपनी गोदमें अेक टापूकी परवरिश करनेका आनंद जिसे अेक बार मिला, वह सागर-संगमके समय भी अिसी तरहके अेक या अनेक टापू-बच्चोंकी परवरिश करे, तो अिसमें आश्चर्य ही क्या है?

कबीरवड़ हिन्दुस्तानके अनेक आश्चर्योंमें से अेक है। लाखों लोग जिसकी छायामें बैठ सकते हैं और बड़ी बड़ी फौजें जिसकी छायामें पड़ाव डाल सकती हैं, अैसा अेक वट-वृक्ष नर्मदाके प्रवाहके बीचोंबीच अेक टापूमें पुराण पुरुषकी तरह अनंतकालकी प्रतीक्षा कर रहा है। जब बाढ़ आती है, तब अुसमें टापूका अेकाध हिस्सा बह जाता है, और अुसके साथ

अिस वट-वृक्षकी अनेक शाखायें तथा अुन परसे लटकनेवाली जड़ें भी वह जाती हैं। अब तक कबीरवड़के अैसे बंटवारे कितनी बार हुअे, अितिहासके पास अिसकी नोंध नहीं है। नदी बहती जाती है, और बड़को नअी नअी पत्तियां फूटती जाती हैं! सनातन काल वृद्ध भी है और बालक भी है। वह त्रिकालज्ञानी भी है और विस्मरणशील भी है।

अिस काल-भगवानका और कालातीत परमात्माका अखंड ध्यान करनेवाले ऋषि-मुनि और संत-महात्मा जिसके किनारे युग-युगसे बसते आये हैं, वह आर्य अनार्य सबकी माता नर्मदा भूत-भविष्य-वर्तमानके मानवोंका कल्याण करे। जय नर्मदा, तेरी जय हो!

अगस्त, १९५५

१७

संध्यारस

गौरीशंकर* तालावका दर्शन यकायक होता है। हमने वगीचेमें जाकर पेड़ोंकी शोभा देख ली, चीनी तश्तरीके टुकड़ोंसे वनाये हुअे निर्जीव हाथी, घोड़े और शेरोंका स्वाव देखकर तथा पेड़ोंके वीच मौज करनेवाले सजीव पक्षियोंका कलरव सुनकर तालवके किनारे पहुंचे; सीढ़ियां चढ़ने लगे; और ठंडे पवनकी शांति अनुभव करने लगे; तो भी खयाल नहीं हुआ कि यहां पर तालाव होगा। आखिरी (यानी अूपरकी) सीढ़ी पर पांव रखा कि यकायक मानो आकाशको चीरकर कोअी अप्सरा प्रकट हुअी हो, अिस प्रकार सरोवरका नीर हमारे सामने सस्मित वदनसे देखने लगता है। आप भले अकेले ही सरोवरका दर्शन करने आयें, परन्तु आप वहां अकेले नहीं रहेंगे। आप देखेंगे कि आकाशके वादल और सवसे जल्दी दौड़कर आयी हुअी संध्या-तारिकायें भी आपके साथ ही सरोवरकी शोभाको निहार रही हैं।

* सौराष्ट्रमें भावनगरका वोर तालाव।

सरोवर तो हमेशा नीची सतह पर होते हैं। पहाड़से अुतरकर नीचे आते हैं तभी हम सरोवरके जलमें पांवोंका प्रक्षालन कर पाते हैं। किन्तु यह तो मानो गंधर्व सरोवर है; मानो बादल पिघलकर टेकरीके सिर पर छलक रहे हैं!

अुस पारका किनारा दिखाअी दे अैसा सरोवर भला किसे पसन्द आयेगा? अितना सारा पानी कहांसे आता है, अैसी अतृप्त जिज्ञासा जिसके साथ न हो, अुसके सौंदर्यमें दैवी गूढ़ भाव कैसे हो सकता है? रेलवे लाअिन भी बिलकुल सीधी हो तो हमें पसन्द नहीं आती। चढ़ाव हो, अुतार हो, दाअीं या बाअीं ओर मोड़ हो, तभी वह फबती है। सरोवर कोअी प्रपात नहीं है कि वह अूंचे-नीचेकी क्रीड़ा दिखाये। गौरीशंकर चारों ओर टेकरियोंसे घिरा हुआ है। किन्तु ये टेकरियां मौतकी परवाह न करनेवाले वीरोंकी भांति भीड़ करके खड़ी नहीं हैं। अिसलिअे पानीको अिधर-अुधर सभी जगह फैलनेके लिअे अवकाश मिला है।

सरोवरके बांध परसे पश्चिमकी ओर देखने पर पानीमें भांति-भांतिके रंग फैले हुअे दिखाअी देते हैं, मानो किसी अद्भुत अुपन्यासमें नवों रस गूंथे गये हों। पांवके नीचे आत्महत्याका गहरा हरा रंग मानो हर क्षण हमें अंदर बुलाता है। अिसमें भी सभी जगह समानता नहीं है। कहीं मेंहदीकी पत्तियोंकी तरह गाढ़ा, तो कहीं नीमकी पत्तियोंकी तरह गहरा। काफी देखनेके बाद लगता है कि यह पानीका रंग नहीं है, बल्कि पानीमें छिपा हुआ स्वतंत्र जहर है। कुछ आगे देखने पर बादामी रंग दीख पड़ता है, मानो निराशामें से आशा प्रकट होती हो। रंग तो है बादामी, किन्तु अुसमें धातुकी चमक है। आगे जाकर वही रंग कुछ रूपांतर पाकर नारंगी रंगके द्वारा संध्याका अुपस्थान करता हुआ दिखाअी देता है। बादलोंकी जामुनी छाया बीचमें यदि न आअी होती तो पता नहीं अिस ओरके नारंगी और अुस ओरके सुनहरे रंगके बीच कैसी शोभा प्रकट होती!

हमारा ध्यान सुनहरे रंगकी ओर जाता है अुसके पहले ही मंद-मंद बहता हुआ पवन जलपृष्ठ पर वीचिमाला अुत्पन्न करके हमसे कहता है, 'सुनिये, यह समयोचित स्तोत्र!' सामनेकी टेकरीने सिर अूंचा न किया

होता तो यह रसवती पृथ्वी कहां पूरी होती है और निःशब्द आकाश कहां शुरू होता है, यह जानना किसी पंडितके लिअे भी कठिन हो जाता।

बाअीं ओर काट-छांट की हुअी मेंहदीकी वाड़ है। सुघड़ वाड़ किसे पसंद न होगी? किन्तु शृंगार-साधिका मेंहदीका शिरच्छेद मुझे असह्य मालूम हुआ। दाहिनी ओर ठंडे पड़े हुअे किन्तु गाढ़ न हुअे सूर्यके तेजके समान सरोवर और बाअीं ओर नीचे घनी-छिछली झाड़ी! अैसे परस्पर भिन्न रसोंके बीचसे जनककी तरह योगयुक्त चित्तसे हम आगे बढ़े। वहां मिला अेक निराधार सेतु। संस्कृत कवियोंने अुसे देखा होता तो वे अुसका नाम शिक्य-सेतु ही रखते। अैसे सेतुओंकी खोज पहले-पहल हिमालयके वनेचरोंने ही की होगी। यह निराधार पुल हमें धीरे धीरे ले जाता है पानीके बीच तप करनेवाले ऋषि-जैसे अेक द्वीपके जटाभारमें। पुलके बीचोंबीच पहुंचने पर आतिथ्यशील जल चेतावनी देता है: 'सावधानीसे चलिये, सावधानीसे चलिये।' और योग्य अवसर मिलने पर पादप्रक्षालन करनेमें भी नहीं चूकता।

और वह द्वीप? वह तो नीरव शांतिकी मूर्ति है। पानीमें चांद अितना खिलखिलाकर हंसता है, फिर भी अुसकी प्रतिध्वनि कहीं सुनाअी नहीं देती। मानो प्रकृतिको डर मालूम होता है कि कहीं ध्यानी मुनिकी शांतिमें खलल न पड़े। अिस बेटमें न तो सांप हैं, न गिरगिट। पक्षी हों तो वे अब अपने घोंसलोंमें निश्चित सो गये हैं। आतिथेय मंडपके नीचे हम विराजमान हुअे। अब तो पानीके अूपर अज्ञात या गूढ़ अंधकारकी छाया फैलने लगी थी। अष्टमीकी चांदनी सीधी पानीमें अुतर रही थी। सिर्फ जातिवैरी सुर-असुरोंके गुरु दीर्घ विग्रहसे अूबकर पश्चिमकी ओर चमक रहे थे, मानो समझौता करनेके लिअे बिकट्ठे हुअे हों। प्रकाश और अंधकारकी संधि करनेका प्रयत्न संध्याने अनेक बार किया है। अिसमें यदि वह कभी कामयाब हो सके तो ही सुर-असुरोंके बीच हमेशाके लिअे समाधान हो सकेगा। देखिये, दोनोंके गुरु अपनी दिशाको बदलकर अपनी स्वभावोचित गतिसे जा रहे हैं और संध्याकी रक्त कालिमा दोनोंको किसी

पक्षपातके बिना घेर रही है। जो हमेशा विग्रह ही चलाता है, उसका अन्त तो होने ही वाला है।

अब पानीने अपना रंग बदला। अब तक पानीके पृष्ठ पर चांदीके बनाये हुअे रास्तोंके समान जो पट्टे बिना कारण दिखाअी देते थे वे अब दिखने बंद हुअे। खेल काफी हो चुका है, अब गंभीरताके साथ सोचना चाहिये, अैसा कुछ विचार आनेसे पानीकी मुखमुद्रा अंतर्मुख हो गअी। टेकरियां अैसी दिखाअी देने लगीं, मानो प्रेतलोकके वासनादेह विचरते हों। विश्वोंमें शांति भी कितनी बेचैन कर सकती है, अिस बातका खयाल यहां पूरा-पूरा हो आता है। सब टेकरियां मानो हमारी अेक आवाज सुननेकी ही राह देख रही हैं। अिसमें कोअी संदेह नहीं रहता कि जरासी आवाज देने पर वे 'हां, हां! अभी आअीं, अभी आअीं।' कह कर दौड़ती हुअी आयेंगी। किन्तु अुन्हें बुलानेकी हिम्मत ही कैसे हो? क्या वे टेकरियां मध्यरात्रिके समय, कोअी न देख रहा हो तब, कपड़े अुतारकर सरोवरमें नहानेके लिअे अुतरती होंगी? आज तो वे नहीं अुतरेंगी, क्योंकि दुर्विनीत चन्द्रमा मध्यरात्रि तक सरोवरमें टकटकी बांधकर देखता रहेगा। और मध्यरात्रिके पहले ही शिशिरकी ठंडका साम्राज्य शुरू होनेवाला है। फिर पता नहीं, अुषःकालके पहले स्नान करनेकी अिच्छा अिन्हें होगी या नहीं। अैसे किसी पुण्यसंचयके बिना टेकरियोंको भी कितनी स्थिरता कैसे प्राप्त हुअी होगी?

कोअी पुल परसे निकला। पानीमें अुसने खलबली मचायी है, और अुसमें से निकलनेवाली लहरोंके वर्तुल दूर दूर तक दौड़ते हैं। लोग अपने अपने गांवोंमें रहते हैं फिर भी जिस तरह खबरें अुनके द्वारा दूर दूरकी यात्रा करती हैं, अुसी तरह पुलके पास जो क्षोभ शुरू हुआ वह किनारे तक पहुंचने ही वाला है। शरीरमें अेक जगह चोट लगनेसे जैसे सारे शरीरको अुसका पता चल जाता है, वैसी पानीकी भी बात है। पानीकी शांतिमें यदि भंग हो तो अुसके परिणामस्वरूप अुसके अुदरमें प्रतिबिंबित हुआ सारा ब्रह्मांड डोलने लगता है।

अब सितारोंका रास शुरू हुआ। पानीमें अुसका अनुकरण चलता दीख पड़ता है। किन्तु भूलोकका ताल तो अलग ही है।

फरवरी, १९२७

१८

रेणुका का शाप

रेणुका का मतलब है रेत। अुसके शापसे कौनसी नदी सूख न जायगी? गयाकी नदी फल्गु भी अिस तरह अंतःस्रोता हो गअी है न! फिर वढवाणके पासकी भोगावो भी अैसी क्यों न हो? सौराष्ट्रमें भोगावो (बरसातके बाद सुखनेवाली नदियां) बहुत हैं। क्या हरेकको किसी न किसी राणकदेवीका शाप लगा होगा? शेत्रुंजी, भादर, मच्छु, आजी, रंगमती, मेगळ—चारों दिशाओंमें बहनेवाली अिन नदियोंमें कितनी नदियां अैसी हैं, जिनमें बारह मास पानी बहता हो? खंडस्थ भारतवर्षसे सौराष्ट्र-काठियावाड़ अनेक प्रकारसे अलग मालूम होता है। अुसका आकार भी कितना है! चोटीला या बरडा, शेत्रुंजा या गिरनार पर्वत भला पानी देगा भी तो कितना देगा? और अुनकी लड़कियां भी खींच-खींचकर आखिर कितना पानी लायेंगी? नीलगिरि और सह्याद्रि, सातपुड़ा और विंध्याद्रि, हिंदूकुश और हिमालय, नागा, खासी और ब्रह्मी योमा जैसे समर्थ पर्वतराजोंको ही बादलोंका मुख्य करभार मिलता है। अुनकी लड़कियां गौरवसे कैसी अलस-लुलित होकर चलती हैं! अुनके मुकाबलेमें बेचारी काठियावाड़ी नदियां क्या हैं? पानी बरसा कि बहने लगीं। बरसात बन्द हुआ कि असमंजसमें पड़कर सूख गअीं।

हरेक नदीने अेक-दो अेक-दो शहरोंको आश्रय दिया है। भोगावोके कारण वढवाण (अब सुरेन्द्रनगर) की शोभा है। राणकदेवीका शाप अगर न लगा होता तो अिस नदीका मुख कितना अुज्वल मालूम होता! अंत्यजोंका शाप लेकर आगेके लोग भविष्यमें अुसकी क्या दशा करनेवाले

है? शेत्रुंजीकी वक्रता देखनी हो तो अुसके वीर(भाअी)के शिखर परसे देख लीजिये। कुंदनके समान पीली घास अुगी हुअी है, दूर दूर तक गालीचोंके समान खेत फैले हुअे हैं और वीचमें से शेत्रुंजी धीमे धीमे अपना रास्ता काटती जा रही है। शेत्रुंजीकी यह चाल संस्कारी और चित्ताकर्षक है।

और मेगळका नाम मेगळ (=मयगळ?) क्यों पड़ा होगा? क्या देवघरामें मगरने किसी हाथीको पकड़ रखा होगा अिसलिअे? या समुद्र और अुसके वीच आनेवाले अूंचे सिकता-पट पर वह सिर पटकती है अिसलिअे? समुद्रसे मिलनेका हक तो हरेक नदीको है ही। किन्तु वेचारी मेगळके भाग्यमें सालमें आठ महीनों तक खंडिताकी तरह अपने पतिके दूरसे ही दर्शन करना वदा है। वर्षा ऋतुमें जब समुद्रसे भी रहा नहीं जाता तभी अिन दोनोंका संगम होता है। चोरवाड़के लोगोंको अिस संगम पर ही स्मशान वनानेकी क्या सूझी होगी? या कैसे कह सकते हैं कि अिसमें भी औचित्य नहीं है? स्मशान भी तो अिहलोक और परलोकका संगम ही है न!

भादर ही अेक अैसी नदी है, जिसके लिअे काठियावाड़ गर्व कर सकता है। भादरका असली नाम क्या होगा? भाद्रपदी या भद्रावती? वहादुर तो हरगिज नहीं होगा। अिस नदीकी प्रतिष्ठा वहुत है। जेतपुर, नवागढ़ और नवीवंदर जैसे स्थान अुसके तट पर खड़े हैं। नवीवंदर जव वसा होगा तव अुसको 'नवी' (=नयी) नाम देनेवाले पुरुषोंके दिलमें कितनी आकांक्षा, कितना अुत्साह होगा! पोरवंदरसे भी यह श्रेष्ठ होगा, वड़े वड़े जहाज दूर दूरके देशोंका माल देशके अंदर पहुंचायेंगे! दैव यदि अनुकूल होता तो क्या भादर टेम्स नदीकी प्रतिष्ठा न पाती? किन्तु नदीकी प्रतिष्ठा तो अुसके पुत्रोंके पुरुषार्थ पर निर्भर है। आज भादरको हिन्दुस्तानकी पश्चिम-वाहिनी नदियोंका नेतृत्व मिला है यही काफी है।

रंगमती, आजी और मच्छु नदियां चाहे जितनी परोपकारी हों और नवानगर, राजकोट और मोरवीके वैभवको वे भले अखंड रूपमें निहारती हों, फिर भी अुन्हें सागरको छोड़कर छोटे अखातको ही व्याहना पड़ा है।

काठियावाड़की अिन सब नदियोंने देशी रियासतोंकी करतूतोंको तथा प्रपंचोंको पुराने जमानेसे देखा होगा। मगर काठियावाड़के भिन्न भिन्न विभागोंके विशिष्ट रीति-रिवाजोंका दर्शन यदि वे हमें करा दें तो वह कया रोचक जरूर होगी।

सौराष्ट्रकी नदियोंका पानी पीनेवाले किसी पुत्रका यह काम है कि वह अिन नदियोंके मुंहसे अुनका अपना अपना अनुभव सुनवावे।

१९२६–२७

१९

अंबा-अंबिका

भीष्म-पितामह अंबा-अंबिका नामक दो राजकन्याओंको जीतकर राजा विचित्रवीर्यके पास ले आये। कन्याओंने साफ-साफ कह दिया, 'हमारा मन दूसरी जगह बैठा हुआ है।' विचित्रवीर्य अब अिनसे विवाह कैसे करे? और जिसमें अिनका मन चिपका था वह राजा भी जीती हुअी कन्याओंका स्वीकार किस प्रकार करे? बेचारी राजकन्याओंको कोअी पति नहीं मिला और वे झूर झूर कर मर गअीं।

गरमीके दिनोंमें आबूके पहाड़ परसे सरस्वती और बनास नदियोंके दर्शन किये थे। वे बेचारी समुद्र तक पहुंच ही न पाअीं। बीचमें कच्छके रेगिस्तानमें ही झूर झूर कर लुप्त हो गअी हैं। अंबा-अंबिकाकी तरह कौमार्य, सौभाग्य और वैधव्यमें से अेक भी स्थिति अिनके लिअे नहीं रही। गुजरात और राजपूतानाके अितिहासमें अिन नदियोंका कितना भी महत्त्व क्यों न हो, राजा कर्णके दो आंसुओंके अलावा हम अुन्हें क्या दे सकते हैं?

१९२६–'२७

२०

लावण्यफला लूनी

खारची (मारवाड़ जंक्शन) से सिंध हैदराबाद जाते हुमे लूनी नदीका दर्शन अनेक बार किया है। क्यूंकि स्वदेश जोधपुर जानेका रास्ता लूनी जंक्शनसे ही है; अिसलिअे भी अिस नदीका नाम स्मृतिपट पर अंकित है। वहांके स्टेशन पर हिरणके अच्छे-अच्छे चमड़े सस्तेमें मिलते थे। अैसे मुलायम मृगाजिन वहांसे खरीदकर मैंने अपने कअी गुरुजनोंको और प्रियजनोंको ध्यानासनके तौर पर भेंट दिये थे। पता नहीं कि चमड़ेके अिस अुपयोगसे हिरणोंको अुनके ध्यानका कुछ पुण्य मिला था नहीं।

लूनीका नाम सुनते ही हृदय पर विषाद छा जाता है। यों तो सब-की-सब नदियां अपना मीठा जल लेकर खारे समुद्रसे मिलती हैं। और अिसी तरह अपने पानीको सड़नेसे बचाती हैं। लेकिन सागरका संगम होने तक नदीका पानी मीठा रहे यही अच्छा है। बेचारी लूनीका न सागरसे संगम होता है, और न आखिर तक अुसका पानी मीठा ही रहता है।

अगर यह नदी सांभर सरोवरसे निकली होती तो अुसका खारापन हम माफ कर देते। लेकिन अुसका अुद्गम है अजमेरके पास अरवली, आरावली या आड़ावलीकी पहाड़ियोंसे। वहां भी अुसे सागरमती कहते हैं! वह गोविन्दगढ़ तक पहुंच गअी तो वहां पुष्कर सरोवरके पवित्र जल लाकर सरस्वती नदी अुससे मिलती है।

लूनीका असली नाम था लवणवारि। अुसका अपभ्रंश हो गया लोणवारी, और आज लोग अुसे कहते हैं लूनी। अजमेरसे लेकर आबू तक जो आरवलीकी पर्वत श्रेणी फैली हुअी है, अुसका पश्चिमका सारा पानी छोटे-बड़े स्रोतोंके द्वारा लूनीको मिलता है। अिस पानीके बदौलत जोधपुर राज्यका आधा भाग अपनी द्विदल धान्यकी खेती करता

है। सिंघाड़ेकी अुपज भी यहां कम नहीं है। जहां-जहां लूनीकी बाढ़ पहुंचती है, वहां किसान अुसे आशीर्वाद ही देते हैं।

जब लूनी बालोतरा पहुंचती है तब अुसका भाग्य — सौभाग्य नहीं किन्तु दुर्भाग्य, अुस पर सवार होता है। जहां जमीन ही खारी है वहां बेचारी नदी क्या करे?

जोधपुरके राजा जसवंतसिंहको सद्‌बुद्धि सूझी। अुसने लूनी नदीका पानी खारा होनेके पहले ही, बिलाड़ाके पास अेक बड़ा बांध बांध दिया और बाअीस वर्गमीलका अेक बड़ा विशाल, मनुष्य-कृत सरोवर बना दिया। तेरह हजार वर्गमीलका पानी अिस सरोवरमें अिकट्ठा होता है। अिसकी गहराअी अधिक-से-अधिक चालीस फुटकी है। अिस सरोवरका नाम 'जसवंत-सागर' रखा सो तो ठीक ही है, क्योंकि राजाने अुसे बनाया। अगर किसानोंसे पूछा जाता तो वे अुसे 'लूनी-प्रसाद' कहते।

अपनी दो सौ मीलकी यात्राके अन्तमें यह नदी कच्छके रणमें अपने भाग्यको कोसते-कोसते लुप्त हो जाती है। अिसके तीनों मुख नमकसे अितने भरे हुए रहते हैं कि समुद्र भी अिसके पानीका आचमन करनेमें संकोच करता है।

अब देखना है कि लूनी, सरस्वती, बनास और अैसी ही दूसरी नदियां जिस श्रद्धासे अपना जल कच्छके रणमें छोड़ देती हैं, अुस श्रद्धाका फल अुन्हें कब मिलता है और रणका परिवर्तन अुपजाअू भूमिमें कब हो जाता है। आज लूनी नदी करीब-करीब पाकिस्तानकी सरहद तक पहुंच जाती है और कच्छके रणको दिन-पर-दिन अधिक खारा करती जाती है! अैसी लवण-प्रधान, लवण-समृद्ध नदीको अगर हम 'लावण्यवती' कहें तो वैयाकरण अुस नामको जरूर मान्य करेंगे।

काव्यरसिक क्या कहेंगे अिसका पता नहीं।

१०.५७

२१

अुंचळ्ळीका प्रपात

जोगके बिलकुल ही सूखे प्रपातके अिस वारके दर्शनका गम हलका करनेके लिअे दूसरा अेकाध भव्य और प्रसन्न दृश्य देखनेकी आवश्यकता थी ही। कारवार जिलेके सर्वसंग्रह—गॅजेटियर—के पन्ने अुलटते अुलटते पता चला कि जोगसे थोड़ा ही घटिया अुंचळ्ळी नामक अेक सुन्दर प्रपात शिरसीसे बहुत दूर नहीं है। लशिंग्टन नामक अेक अंग्रेजने सन् १८४५में अिसकी खोज की थी, मानो अुसके पहले किसीने अिसे देखा ही न हो! अंग्रेजोंकी आंखों पर वह चढ़ा कि दुनियामें अुसकी शोहरत हो गयी!

यह अुंचळ्ळी कहां है? वहां किस ओरसे जाया जा सकता है? हम कैसे जायें? हमारे कार्यक्रममें वह बैठ सकता है या नहीं? आदि पूछताछ मैंने शुरू कर दी। श्री शंकरराव गुलवाड़ीजीने देखा कि अब अुंचळ्ळीका कार्यक्रम तय किये बिना शांति या स्वास्थ्य मिलनेवाला नहीं है। वे खुद भी मुझसे कम अुत्साही नहीं थे। अुन्होंने बताया कि जब बिजली पैदा करनेकी दृष्टिसे कारवार जिलेके प्रपातोंकी जांच—सरवे की गयी थी, तब अिंजीनियर लोगोंने अुंचळ्ळीके प्रपातको प्रथम स्थान पर रखा था; और गिरसप्पा यानी जोगके प्रपातको दूसरे स्थान पर; मागोडाको तीसरा और सूपाके नजदीकके प्रपातको चौथा स्थान दिया था।

समुद्रके साथ कारवार जिलेकी दोस्ती जोड़नेवाली मुख्य चार नदियां हैं—काळी नदी, गंगावळी, अघनाशिनी और शरावती। अिनमें से शरावती या बालनदी होन्नावरके पास समुद्रसे मिलती है। दस साल पहले जब हमने जोगका प्रपात दूसरी बार देखा था, तब अिस शरावती नदी पर नावमें बैठकर होन्नावरसे हम अूपरकी ओर गये थे। शरावतीका किनारा तो मानो वनश्रीका साम्राज्य है!

अबकी बार जब हम हुबलीसे अंकोला और कारवार गये तब आरबेल घाटीमें से 'नागमोड़ी' रास्ता निकालनेवाली गंगावळीको

देखा था। और अंकोलासे गोकर्ण जाते समय अुसके पृष्ठभाग पर नौका-क्रीड़ा भी की थी। काळी नदीके दर्शन तो मैंने बचपनमें ही कारवारमें किये थे। पचास साल पहलेके ये संस्मरण दस साल पहले ताजे भी किये थे और अबकी बार भी कारवार पहुंचते ही काळी नदीके दो बार दर्शन किये। किन्तु अितनेसे संतोष न होनेके कारण कारवारसे हळगा तक की दस मीलकी यात्रा — आना-जाना — नावमें की।

चौथी है अघनाशिनी। अुसका नाम ही कितना पावन है! गोकर्णके दक्षिणकी ओर तदड़ी बंदरके पास वह टेढ़ी-मेढ़ी होकर खूब फैलती है। किन्तु समुद्र तक पहुंचनेके लिअे अुसको जो रास्ता मिलता है वह बिलकुल छोटा है। यह अघनाशिनी जहां समुद्रसे मिलनेके लिअे अुतावली होकर सह्याद्रिके पहाड़ परसे नीचे कूदती है, वही स्थान अुंचळ्ळीके प्रपातके नामसे पहचाना जाता है।

हमने सिद्धापुरसे शिरसीका रास्ता लिया। किन्तु शिरसी तक जानेके बदले अेक रास्ता पश्चिमकी ओर फूटता था, अुससे हम नीलकुंद पहुंचे। वहां श्री गोपाल भाडगांवकरके चाचा रहते थे। वे बड़े प्रतिष्ठित जमींदार थे। अुनके आतिथ्यका स्वीकार करके हम अुंचळ्ळीकी खोजमें निकल पड़े। नीलकुंदसे होसतोट (=नया बगीचा) जाना था। फौजी 'जीप'का प्रबंध होनेसे जंगलका रास्ता कैसे तय करेंगे, यह चिंता करीब करीब मिट गअी थी। होसतोटसे होन्नेकोंब (=सोनेका सींग) की ओरका रास्ता हमें लेना था। किन्तु अिस रास्तेसे मोटर तो क्या, बैलगाड़ी या पालकी भी नहीं जा सकती थी। अिसे तो बाघका रास्ता कहना चाहिये। मनुष्य भी बाघके जैसा बनकर ही अैसे रास्तेसे जा सकता है। हमने अपनी जीपको अेक पेड़की छांहमें आराम करनेके लिअे छोड़ दिया और 'अथाऽतो प्रपात-जिज्ञासा' कहकर जंगलमें रास्ता तय करना शुरू किया। होसतोटसे अेक स्थानिक नौजवान हाथमें अेक बड़ा 'कोयता' लेकर हमें रास्ता दिखानेके लिअे हमारे आगे चला। अिस बेचारेको धीरे चलनेकी आदत नहीं थी, न सृष्टि-सौंदर्य निहारनेकी लत! वह तो आगे ही आगे चलने लगा। हमें अुसका

बहुत ही कम लाभ मिला। हम कुछ आगे गये। ऊपर चढ़े, नीचे उतरे, फिर चढ़े और फिर उतरे। इतनेमें जंगल घना होने लगा। थोड़े समयके बाद वह घनघोर हो गया।

So steep the path, the foot was fain,
Assistance from the hand to gain.

हमारी मुख्य कठिनाई तो पगडंडीकी थी। वहां सूखे पत्ते इतने जमा हो गये थे कि पांव न फिसले तो ही गनीमत समझिये! मेहर मालिककी कि जिन पत्तोंमें से सरसराता हुआ कोई सांप न निकला। वरना हमारी अंचळ्ळी वहींकी वहीं रह जाती। जहां सख्त उतार होता था वहां लाठीसे पत्तोंको हटाकर देखना पड़ता था कि कोई मजबूत पत्थर या किसी दरख्तकी अेकाध चीमड़ जड़ है या नहीं।

दोपहरके बारहका समय था। किन्तु पेड़ोंकी 'स्निग्ध-छाया'के अंदर धूप आये तभी न? चलकर यदि गरम न हो गये होते तो सर्दी ही लगती। जरा आगे बढ़ते और अेक-दूसरेसे पूछते, "हमने कितना रास्ता तय किया होगा? अब कितना बाकी होगा?" सभी अज्ञान! किन्तु सिद्धापुरसे अेक आयुर्वेदिक डॉक्टर कैमेरा लेकर हमारे साथ आये थे। वे सज्जन अेक साल पहले दूसरे किसी रास्तेसे अंचळ्ळी गये थे। अपने पुराने अनुभवके आधार पर वे रास्तेका अंदाज हमें बताते थे। बीच बीचमें तो हमारा यह नाममात्रका रास्ता भी बन्द हो जाता था। आगे अंदाजसे ही चलना पड़ता था। किन्तु सच्ची मुसीबत रास्ता बन्द हो जाने पर नहीं, बल्कि तब होती है जब अेक पगडंडी फूटकर दो पगडंडियां बन जाती हैं। जब सही रास्ता दिखानेवाला कोई नहीं होता और अंधा अंदाज करनेवाले अेक साथीकी रायसे दूसरेका अंधा अंदाज मेल नहीं खाता, तब 'यद् भावि तद् भवतु'—जो होनेवाला होगा सो होगा—कहकर किस्मतके भरोसे किसी अेक पगडंडीको पकड़ लेना पड़ता है।

किसीने कहा कि दूरसे प्रपातकी आवाज सुनाई देती है। मेरे कान बहुत तीक्ष्ण नहीं हैं। अेकने तो कभीका इस्तीफा दे दिया है और दूसरा काम भरकी ही बात सुनता है। किन्तु अपनी कल्पना-शक्तिके

बारेमें मैं अैसा नहीं कहूंगा। मैंने कान और कल्पना, दोनोंके सहारे सुननेकी कोशिश की। किन्तु जिसे प्रपातकी आवाज कहें वैसी कोअी आवाज सुनाअी न दी। कहीं मधुमक्खियां भनभनाती होतीं तो भी मैं कहता, "हां, हां, प्रपातकी आवाज सचमुच सुनाअी देती है।" कठिन यात्रामें साथियोंके साथ झट सहमत हो जानेके यात्रा-धर्ममें मेरा पूर्ण विश्वास है। किन्तु यहां मैं लाचार था।

अेक ओर यदि जंगलकी भीषण सुंदरताका मैं रसास्वादन कर रहा था, तो दूसरी ओर चि० सरोजके कितने बेहाल हो रहे होंगे अिस चिंतासे अुसकी ओर देखता था। जब सरोजने कहा, "जंगलकी अैसी यात्राके अंतमें अगर कोअी प्रपात देखनेको न मिले तो भी कहना होगा कि यहां आना सार्थक ही हुआ है। कैसा मजेका जंगल है! ये बड़े बड़े पेड़; अुन्हें अेक-दूसरेसे बांधनेवाली ये लतायें—सब सुन्दर है!" तब मुझे बहुत संतोष हुआ।

आगे जब रास्ता लगभग असंभव-सा मालूम हुआ, और अेक हाथमें लकड़ी तथा दूसरेसे किसीका कंधा पकड़कर अुतरना भी संदेहप्रद प्रतीत हुआ, तब भी सरोज कहने लगी: "मेरा अुत्साह कम नहीं हुआ है। किन्तु दूसरोंको अड़चनमें डाल रही हूं अिस खयालसे ही हताश हो रही हूं। यह अुतार फिर चढ़ना होगा अिसका भी खयाल रखना है।"

मैंने कहा, "अेक बार अुंचळ्लीके दर्शन करनेके बाद किसी न किसी तरह वापस तो लौटना होगा ही। किन्तु हम पूरा आराम लेकर ही लौटेंगे। यहां तक तो आ ही गये हैं, और अब प्रपातकी आवाज भी सुनाअी दे रही है। अिसलिअे अब तो आगे बढ़ना ही चाहिये।"

हमारे मार्गदर्शकने नीचे जाकर आवाज दी। डॉक्टरने कहा, "शायद अुसने पानी देखा होगा।" हमारा अुत्साह बढ़ा। हम फिर अुतरे। आगे बढ़े। फिर दाहिनी ओर मुड़े और आखिर जिसके लिअे आंखें तरस रही थीं अुस प्रपातका सिर नजर आया!

अेक तंग घाटीके अिस ओर हम खड़े थे और सामने अघनाशिनीका पानी, जिसे सुबह जीपकी यात्राके दरम्यान हमने तीन-चार बार

लांबा था, यहां अेक बड़े पत्थरके तिरछे पट परसे नीचे पहुंचनेकी तैयारी कर रहा था। गीत जिस प्रकार तम्बूरेके तालके साथ ही सुना जाता है, अुसी प्रकार प्रपातके दर्शन भी नगारेके समान धड़-धड़ आवाजके साथ ही किये जाते हैं।

अुंचळ्ळीका प्रपात जोगके राजाकी तरह अेक ही छलांगमें नीचे नहीं पहुंचता है। सुबहकी पतली नींदके हरेक अंशका जिस प्रकार हम अर्ध-जाग्रत स्थितिमें अनुभव लेते हैं, अुसी प्रकार अघनाशिनीका पानी अेक अेक सीढ़ीसे कूदकर सफेद रंगका अनेक आकारोंका परदा बनाता है। अितने शुभ्र पानीमें संसारका कालेसे काला 'अघ'—पाप भी सहज ही धुल सकता है

जिस प्रकार धान पछोरने पर सूपके दाने नाचते-कूदते दाहिनी ओरके कोने पर दौड़ते आते हैं, और साथ साथ आगे भी बढ़ते हैं, अुसी प्रकार यहांका पानी पहाड़के पत्थर परसे अुतरते समय तिरछा भी दौड़ता है और फेनके वलय बनाकर नीचे भी कूदता है। पानी अेक जगह अवतीर्ण हुआ कि वह फौरन घूमकर अंगरखेके घेरकी तरह या धोतीके घुमावकी तरह फैलने लगता है और अनुकूल दिशा ढूंढ़कर फिर नीचे कूदता है।

अब तो बिना यह जाने कि यह पानी किस प्रकार कितने नखरे करनेवाला है और अंतमें कहां तक पहुंचनेवाला है, संतोष मिलनेवाला न था। हममें से चंद लोग आगे बढ़े। फिर अुतरे। और भी अुतरे। पेड़की लचीली डालियोंको पकड़कर अुतरे। अैसा करते करते पूरे प्रपातका अखंड साक्षात्कार करानेवाले अेक बड़े पत्थर पर हम जा पहुंचे। अुस पर खड़े रहकर सामनेकी बड़ी अूंची चट्टानसे गिरते हुअे पानीका पदक्रम देखना जीवनका अनोखा आनन्द था। हम टकटकी लगाकर पानीको देखते थे। मगर हम लोगोंको देखनेके लिअे पानीके पास फुरसत न थी। वह अपनी मस्तीमें चूर था। कपूरके चूर्णमें शुभ्र रंगका जो अुत्कर्ष होता है, वही अिस जीवनावतारमें था।

भगवान सूर्यनारायण माथे परसे हमें अपने आशीर्वाद देते थे। पसीनेके रेले हमारे गालों परसे चाहे अुतने अुतरें, सामनेके प्रपातके आगे वे किसीका ध्यान थोड़े ही खींच सकते थे! सूर्यनारायणके आशीर्वाद झेलनेकी जैसी शक्ति अुंचळ्ळीके प्रपातमें थी, वैसी मुझमें न थी। पानी चमक कर सफेद रेशम या साटिनकी शोभा दिखाने लगा। A moving tapestry of white satin and silver filigree.

कटकमें चांदीके बारीक तार खींचकर अुसके अत्यंत नाजुक और अत्यंत मोहक फूल, गहने आदि बनाये जाते हैं। तारके बनाये हुअे पीपलके पत्ते, कमल, करंड आदि अनेक प्रकारकी चीजें मैंने अुड़ीसामें मन भरकर देखी हैं और कहा है, 'अिन गहनोंने बेशक कटकका नाम सार्थक किया है।'

प्रकृतिके हाथोंसे बननेवाले और क्षण-क्षणमें बदलनेवाले चांदीके सुंदर और सजीव गहने यहां फिरसे देखकर कटकका स्मरण हो आया। सोनेके ढक्कनसे सत्यका रूप शायद ढंक जाता होगा, किन्तु चांदीके सजीव तार-कामसे प्रकृतिका सत्य अद्‌भुत ढंगसे प्रगट होता था। "अब अिस सत्यका क्या करूं? किस तरह अुसे पी लूं? अुसे कहां रखूं? किस तरह अुठाकर ले चलूं?" अैसी मधुर परेशानी मैं महसूस कर रहा था, अितनेमें पुरानी आदतके कारण, अनायास, कंठसे अीशावास्यका मंत्र जोरोंसे गूंजने लगा। हां, सचमुच अिस जगतको अुसके अीशसे ढंकना ही चाहिये — जिस तरह सामनेका तिरछा पत्थर पानीके परदेसे ढंक जाता है और वह परदा चैतन्यकी चमकसे छा जाता है। जो जो दिखाअी देता है — फिर वह चाहे चर्म-चक्षुकी दृष्टि हो या कल्पनाकी दृष्टि हो — सबको आत्मतत्त्वसे ढंक देना चाहिये। तभी अलिप्त भावसे अखंड जीवनका आनन्द अंत तक पाया जा सकता है। मनुष्यके लिअे दूसरा कोअी रास्ता नहीं है।

दृष्टि नीचे गअी। वहां अेक शीतल कुंड अपनी हरी नीलिमामें प्रपातका पानी झेलता था और यह जाननेके कारण कि परिग्रह अच्छा नहीं है, थोड़ी ही देरमें अेक सुंदर प्रवाहमें अुस सारी जलराशिको बहा देता था। अघनाशिनी अपने टेढ़े-मेढ़े प्रवाहके द्वारा आसपासकी सारी भूमिको

पावन करनेका और मानव-जातिके टेढ़े-मेढ़े (जुहुराण) पाप (अेनस्) को धो डालनेका अपना व्रत अविरत चलाती थी। मैंने अंतमें अुसीसे प्रार्थना की:

युयोधि अस्मत् जुहुराणम् अेनः
भूयिष्ठां ते नम अुक्तिं विधेम।

हे अघनाशिनी! हमारा टेढ़ा-मेढ़ा कुटिल पाप नष्ट कर दे। हम तेरे लिअे अनेकों नमस्कारके वचन रचेंगे।

जून, १९४७

२२

गोकर्णकी यात्रा

लंकापति रावण हिमालयमें जाकर तपश्चर्या करने बैठा। अुसकी मांने अुसे भेजा था। शिवपूजक महान सम्राट् रावणकी माता क्या मामूली पत्थरके लिंगकी पूजा करे? अुसने लड़केसे कहा, "जाओ बेटा, कैलास जाकर शिवजीके पाससे अुन्हींका आत्मलिंग ले आओ। तभी मेरे यहां पूजा हो सकती है।" मातृभक्त रावण चल पड़ा। मानसरोवरसे हररोज अेक सहस्र कमल तोड़कर वह कैलासनाथकी पूजा करने लगा। यह तपश्चर्या अेक हजार वर्ष तक चली।

अेक दिन न जाने कैसे, नौ कमल कम आये। पूजा करते करते बीचमें अुठा नहीं जा सकता था, और सहस्रकी संख्यामें अेक भी कमल कम रहे तो काम नहीं चल सकता था। अब क्या किया जाय? आशुतोष महादेवजी शीघ्रकोपी भी हैं। सेवामें जरा भी न्यूनता रही कि सर्वनाश ही समझ लीजिये। रावणकी बुद्धि या हिम्मत कच्ची तो थी ही नहीं। अुसने अपना अेक-अेक शिर-कमल अुतारकर चढ़ाना शुरू कर दिया। अैसी भक्तिसे क्या प्राप्त नहीं होता? भोलानाथ प्रसन्न हुअे। कहने लगे: 'वर मांग, वर मांग। जितना मांगे अुतना कम

है।' रावणने कहा, 'मां पूजामें बैठी है। आपका आत्मलिंग चाहिये।' शब्द निकलनेकी ही देर थी। शंभुने हृदय चीरकर आत्मलिंग निकाला और रावणको दे दिया।

त्रिभुवनमें हाहाकार मच गया। देवाधिदेव महादेवजी आत्मलिंग दे बैठे। और वह भी किसको? सुरासुरोंके काल रावणको! अब तीनों लोकोंका क्या होगा? ब्रह्मा दौड़े विष्णुके पास। लक्ष्मी सरस्वतीसे पूछने गयीं। इन्द्र मूर्छित हुआ। आखिर विघ्ननाशक गणपतिकी सबने आराधना की और उनसे कहा, 'चाहे सो कीजिये। किन्तु यह लिंग लंकामें न पहुंचने पाये ऐसा कुछ कीजिये।'

महादेवजीने रावणसे कहा था, 'लो यह लिंग। जहां जमीन पर रखोगे वहीं यह स्थिर हो जायगा।' महादेवजीका लिंग पारेसे भी भारी था। रावण उसे लेकर पश्चिम समुद्रके किनारे चला जा रहा था। शाम होने आयी थी। रावणको लघुशंकाकी हाजत हुई। शिव-लिंगको हाथमें लेकर बैठा नहीं जा सकता था; जमीन पर तो रखा ही कैसे जाता? रावणके मनमें यह उधेड़बुन चल ही रही थी कि इतनेमें देवताओंके संकेतके अनुसार गणेशजी चरवाहेके लड़केका रूप लेकर गौएं चराते हुए प्रकट हुए। रावणने कहा, 'ऐ लड़के, यह लिंग जरा संभाल तो। जमीन पर मत रखना।'

गणेशने कहा, 'यह तो भारी है। थक जाऊंगा तो तीन बार आवाज दूंगा। इतनी देरमें तुम आये तो ठीक, वरना तुम्हारी बात तुम जानो।'

हाजत तो लघुशंकाकी ही थी। इसमें भला कितनी देर लगती? रावण बैठा। बैठा तो सही किन्तु न मालूम कैसे, आज उसके पेटमें सात समुद्र भर गये थे! जनेऊ कान पर चढ़ाने पर तो बोला भी नहीं जा सकता था। सिद्धि-विनायकने इकरारके अनुसार तीन बार रावणके नामसे आवाज दी। और अर्र्र्र्की चीख मारकर लिंग जमीन पर रख दिया, मानो वजन असह्य मालूम हुआ हो! जमीन पर रखते ही लिंग पाताल तक पहुंच गया! रावण क्रोधके मारे लाल-लाल होकर आया और गणपतिकी खोपड़ी पर उसने कसकर एक घूंसा मारा। गजाननका सिर खूनसे लथपथ हो गया।

बादमें रावण दौड़ा लिंग उखाड़ने। किन्तु अब तो यह बात असंभव थी। पाताल तक पहुंचा हुआ लिंग कैसे उखाड़ा जा सकता था? सारी पृथ्वी कांपने लगी, किन्तु लिंग बाहर नहीं आया। आखिर रावणने लिंगको पकड़कर मरोड़ डाला। जिससे अुसके चार टुकड़े हाथमें आये। निराशाके आवेशमें अुसने चारों टुकड़े चारों दिशाओंमें फेंक दिये और बेचारा खाली हाथ लंकाको वापस लौटा।

मरोड़े हुअे लिंगका मुख्य भाग जहां रहा, वही है गोकर्ण-महाबळेश्वर। सारी पृथ्वी पर जितने अधिक पवित्र तीर्थ-स्थान नहीं है।

* * *

गोकर्ण-महाबळेश्वर कारवार और अंकोला बंदरगाहोंके बीच स्थित तदड़ी बंदरगाहसे करीब छः मील अुत्तरकी ओर ठीक समुद्रके किनारे पर है। दक्षिणमें जिसका माहात्म्य काशीसे भी अधिक माना जाता है। लिंग अधिकतर जमीनके अंदर ही है। अुसकी जलाधारीके बीचोंबीच अेक बड़ा सुराख है। अुसमें अंदर अंगूठा डालने पर भीतरके लिंगका स्पर्श होता है। दर्शनका तो प्रश्न ही नहीं। वहांके पुजारी कहते हैं कि लिंगकी शिला अत्यंत मुलायम है। नखोंके स्पर्शसे वह घिस जाती है, जिसलिअे प्राचीन लोगोंने यह प्रबंध किया है। बहुत बरसोंके बाद शुभ शकुन होने पर जलाधारी निकाली जाती है और आसपासकी चुनाअीको हटाकर मूल लिंगको दो-तीन हाथोंकी गहराअी तक खोल दिया जाता है। कुछ महीनों तक खुला रखनेके बाद मोतियोंको पीसकर बनाये हुअे चूनेसे आसपासकी चुनाअी फिरसे कर दी जाती है। यदि मैं भूलता नहीं हूं, तो अिस क्रियाको 'अष्टबंध' या अैसा ही कुछ नाम दिया जाता है।

हम कारवारमें थे तब अेक बार कपिलाषष्ठी जैसा दुर्लभ अष्टबंधका योग आया। पिताश्री, आअी (मां) और मैं—हम तीनों अिस यात्रामें गये। तदड़ी बंदरगाह पर मुझे अुठा लेनेके लिअे 'कुली' किया गया। अुसके कंधे पर बैठकर मैं गोकर्ण गया। कोटितीर्थमें स्नान किया। गोकर्ण-महाबळेश्वरके दर्शन किये। स्मशानभूमि और अुसकी रखवाली करनेवाले हरिश्चंद्रका दर्शन किया। हड्डियां डालने पर जिसमें

गल जाती हैं अैसे पानीका अेक तीर्थ देखा। अहल्याबाअीके अन्नसत्रमें अुस साध्वीकी मूर्ति देखी। सिरमें चोटके निशानवाले और दो हाथोंवाले चरवाहे गजाननके दर्शन किये। ब्रह्माकी अेक मूर्ति देखी। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि रावणकी अुस मशहूर लघुशंकाका कुंड भी देखा। आज भी वह भरा हुआ है और अुससे बदबू आती है। और भी बहुत कुछ देखा होगा, किन्तु वह आज याद नहीं है।

हां, अिस प्रदेशकी अेक खासियत बताना तो मैं भूल ही गया। घर चाहे गरीबका हो या अमीरका, फर्श तो गारेकी ही होगी; किन्तु वह काले संगमरमरके पत्थरके समान सख्त और चमकनेवाली होती है। सचमुच अुसमें मुंह दिखाअी देता है। गरमीके दिनोंमें दोपहरके समय आदमी बगैर कुछ बिछाये गारेके अुस पलस्तर पर आरामसे सो सकता है। समय समय पर यह जमीन गोबर और काजल मिलाकर अुससे लीपी जाती है। किन्तु हाथसे नहीं लीपा जाता। सुपारीके पेड़ पर अेक तरहकी छाल तैयार होती है। अुससे फर्शको घिस-घिसकर चमकीला बनाया जाता है। अिस छालको वहांकी भाषामें 'पोवली' कहते हैं।

गोकर्णसे वापस लौटते समय तदड़ी तक समुद्री रास्तेसे वाफर यानी स्टीमलोंचमें जानेका विचार था। मौसमी तूफान शुरू होनेको बहुत ही थोड़े दिन बाकी थे। आठ दिनके बाद आगबोटें भी बंद होनेवाली थीं। अिसलिअे वापस लौटनेवाले यात्रियोंकी भीड़का पार नहीं था। तदड़ी बंदरसे चढ़नेवाले यात्रियोंको स्टीमरमें जगह मिलेगी या नहीं, अिस बातका संदेह था। अिसीलिअे हमने स्टीमलोंचमें बैठकर स्टीमर तक जल्दी पहुंचना पसंद किया था।

गोकर्णका बंदर बंधा हुआ नहीं था। किनारेसे मेरी छाती बराबर पानी तक तो चलकर जाना पड़ता था। वहांसे नावमें बैठकर स्टीमलोंच तक जाना पड़ता था। नौजवान लोग नाव तक चलकर जाते; किन्तु औरतें तथा बच्चे तो कुलियोंके कंधे पर चढ़कर या दो कुलियोंके हाथोंकी पालकीमें बैठकर जाते।

शुरूमें ही अेक अपशकुन हुआ। अेक गरीब बुढ़िया शरीरसे कुछ स्थूल थी। किन्तु किराये पर दो कुली करने जितने पैसे अुसके

पास न थे। अुसने अेक लंबी कुलीको कुछ अधिक मजदूरी देनेका लालच देकर अपनेको कन्धे पर अुठा ले जानेके लिअे राजी किया। वह था दुबला-पतला। वह किनारे पर बैठ गया। विधवा बुढ़िया अुसके कन्धे पर सवार हुअी। किन्तु ज्यों ही कुली अुठने गया, त्यों ही दोनों धम्मसे गिर पड़े। अितनेमें अेक नटखट लहरने दौड़ते आकर दोनोंको कृतार्थ कर दिया!

यह बोट लगभग 'आखिरी' होनेसे गोकर्णमें भी पड़नेवाले यात्री बहुत थे। ये सबके सब स्टीमलोंचमें कैसे समाते? अिसलिअे सौ आदमी बैठ सकें अितना बड़ा अेक पड़ाव (यानी नाव) स्टीमलोंचके पीछे बांध दिया गया। और अुसके पीछे कस्टम्स विभागके अेक अफसरकी सफेद नाव बांध दी गअी। मैंने देखा कि खानगी नावोंकी पतवारें कड़छी या पंखे जैसी गोल होती हैं, जब कि कस्टमवालोंकी पतवारें क्रिकेट-बैटकी तरह लंबी-लंबी और चपटी होती हैं।

हमारा काफला ठीक समय पर निकला। अेक दो मील गये होंगे कि अितनेमें आसमान बादलोंसे घिर गया। हवा जोरसे बहने लगी। लहरें जोर जोरसे अुछलने लगीं, मानो बड़ी दावत मिल रही हो। नावें डोलने लगीं। और स्टीमलोंच परका खिंचाव भी बढ़ने लगा। अरे! यह क्या? बारिशके छींटे! बड़े बड़े बेरोंके जैसे छींटे! अब क्या होगा? लहरें जोर जोरसे अुछलने लगीं। स्टीमलोंच बेकाबू घोड़ेकी तरह अूपर-नीचे कूदने लगी। पीछेकी नावकी रस्सियां कर्‌र्‌र्‌र् कर्‌र्‌र्‌र् आवाज करने लगीं। अितनेमें स्टीमलोंच और नावके बीच अेक लहर अितनी बड़ी आअी कि नाव दिखाअी ही न दी।

मैं स्टीमलोंचमें बॉयलरके पास लकड़ीके तख्तोंके चबूतरे पर बैठा था। हमारे कप्तानको जल्दीसे जल्दी स्टीमर तक पहुंचना था। अुसने स्टीमलोंच पागलकी तरह पूरी रफ्तारमें छोड़ दी। चबूतरा गरम हुआ। मैं जलने लगा। समझमें न आया कि क्या करूं? जरा अिधर-अुधर हटता तो 'समुद्रास्तृप्यन्तु' होनेका डर था! और बैठना बिलकुल नामुमकिन हो गया था। अिस अुलझनसे मुझे बड़े भयानक ढंगसे छुटकारा मिला। समुद्रकी अेक प्रचंड लहर चढ़ आअी

और अुसने मुझे नखशिखान्त नहला दिया। अब चबूतरा गरम रहता ही कैसे? पिताश्री परेशान हुअे। आअी (मां) को तो कुलदेवका स्मरण हो आया: 'मंगेशा! महारुद्रा! मायबापा! तूंच आतां आम्हांला तार!' मूसलधार वर्षा होने लगी। हम स्टीमलोंचवाले तो कुछ सुरक्षित थे। किन्तु पीछेके अुन नाववालोंका क्या? शुरू शुरूमें तो स्टीमलोंचको पानी काटना था, अिसलिअे अुसमें पानी आसानीसे आ जाता था। किन्तु नावको तो हर हिलोर पर सवार ही होना था, अिसलिअे चाहे जितना डोलने-पर भी अुसके अंदर पानी नहीं आ पाता था। किन्तु जब हवा और बारिशके बीच होड़ लगी और दोनोंका अट्टहास्य बढ़ने लगा, तब अेक ही लहरमें आधीके करीब नाव भर जाने लगी। लहरें सामनेसे आतीं, तब तक तो ठीक था। नाव अुन पर सवार होकर अुस पार निकल जाती थी। कभी लहरोंके शिखर पर तो कभी दो लहरोंके बीचकी घाटीमें। कभी कभी तो नाव अेक हिलोर परसे अुतरती कि नीचेसे नअी लहर अुठकर अुसे अधरमें ही अुठा लेती थी। अैसी अनसोची हलचल होने पर अंदर जो लोग खड़े थे वे धड़ाधड़ अेक-दूसरे पर गिर पड़ते थे।

लेकिन अब लहरें बाजुओंसे टकराने लगीं। नावके अंदर बैठी हुअी औरतों और बच्चोंको तो सिर्फ फूट फूटकर रोनेका ही अिलाज मालूम था। जितने जवांमर्द थे वे सब डोल, गागर या डिब्बा, जो भी हाथमें आता अुसीमें पानी भर-भरकर बाहर फेंकने लगे। फायर अेंजिनके बंबे भी अिससे ज्यादा तेजीसे क्या काम कर पाते? नाव खाली होती न होती अितनेमें अेकाध क्रूर लहर विकट हास्यके साथ 'ध...ड़' से नावसे टकराती और अंदर चढ़ बैठती। अुस समय स्त्री-बच्चोंकी चीखें और दहाड़ें कानोंको फाड़े डालती थीं। दिल चीर डालती थीं। कुछ यात्री अवधूत दत्तात्रेयको सहायताके लिअे पुकारने लगे, कुछ पंढरपुरके विठोबाको पुकारने लगे। कोअी अंबा भवानीकी मन्नत मनाने लगे, तो कोअी विघ्नहर्ता गणेशको बुलाने लगे। शुरू शुरूमें स्टीमलोंचके कप्तान और खलासी हम सबको धीरज देते और कहते: 'अजी आप डरते क्यों हैं? जिम्मेदारी तो हमारी है। हमने अैसे कअी तूफान देखे हैं।' किन्तु

देखते ही देखते मामला इतना बढ़ गया कि कप्तानका भी मुंह उतर गया। वह कहने लगा: 'भाइयो, रोनेसे क्या फायदा? इन्सानको एक बार मरना तो है ही। फिर वह मौत बिस्तरमें आये या घोड़े पर, शिकारमें आये या समुद्रमें। आप देख ही रहे हैं कि हम सब तरहकी कोशिश कर रहे हैं। किन्तु इन्सानके हाथमें क्या है? मालिक जो चाहे वही होता है।' मैं उसके मुंहकी ओर टकटकी लगाकर देख रहा था। यात्राके प्रारंभमें जो आदमी गाजरकी तरह लाल-लाल था, वही अब अरवीके पत्तोंकी तरह हरा-हरा हो गया था!

मैं उस समय बिलकुल बालक था। किन्तु गंभीर अवसर पर बालक भी सच्ची स्थितिको समझ लेता है। पल पल पर मैं स्थानभ्रष्ट हो रहा था। अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर मैं बड़ी मुश्किलसे अपने स्थानको संभाले हुअे था। हमारा सारा सामान अेक ओर पड़ा था। किन्तु उसकी ओर देखता ही कौन? लेकिन पूजाकी देव-मूर्तियां और नारियल बेंतकी जिस 'सांवळी'में रखे हुअे थे, उसे मैं अपनी गोदमें लेकर बैठना नहीं भूला था।

मेरे मनमें उस समय कैसे कैसे विचार आ रहे थे! वह काल था मेरी मुग्ध भक्तिका। रोज सुबह दो-दो घंटे तो मेरा भजन चलता था। मेरा जनेऊ नहीं हुआ था। इसलिअे संध्या-पूजा तो कैसे की जाती? फिर भी पिताश्री जब पूजामें बैठते, तब पास बैठकर उनकी मदद करनेमें मुझे खूब आनंद आता। मनमें आया, आज यदि डूबना ही भाग्यमें बदा हो, तो देवताओंकी यह 'सांवळी' छातीसे चिपटाकर ही डूबूंगा। दूसरे ही क्षण मनमें विचार आया, मांके देखते ही लौंचमें से पानीमें लुढ़क जाऊंगा तो मांकी क्या दशा होगी? यह विचार ही इतना असह्य मालूम हुआ कि मेरी सांस रुंध गअी। सीनेमें इस तरह दर्द होने लगा, मानो पत्थरकी चोट लगी हो। मैंने ईश्वरसे प्रार्थना की कि 'हे भगवान्, यदि डुबाना ही हो तो इतना करो कि 'आअी' और मैं अेक-दूसरेको भुजाओंमें लेकर डूबें।'

हरेक बालककी दृष्टिमें उसके पिता तो मानो धैर्यके मेरु होते हैं। बालकका विश्वास होता है कि आकाश भले टूटे, किन्तु

पिताका धैर्य नहीं टूट सकता। इसलिअे जब अैसे अवसर पर बालक अपने पिताको भी दिङ्मूढ बना हुआ, घबड़ाया हुआ देखता है, तब वह व्याकुल हो अुठता है। मैं तूफानसे इतना नहीं डरा था, बरसातसे भी इतना नहीं डरा था, 'आदमकी बू आ रही है, मैं अुसे खाअूंगी' अैसा कहते हुअे मुंह फाड़कर आनेवाली लहरोंसे भी इतना नहीं डरा था, जितना पिताजीका परेशान चेहरा देखकर तथा अुनकी रुंधी हुअी आवाज सुनकर डर गया।

हरेक आदमी कप्तानसे पूछता, 'हम कितनी दूर आ गये हैं? अभी कितना फासला बाकी है?' चारों ओर जहां भी नजर डालते वहां बारिश, आंधी और तरंगोंका तांडव ही नजर आता! इतना पानी गिरा, किन्तु आकाश जरा भी नहीं खुला। मैंने कप्तानसे गिड़-गिड़ाकर कहा, 'लांचको कुछ किनारेकी ओर ले चलो न, जिससे यदि वह डूब ही गअी तो भी चंद लोग तो किनारे तक तैरकर जा सकेंगे!' वह अुत्साह-हीन हास्यके साथ बोला, 'कैसा बेवकूफ है यह लड़का! किनारेसे जितने दूर हैं, अुतने ही सुरक्षित हैं। जरा भी पास गये तो शिलाओंसे टकराकर चकनाचूर हो जायेंगे। आज तो जानबूझ कर हम किनारेसे दूर रह रहे हैं। स्टीमर तक पहुंच गये कि गंगा नहाये समझो। आज दूसरा अिलाज ही नहीं है।'

मैंने अिससे पहले कभी बड़ी अुम्रके लोगोंको अेक-दूसरेसे गले लगकर रोते नहीं देखा था। वह दृश्य आज अुस नावमें देखा। अुसमें स्त्री-पुरुष अेक-दूसरेको भुजाओंमें लेकर फूट फूटकर रो रहे थे। दो-तीन बच्चोंवाली अेक मां अपने सब बच्चोंको अेक ही साथ गोदमें लेनेकी कोशिश कर रही थी। केवल पांच-पचीस जवांमर्द जीतोड़ मेहनत करके समुद्रके साथ अ-समान युद्ध कर रहे थे। तूफान इतना बढ़ गया और स्टीमलांच तथा नाव इतनी अधिक डोलने लगी कि लोग डरके मारे रोना तक भूल गये। मृत्युकी अेक काली छाया सर्वत्र फैल गयी। होशमें थे सिर्फ नावके बहादुर नौजवान और काली-काली वर्दी पहने हुअे स्टीमलांचके खलासी। हमारा कप्तान हुक्म छोड़ते छोड़ते कभी परेशान हो अुठता; किन्तु खलासी बराबर अेकाग्र मनसे, बिना परेशान

हुअे, अचूक ढंगसे अपना अपना काम कर रहे थे। कर्मयोग क्या अिससे भिन्न होगा?

आखिरकार तदड़ी बंदर आया। हम स्टीमरको देखते अुससे पहले ही स्टीमरने हमारी लाँचको देख लिया। स्टीमरने अपना भोंपू बजाया: 'भों . . .!' मानो सबकी करुण वाणी सुनकर अीश्वरने ही 'मा भैः' की आकाशवाणी की हो। हमारी स्टीमलाँचने अपनी तीक्ष्ण आवाजसे जवाब दिया। सबके दिलमें आशाके अंकुर फूटे। चारों ओर जय-जयकार हुआ।

अितनेमें, मानो अपना अंतिम प्रयत्न कर देखनेकी दृष्टिसे और हम सबके भाग्यके सामने हारनेसे पहले आखिरी लड़ाअी लड़ लेनेके लिअे अेक बड़ी लहर हमारी लाँच पर टूट पड़ी। और पिताजी जहां बैठे थे वहीं पर पीछेकी ओर गिर पड़े। मैंने कातर होकर चीख मारी। अब तक मैं रोया नहीं था। मानो अुसका पूरा बदला मुझे अेक ही चीखमें ले लेना था। दूसरे ही क्षण पिताजी अुठ बैठे और मुझे छातीसे लगाकर कहने लगे, 'दत्तू, डरे मत। मुझे कुछ भी नहीं हुआ है।'

हम स्टीमरके पास पहुंच गये। किन्तु बिलकुल पास जानेकी हिम्मत कौन करे? कस्टमवाली नावको तो अुन लोगोंने कभीका अलग कर दिया था, क्योंकि लाँच तथा बड़ी नावके झोंके वह सह नहीं सकती थी। अुसकी सुरक्षितता अलग होनेमें ही थी। स्टीमलाँचने दूरसे स्टीमरकी प्रदक्षिणा कर ली। मगर किसी भी तरह पास जानेका मौका नहीं मिला। तरंगोंके धक्केसे लाँच यदि स्टीमरके साथ टकरा जाती, तो बिलकुल आखिरी क्षणमें हम सब चकनाचूर हो जाते। आखिर अूपरसे रस्सा फेंका गया और हमारे खलासी लाँचकी छत पर खड़े होकर लम्बे लम्बे बांसोंसे स्टीमरकी दीवालोंसे होनेवाली लाँचकी टक्करको रोकने लगे। तरंगें अुसे स्टीमरकी ओर फेंकनेकी कोशिश करतीं, तो खलासी अपने लम्बे लम्बे बांसोंकी नोकोंकी ढाल बनाकर सारी मार अपने हाथों और पैरों पर झेल लेते। तिस पर भी अंतमें स्टीमरकी सीढ़ीसे स्टीमलाँचकी छत टकरा ही गअी, और कड़ड़ड़ आवाज करता हुआ अेक लम्बा पटिया टूटकर समुद्रमें जा गिरा।

में पास ही था, अिसलिअे स्टीमरमें चढ़नेकी पहली वारी मेरी ही आअी। चढ़नेकी काहेकी? गेंदकी तरह फेंके जानेकी! खुद कप्तान और दूसरा अेक खलासी लाँचके किनारे खड़े रहकर अेक अेक आदमीको पकड़कर स्टीमरकी सीढ़ीके सबसे नीचेके पाये पर खड़े खलासियोंके हाथमें फेंक देते थे। अिसमें खास सावधानी तो यह रखी जाती कि जब लाँच हिलोरोंके गड्ढेमें अुतर जाती तब वे लोग राह देखते और दूसरे ही क्षण जब वह तरंगोंके शिखर पर चढ़ जाती और सीढ़ी बिलकुल पास आ जाती, तब झट यात्रीको सौंप देते! दोनों ओरके खलासी यदि आदमीके हाथ पकड़ रखें तो दूसरे ही क्षण जब लाँच तरंगोंके गड्ढेमें अुतरे तब अुसकी बज्जियाँ अुड़ जायं! मैं अूपर सीढ़ी पर चढ़ा और मुड़कर देखने लगा कि माँ आती है या नहीं। जब अेक बिलकुल अजनबी मुसलमानको माँकी बाँहें पकड़ते देखा तो मेरा मन बेचैन हो अुठा। किन्तु वह समय था जान बचानेका। वहाँ कोमल भावनायें किस कामकी? थोड़ी ही देरमें पिताजी भी आ पहुंचे। देवताओंकी 'सांवळी' तो मैंने कंधे पर ही रखी थी। अूपर अच्छी जगह देखकर पिताजीने हमें बिठा दिया और वे सामान लाने गये। मैं श्रद्धालु लड़का अवश्य था; पर अुस समय मुझे पिताजी पर सचमुच गुस्सा आया। भाड़में जाये सारा सामान! जान खतरेमें डालनेके लिअे दुबारा क्यों जाते होंगे? किन्तु वे तो तीन बार हो आये। आखिरी बार आकर कहने लगे, 'गोकर्ण-महाबळेश्वरके प्रसादका नारियल पानीमें गिर गया।' अेक ही क्षणमें आअी और मैं दोनों बोल अुठे; आअीने कहा, 'अरे अरे!' और मैंने कहा, 'बस अितना ही न?'

लाँचवाले सब यात्रियोंके चढ़नेके बाद नाववालोंकी बारी आयी। वे सब चढ़े। अुसके बाद लाँच और नाव निशाचर भूतोंकी तरह चीखें मारती हुअी तदड़ीके किनारेकी ओर गअीं और किनारे पर तपश्चर्या करते बैठे हुअे यात्रियोंको थोड़े थोड़े करके लाने लगीं। तूफान अब कुछ ठंडा पड़ा था। मगर अंधेरी रात और अुछलती हुअी तरंगोंके बीच अुन लोगोंका जो हाल हुआ होगा, अुसका वर्णन कौन कर सकता है?

स्टीमर यात्रियोंसे ठसाठस भर गयी। जो भी बोलता, समुद्रमें डूबे हुअे अपने सामानकी बातें ही सुनाता। आखिर यात्री सब आ गये। मेहर मालिककी कि किसीकी जान न गयी।

स्टीमर आखिर छूटी और लोग अपनी अपनी पुरानी यात्राओंके अैसे ही खतरनाक संस्मरण अेक-दूसरेको सुनाकर आजका दुःख हलका करने लगे। बड़ी देर तक किसीको नींद नहीं आअी। मैं कब सोया, कारवारका बंदरगाह सुबह कब आया, और हम घर पर कब पहुंचे, आज कुछ भी याद नहीं है। किन्तु अुस दिनका तूफानका यह प्रसंग स्मृतिपट पर कितना ताजा है, मानो कल ही हुआ हो। सचमुच:

दुःखं सत्यं, सुखं मिथ्या; दुःखं जन्तोः परं धनम्।

अक्तूबर, १९२५

२३

भरतकी आंखोंसे

किनारे पर खड़े रहकर समुद्रकी शोभाको निहारनेमें हृदय आनंदसे भर जाता है। यह शोभा यदि किसी अूंचे स्थानसे निहारनेको मिले तब तो पूछना ही क्या? जहाजके अूपरके हिस्सेसे या देवगढ़ जैसे टापूके सिर परसे समुद्रका किनारे पर होनेवाला आक्रमण देखनेमें अेक अनोखा ही आनंद आता है। मनमें यह भाव अुत्पन्न होते ही कि हम समुद्रके राजा हैं और तरंगोंकी यह फौज हमारी ही ओरसे सामनेके भूमि-भागको पादाक्रान्त कर रही है, हमारे हृदयमें अेक प्रकारका अभिमान स्फुरित होने लगता है। ध्यानसे देखने पर मालूम होता है कि समुद्रका हरा-हरा या काला-काला पानी मस्तीमें आकर सफेद वालूके किनारे पर जोरोंसे आक्रमण करता है और आखिरी क्षणमें 'अजी, यह तो महज विनोद ही था' कहकर हंस पड़ता है। तब अुसके अिस मिथ्या-भाषण पर हम भी खिलखिला कर हंस पड़ते हैं।

समुद्र-किनारे रहनेवालोंको अिस तरहके दृश्य कभी भी देखनेको मिल जाते हैं। मगर समुद्र और बालुका-पट जहां अखंड जलक्रीड़ा करते हों, अुस दिशामें समकोणमें अूंचाअी पर खड़े रहकर बालूका यह जलविहार और तरंगोंका सिकता-विहार निहारनेका सौभाग्य यदि किसी दिन प्राप्त हो तो मनुष्य 'अद्य मे सफला यात्रा; धन्योऽहं अप्रसादतः।' क्यों नहीं गायेगा ?

सन् १८९५ में मैंने जिस गोकर्णकी यात्रा की थी और जिस गोकर्णके दर्शन मैंने श्री गंगाधरराव देशपांडेके साथ दस साल पहले किये थे, अुसी गोकर्णके पवित्र किनारे पर संगववेला* में समुद्रके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त होनेसे मैं आनन्द-विभोर हो गया था। गोकर्णका समुद्र-तट काफी विस्तृत और भव्य है। दाहिनी यानी अुत्तरकी ओर कारवारके पहाड़ और टापू धुंधले क्षितिज पर अस्पष्ट-से दिखाअी देते हैं; बायीं यानी दक्षिणकी ओर रामतीर्थका पहाड़ और अुस पर खड़ा भरतका छोटा-सा मंदिर दिखाअी देता है। और सामने अगाध अनंत सागर 'अमर होकर आओ' कहता हुआ अहोरात्र आमंत्रण देता है। अिस तरहका हृदयको अुन्मत्त करनेवाला दृश्य अेक बार देख लेने पर भला कभी भूला जा सकता है ? रामतीर्थकी पहाड़ी पर जाकर वहांके झरनेमें स्नान करनेका यदि संकल्प न किया होता, तो सागरके अिस भव्य दृश्यमें तैरते रहना ही मैंने पसंद किया होता। नारियलके बगीचों और खुरदरी शिलाओंको पार करके हम रामतीर्थ तक पहुंचे। वहांकी धाराके नीचे बैठकर नहानेका सात्त्विक जीवनानंद या स्नानानंद आपाद-मस्तक लेकर रामेश्वरके दर्शन किये। शांडिल्य महाराज नामक अेक साधुने असंख्य लोगोंमें अुत्साह प्रकट करके यहांके मंदिरका निर्माण मुफ्तमें करवा लिया था। यह मंदिर समुद्रमें घुसे हुअे अेक अुन्नत पहाड़ पर स्थित है। मंदिरकी अूंचाअी परसे बालूका पट और लहरोंका

*गायोंका दोहन करनेके बाद तथा गोशाला साफ करनेके बाद वनमें चरनेके लिअे अुन्हें अिकट्ठा किया जाता है, अुस समयको (सुबहके करीब नौ बजे) 'संगववेला' कहते हैं। यह शब्द वेदकालीन है।

पट जहां अेक-दूसरेका आलिंगन करके क्रीड़ा करते हैं, उसका मीलों तक फैला हुआ सौंदर्य हम देख सके। नारियलके दो-अेक वृक्षोंने किसी स्थान पर खड़े रहकर सागर-सिकता-मिलनके दृश्यका आनंद सेवन करनेकी बात तय की थी। अपनी डालियां हिलाकर उन्होंने हमसे कहा: 'आअिये, आअिये! बस यही स्थान अच्छा है। यहांसे सिकता-सागरके मिलनकी रेखा नजरके सामने सीधी दीख पड़ती है।'

यहांसे मैंने देखा कि पानीकी तरंगोंको सागरके गहरे पानीका सहारा था। लेकिन बालूके पटको सहारा कौन दे? कोअी पहाड़ी नजदीकमें नहीं थी, अिसलिअे नारियल और सरो जैसे पेड़ोंने यह जिम्मेदारी अपने सिर पर अुठा ली थी। ये अूंचे पेड़ और सागरका गहरा पानी—दोनोंके हरे रंगमें फर्क तो जरूर था; किन्तु अुनके कार्यमें कोअी फर्क नहीं मालूम होता था। पेड़ अपने पांवोंके नीचेकी बालूको आशीर्वाद देते और समुद्रका गहरा पानी लहरोंको आगे बढ़नेके लिअे प्रोत्साहन देता। यह दृश्य देखकर भला कौन तृप्त होगा?

किसी दृश्यसे मनुष्य तृप्ति अनुभव नहीं करता, अिसलिअे अेक जगह खड़े रहकर अुसीका पान करते रहना भी मनुष्यको पसन्द नहीं आता। मैंने देखा कि रामतीर्थके झरनेकी और रामेश्वरके मंदिरकी मानो रखवाली करनेके लिअे श्रीरामचंद्रजीके प्रवंचक प्रतिनिधि भरत यहांकी पहाड़ीके अूपर खड़े हैं। अुनके दर्शन तो करने ही चाहिये। और बन सके तो योग्य अूंचाअी पर जाकर अुनकी दृष्टिसे भी सागरको देखना चाहिये। बिना अूंचे चढ़े विशाल दृष्टि कैसे प्राप्त हो? सीढ़ियोंने निमंत्रण दिया, अिसलिअे नाचता और कूदता या अुड़ता हुआ मैं भरतके मंदिर तक पहुंच गया, मानो मुझे पंख लग गये हों। वहां छोटे शुभ्रकाय भरतजी सुंदर पीतांबर पहनकर समुद्र-दर्शन कर रहे थे।

मेरी दृष्टिसे भरतकी मूर्तिके आसपास मंदिर बनाना ही नहीं चाहिये था। अुन्हें ताप, पवन और बरसातकी तपश्चर्या ही करने देना चाहिये था। समुद्र परसे आनेवाले शीतल पवनमें सूर्यका ताप वे आसानीसे सह लेते। और लोग यह कैसे भूल गये कि भरत आखिर सूर्यवंशी राजपुत्र थे? वायुपुत्र हनुमानका और सूर्यवंशी राघवोंका

स्मरण करते हुअे हम वहां काफी देर तक खड़े रहे। हृदयमें भक्ति-भाव अुमड़ रहा था और सामने समुद्रके पानीमें ज्वार चढ़ रही थी।

अुस दिनके अुस भव्य और पावन दर्शनके लिअे रामतीर्थका और दिक्‌पाल भरत महाराजका मैं सदा आभारी रहूंगा।

मअी, १९४७

२४

वेळगंगा — सीताका स्नान-स्थान

वेरूळग्रामका हरा कुंड देखकर लौटते समय रास्तेमें वेळगंगाका झरना देखा था। झरना अितना छोटा था कि अुसे नाला भी नहीं कह सकते। किन्तु अुसे 'वेळगंगा'का प्रतिष्ठित नाम प्राप्त हुआ है। नदीका नाम सुनने पर अुसका अुद्‌गम कहां है, अिसकी खोज किये बिना क्या रहा जा सकता है? किन्तु हम तो गुफाओंकी अद्‌भुत कारीगरीमें मस्त होकर विचर रहे थे; अिसलिअे हमें वेळगंगाका स्मरण तक नहीं हुआ। 'अवीहवेय' कारीगरीवाली कैलासकी गुफाको देखकर हम जैन तीर्थंकरोंकी अिन्द्रसभाकी ओर बढ़ रहे थे। अितनेमें श्री अच्युत देश-पांडेने कहा, 'वेळगंगाका अुद्‌गम यहीं है।' नाम सुनते ही वेळगंगा दिमाग पर सवार हुअी!

अिन्द्रसभासे लौटते समय हम २९ वीं गुफामें जा पहुंचे। अनेक गुफाओंमें घूमनेके कारण काफी थकावट मालूम हो रही थी। सारे बदनकी हड्डियोंमें दर्द होने लगा था। ठीक अुसी समय बंबअीके निकट स्थित घारापुरीकी अेलिफंटा गुफाका स्मरण करानेवाली यहांकी २९ वीं गुफाने भव्यताका कमाल कर दिखाया। यह कहना मुश्किल था कि घूम-घूम-कर हमारे पैर ज्यादा थके थे या देख-देखकर हमारी आंखें ज्यादा थकी थीं। हम निश्चय कर ही रहे थे कि अब नाश्तेके साथ थकावट अुतारनेके बाद ही आगे जायंगे, अितनेमें सीताके स्नान-स्थानका स्मरण हुआ।

अयोध्यासे जनस्थान तककी यात्रा सीताने पैदल की थी। वहांसे रावण उसे उठाकर लंका ले गया था। दुःखावेगमें सीताने दक्षिणका यह प्रदेश शायद देखा भी न होगा। किन्तु रामने रावणका वध करके उसीके पुष्पक विमानमें बैठकर जब लंकासे अयोध्या तककी हवाई यात्रा की, तब सीतामाताको नीचेकी प्राकृतिक शोभा देखकर कितना आनंद हुआ होगा! रामायणमें वाल्मीकिने प्राकृतिक सौंदर्यके प्रति सीताके पक्षपातका वर्णन जहां-तहां किया है। सृष्टि-सौंदर्य देखकर सीताको कितना अलौकिक आनंद होता था, उसका वर्णन भवभूतिने भी किया है। सीताने यदि भारतके ललित और भव्य, सुन्दर और पवित्र स्थानोंका वर्णन स्वयं लिखा होता, तो मैं समझता हूं कि उसके बाद संस्कृतके किसी भी कविने सृष्टि-वर्णनकी एक पंक्ति भी लिखनेका साहस न किया होता।

सीतामाता पहाड़ोंको देखकर आनंदित होती, नदियोंको अपने आनंदाश्रुओंसे नहलाती, हाथीके बच्चोंको पुचकारती, सारस-युगलोंको आशीर्वाद देती, सुगंधित फूलोंके सौरभसे उन्मत्त होती और प्रत्येक स्थान पर सारे आनंदको राममय बनाकर अपने-आपको भूल भी जाती। लंकामें राम-विरहसे झूरनेवाली सीता भी वहांकी एक नदीसे एकरूप हुए बिना न रह सकी। आज भी लंकामें 'सीतावाका' वर्षा-ऋतुमें अपने दोनों किनारों परसे बह निकलती है और जितने खेतोंको डुबाती है उन सबको सुवर्णमय बना देती है। सीताका जन्म ही जमीनसे हुआ था। भारतभूमिकी भक्तिके रूपमें आज भी वह हमें दर्शन देती है।

सीताको लगा होगा कि गोदावरीके विशाल प्रदेशमें चल-चलकर अब हम थक गये हैं। लक्ष्मणको वनफल लानेके लिए भेज देंगे। और राम तो धनुष लेकर पहरा देते ही रहेंगे। तब इस चंद्राकार करारके नीचे वेळगंगाका आतिथ्य स्वीकार करके थोड़ा-सा जलविहार क्यों न कर लिया जाय?

* * *

पहले तो हमारी वृत्ति किसी अनुकूल जगहसे वेळगंगाके सुन्दर प्रपातका सिर्फ दर्शन करनेकी ही थी। अिसलिअे २९ नंबरकी गुफामें, अुसकी बाअीं ओर और हमारी दाहिनी ओर, जो झरोखा दिखाअी देता था वहां हम गये। मनमें यह चोरी तो अवश्य थी कि यदि नीचे जाया जा सकेगा, तो वहांका आनंद लूटनेमें हम चूकेंगे नहीं।

झरोखेसे देखा तो अेक पतला-सा प्रपात पवनके साथ खेलता हुआ नीचे अुतर रहा है और अपनी अंगुलियां हिलाकर हमें चुपचाप न्योता दे रहा है। मैं विचार करने लगा कि नीचे अुतरा जा सकेगा या नहीं? अितना समय खर्च करना अुचित होगा या नहीं? साथियोंको मेरी यह स्वच्छंदता रुचेगी या नहीं? मुझको अिस प्रकार अुलझनमें पड़ा हुआ देखकर घाटीमें दौड़-धाम करनेवाले नन्हें नन्हें पक्षी तिरस्कारसे हंस पड़े: "देखो तो, कितना अरसिक मनुष्य है! प्रपात अितने प्रेमसे न्योता दे रहा है और यह विचारमें डूबा हुआ है! अिन मानवोंमें काव्य लिखनेवाले कअी हैं, किन्तु काव्यका अनुभव करनेवाले बिरले ही होते हैं। और यह सामनेवाला आदमी अपने-आपको प्रकृतिका बालक कहलवाता है। आंखें फाड़-फाड़कर प्रपातकी ओर देख रहा है। नीचेका स्फटिक जैसा निर्मल पानी देखकर अिसका हृदय भी अुमड़ पड़ता है। किन्तु यह संकल्प नहीं कर पाता। अिसके पैर नहीं अुठते। अिसे किसीने शाप तो दिया नहीं कि 'तू पत्थर बनकर पड़ा रहेगा।' फिर भी यह पत्थरसे चिपका हुआ है!"

पक्षियोंकी यह निर्भर्त्सना सुनकर मैं लज्जित हुआ, और होशमें आनेके पहले ही मेरे पैर सीढ़ियां अुतरने लगे। मैं सोच रहा था कि दाहिनी ओर वाले गड्ढेको लांघकर अुस पारसे प्रपातके पास जाया जाय, या बाअीं ओरसे कगारके पीछेसे होकर २८ नंबरकी छोटी-सी गुफा तक पहुंचा जाय और वहांसे प्रपातके जलकणोंका आनन्द लिया जाय? दाहिनी ओरका रास्ता लम्बा और सुरक्षित था; जब कि बाअीं ओरवाले रास्तेमें काव्य था। नहानेकी तैयारी करके ही मैं अुतरा था, अिसलिअे भीगनेका तो सवाल ही नहीं था।

२८ नंबरकी छोटी-सी गुफामें अेक दो मूर्तियां हैं; किन्तु अुस गुफाके अंदर विशेष काव्य नहीं है। काव्य तो बाहर ही बिखरा हुआ है। जिस गुफामें बैठकर यदि कोअी बाहर देखे, तो पानीके पतले परदेमें से अुसे अपने सामनेकी सृष्टिका जीवनमय विस्तार दिखाअी देगा। प्रपात तो वहां गिरता है, किन्तु वह जितना घना नहीं है कि आरपार कुछ दिखाअी ही न दे। यह गुफा पानीके परदेके पीछे ढंकी हुअी रहने पर भी बिलकुल भीगती नहीं, क्योंकि खिलाड़ी पवन भी पानीके तुषारोंको गुफाके अंदर नहीं ले जा सकता। गुफाके जरा बाहर आयें तो फिर यह शिकायत मत कीजिये कि पवनने आपको गीला क्यों कर दिया।

हम जिस गुफासे नीचे अुतरे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पहाड़ी चतुष्पाद बनकर ही हमें अुतरना पड़ा। प्रपात जिस पत्थर पर गिरता है, वहीं मैंने अपना आसन जमाया। सौ फुटकी अूंचाअीसे जो पानी गिरता है, वह केवल गुदगुदा कर ही संतोष नहीं मानता। अुसने पहले सिर पर थप्पड़ें मारना शुरू किया; बादमें कंधे पर चपतें जमाअीं, फिर पीठ पर रप् रप् रप् रप् चपतें बरसने लगीं और यात्राकी सारी थकावट अुतरने लगी। अक्सर हम पहले मालिश करा कर बादमें नहाते हैं। यहां तो मालिश ही स्नान था और स्नान ही मालिश! सीतामाताने यहां अपने बालोंको खोलकर पानीमें साफ-सुथरा कर लिया होगा।

किन्तु यह क्या? मैं घुमक्कड़ यात्री हूं या दुनियाका बादशाह हूं? मेरी पलथीके नीचे यह रत्नखचित आसन कहांसे आ गया? पानीके तुषार चारों ओर अैसे फैल रहे हैं, मानो मोतियोंकी माला हो! और आसनके नीचे दो सुन्दर अिंद्रधनुष मुझे सम्राट्की प्रतिष्ठा प्रदान कर रहे हैं! अलकापुरीके कुबेरसे मेरा वैभव किस बातमें कम है? अिंद्रधनुषकी दुहरी किनारवाले, चांदीके धागोंके आसन पर मैं बैठा हूं और मोतियोंकी मालाका अुत्तरीय ओढ़कर यहां आनंद कर रहा हूं। माथे पर सूर्यनारायणका चमकता हुआ छत्र है और चारों ओर ये अुड़ते हुअे द्विजगण जगन्नायके स्तोत्र गा रहे हैं!

बदन साफ करनेके लिअे नहीं, बल्कि व्यायामका आनंद मनानेके लिअे पत्थर पर सवार होकर प्रपातके नीचे मैंने अपना सारा बदन मला। स्नान-पानका आनंद लूटा और रामरक्षा-स्तोत्रका स्मरण किया। सीतामैयाने जो स्थान पसंद किया, वहां रामरक्षा-स्तोत्रके गायनका ही स्फुरण होना स्वाभाविक था। और सिरसे लेकर पैर तकके सारे गात्रोंको मलकर साफ करते समय 'शिरो मे राघवः पातु, भालं दशरथात्मजः' आदि श्लोकोंको याद करनेका यह न्यास कितना अुचित था!

* * *

स्वर्गको गये हुअे लोग भी यदि अंतमें मृत्युलोकमें वापस आते हैं, तो फिर अिस प्रपात-स्नानका नशा चढ़ने पर भी अुसमें से व्युत्थान करके फिर गद्यमय जीवनमें प्रवेश करनेकी आवश्यकता मुझे मालूम हुअी, अिसमें भला आश्चर्य कैसा? अिसलिअे आखिर अितने सारे आनंदका स्वेच्छासे त्याग करनेकी अपनी संयम-शक्तिको सराहता हुआ मैं वापस लौटा। और नये कपड़े पहनकर नाश्तेके लिअे तैयार हुआ। नाश्ता क्या — वह तो कला-निरीक्षणके लिअे की हुअी दोपहर तककी तपस्या और प्रपात-स्नानकी शांतिके बादका अमृत-भोजन तथा वेळगंगाका कृपा-प्रसाद ही था!

गुफामें स्थिर होकर खड़े हुअे द्वारपालोंके यदि आंखें होतीं, तो अुन्हें जरूर हमसे अीर्ष्या हुअी होती!

सितम्बर, १९४०

२५
कृषक नदी घटप्रभा

घटप्रभा और मलप्रभा हमारी ओरके कर्णाटककी प्रमुख नदियां हैं। वे स्वभावसे किसान हैं। वे जहां जाती हैं वहां खेती करती हैं, जमीनको खाद देती हैं, पानी देती हैं और मेहनत करनेवाले लोगोंको समृद्धि देती हैं। अिसमें भी गोकाकके पास अेक बड़ा बांध बनाकर मनुष्यने अिस नदीकी शक्ति बढ़ा दी है। जहां नदीके पानीकी पहुंच न थी, वहां अिस बांधके कारण वह पहुंच गयी। घटप्रभाका नाम लेते ही गोकाकके पासका लंबा बांध ध्यानमें जरूर आयेगा। बड़ी बड़ी नदियां जहां-तहांसे पंक खींच-खींचकर ले जाती हैं, जब कि अैसी छोटी नदियां, बन सके वहांसे, थोड़ा थोड़ा करके अच्छा कीमती पंक किसानोंको अपने पानीके साथ मुफ्तमें देकर अपने बालकोंका पालन करती हैं। सचमुच घटप्रभा कृषक जातिकी नदी है।

बेलगामसे अितना नजदीक होते हुअे भी गोकाकके पासका घटप्रभाका प्रपात अभी देखना बाकी ही है।

१९२६–'२७

२६
कश्मीरकी दूधगंगा

श्रीनगरमें भला पानीकी कमी कैसे हो?

सतीसर नामक पौराणिक सरोवरको तोड़कर ही तो कश्मीरका प्रदेश बना हुआ है। झेलम नदी मानो अिस अुपत्यकाकी लंबाअी और चौड़ाअीको नापती हुअी सर्पाकारमें बहती है। अिसके अलावा जहां नजर डालें वहां कमल, सिंघाड़े तथा किस्म किस्मकी साग-सब्जी पैदा करनेवाले 'दल' (सरोवर) फैले हुअे दीख पड़ते हैं। जिस वर्ष जल-प्रलय न हो वही सौभाग्यका वर्ष समझ लीजिये। अैसे प्रदेशमें गाड़ीके संकरे रास्ते जैसे छोटे प्रवाहको भला पूछे ही कौन?

फिर भी अैसे अेक प्रवाहको कश्मीरमें भी प्रतिष्ठा मिली है।

अिसमें पानी अधिक चाहे न हो, किन्तु यह प्रवाह अखंड रूपसे वहता है। न कम होता है, न वढ़ता है। अिसका पानी सफेद रंगका है, अिसीलिअे शायद अिसका नाम दूधगंगा रखा गया होगा। जिस नारायणाश्रममें हम रहते थे, अुसके नजदीकसे ही यह दूधगंगा वहती थी। अेक लंबी लकड़ी डालकर अुस पर पुल वनाया गया था। नहानेके लिअे दूधगंगा वहुत अनुकूल है। अुसमें खड़े खड़े नहाया जा सकता है, और तैरना हो तो थोड़ा तैरा भी जा सकता है। वुआ वीमार थे तव वरतन मांजनेमें, कपड़े धोनेमें और अन्य कामोंमें दूधगंगाकी मुझे काफी मदद मिलती थी। अुस अपरिचित प्रदेशमें जव हम दोनों वीमार पड़े, तव यदि दूधगंगाकी मदद हमें न मिलती तो हमारी क्या दशा हुअी होती?

कृतज्ञताके कारण दूधगंगाका माहात्म्य खोजनेकी अिच्छा हुअी। सार्वजनिक पुस्तकालयमें जाकर मैंने अनेक पुस्तकें ढूंढ़ निकालीं। यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि अितनी छोटी दूधगंगा वहुत दूरसे आती है और दूर दूर तक जाती है। किस ऋषिने दूधगंगाको जन्म दिया, किस-किसने अुसके किनारे तपस्या की आदि सव जानकारी मैंने खोज करके प्राप्त कर ली। अितिहासकी अनंत घटनाओंकी तरह यह जानकारी भी विस्मृतिके प्रवाहमें फिरसे वह गअी, और असली कृतज्ञता ही केवल शेष रही है।

अितना याद है कि रोज सुवह मठके साधु स्नान करनेके लिअे नदी पर अिकट्ठा होते थे। और रातको जव सव सो जाते तव मैं दूधगंगाके किनारे वैठकर आकाशके ध्रुवका ध्यान करता था। मेरा ध्यान भी अधिक न चला, क्योंकि कश्मीरमें ध्रुव अितना अूंचा होता है कि अुसकी ओर देखनेमें गर्दन दर्द करने लगती है। वहां सप्तर्षिमें से अरुंधती-सहित वसिष्ठको सीधा सिर पर विराजमान देखकर कितना आश्चर्य मालूम होता था!

कश्मीर-तल-वाहिनी सती-कन्या दूधगंगाको मेरा प्रणाम।

१९२६–'२७

२७

स्वर्धुनी वितस्ता

'संसारमें अगर कहीं स्वर्ग है,
तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।'

सम्राट् जहांगीरने झेलम नदीके अुद्गमको देखकर अूपरका वचन कहा था। अुसका यह वचन वहांके अष्टकोनी तालावके पास पत्थरमें खोद दिया गया है। सचमुच यह स्थान भू-स्वर्गके पदके योग्य ही है। वेदकालमें अिस नदीका नाम था वितस्ता।

जहां अंग-अंगमें ओर रोम-रोममें प्राण फूंकता हुआ ठंडा मीठा पवन वहता है, जहां वनश्री अपने यौवनका पूरा-पूरा अुन्माद प्रकट करती है, जहांके पहाड़ अपने सौंदर्यसे मनमें संदेह पैदा करते हैं कि ये पहाड़ हैं या रंगभूमिका परदा, और जहांकी शांति चैतन्यसे भरी हुअी है—वहींसे झेलमका अुद्गम हुआ है। जहांगीरने अिस अुद्गम-स्थान पर अेक अष्टकोनी तालाव वनवाया है। और अंदरका पानी? वह तो मानो नीलमणिका अमृत-रस हो! देखते ही मनमें आता है कि यहां नीलमें रंगे कपड़े किसीने धो डाले हैं। किन्तु अितना स्वच्छ और मीठा पानी अन्यत्र कहां मिलेगा?

अिस तालावके अेक ओरसे जो सुन्दर, सीधी नहर वहती है वही है हमारी वितस्ता-झेलम। अिस स्वर्गका आनंद लूटनेके लिअे मानो गंधर्व मछलियोंका रूप धारण करके अिस तालाव और नहरमें नहानेके लिअे अुतरे हैं। अैसी अुसकी शोभा है। अिस प्रदेशमें मछलियोंको पकड़नेकी यदि सख्त मनाही न होती तो भला अिस सौंदर्यकी क्या दशा हो जाती? मैंने अेक वड़ा वरतन नहरमें डुवो दिया तो अुसमें नहरकी पांच-सात मछलियां आ गअीं—अितनी भोली हैं वे। मैंने अुनको फिरसे नहरमें छोड़ दिया।

अिस स्थानको वेरीनाग कहते हैं। यहांसे आगे खनवल नामक अेक स्थान आता है। यहांसे झेलम नदी नावें चलाअी जा सकें अितनी वड़ी हो जाती है। खनवलके पास ही अनंतनाग नामक अेक सुन्दर तालाव

है। यहांसे आगे सारी जमीन समतल है। कश्मीरकी सारी घाटी अिसी तरह चारों ओर सपाट है।

झेलमको सीधा चलनेकी सूझती ही नहीं। मोड़ लेती लेती मंद गतिसे वह आगे बढ़ती है। अुसके किनारे अेक बड़ी वैभवशाली संस्कृतिका विकास हुआ और अस्त भी हुआ। परन्तु वितस्ता आज भी जैसीको तैसी ही बहती है।

खनबलसे आगे वीजब्यारा नामक अेक स्थान आता है। वहां चिनारका अेक खास पेड़ हमने देखा। नौ आदमियोंने हाथ फैलाकर अुसको आलिंगन किया और अुसके तनेको नापा। ठीक चौपन फुटका घेरा था!

वीजब्याराके मंदिरके बारेमें हमने यहां अेक मजेदार दंतकथा सुनी, जो अंग्रेज लेखकोंने भी लिख रखी है।

धर्मांध मुसलमान जब यह मंदिर तोड़नेके लिअे आये, तब यहांके पुजारियोंने अुनका न तो कोअी विरोध किया, न धन देकर मन्दिरको बचानेकी बात की। अुन्होंने कहा, "आअिये, आअिये, मंदिरको तोड़ डालिये। हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि यवन आयेंगे और मूर्तिका नाश करके मंदिरको तोड़ डालेंगे। हमारे शास्त्रोंमें जो लिखा है, वह झूठा होनेवाला नहीं है।" बुतशिकन गाजीको लगा, "अिनका मंदिर यदि तोड़ेंगे तो अिन काफिरोंके शास्त्र सच्चे साबित होंगे। अिससे बेहतर तो यह है कि यह अेक मंदिर छोड़ दिया जाय।" पता नहीं यह कहानी कहां तक सच है, किन्तु यह हमारे यहांके बनियेकी कहानी जैसी चतुराअीकी कहानी जरूर है। और यह बात भी सही है कि वीजब्याराका मंदिर मुसलमानोंके आक्रमण या अमलके दरम्यान भी टूटा नहीं।

यहांसे कुछ दूरी पर अनंतपुर नामक अेक प्राचीन शहर जमीनके नीचे दबकर छोटी पहाड़ी बन गया है। खेतोंमें खोदते समय पुरानी सुन्दर कारीगरी, कअी प्राचीन कोठियां और कोयला बना हुआ चावल यहां मिला है, जिन्हें मैंने खुद देखा है।

नदी अिधर अुधर घूमती-घामती अितनी धीरेसे बहती है कि पानीका प्रवाह मालूम ही नहीं होता। नदीके प्रवाहकी विरुद्ध दिशामें

जब जाना होता है तब पतवार चलानेके बजाय किश्तीकी नाकको काफी लंबी डोरी बांधकर अेक या दो आदमी किनारे परसे खींचते चलते हैं। किश्ती प्रवाहमें ही चले, किनारे पर न आये, अिसलिअे नावमें बैठा हुआ नांझी हाथमें रही पतवारको टेढ़ा पकड़ रखता है।

कश्मीरी शालोंके कोने पर आमके या काजूके आकारके जो बेलबूटे होते हैं वे यहांकी कारीगरीकी विशेषता हैं। कहते हैं कि झेलमके मोड़ देखकर यहांके कारीगरोंको ये बेलबूटे सूझे। अेक दफा हमने नदीमें अेक बंदरसे चौदह मीलकी यात्रा की। अितनेमें पिछले बंदर पर जरा देरीसे आया हुआ यात्री पैदल चलकर हमसे आ मिला। अुसे केवल ढाओी मील ही चलना पड़ा। अितने मोड़ लेती हुअी यह नदी बहती है।

अिन मोड़ोंके कारण प्रवाहका जोर टूट जाता है और नदीका पात्र भिसता नहीं। जब बाढ़ आती है तभी सिर्फ 'सर्वतः संप्लुतोदके' जैसी स्थिति हो जाती है। यहांके प्राचीन अिंजीनियर राजाओंने बाढ़के वक्त नदीको काबूमें रखनेके लिअे वैसे अनेक मोड़ तथा नहरें खोद रखी हैं।

यह अिलाज अितना असरकार है कि आज भी अुसीका अनुकरण करना पड़ता है। अेक बड़ी किश्तीमें से सूअरके दांतके जैसा अेक बड़ा राक्षसी हल नदीके तलकी जमीनको चीरता हुआ जाता है और अंदरके कीचड़को बिजलीके पंप द्वारा बाहर फेंकता जाता है। यह सारी प्रवृत्ति 'वराहमूलम्' (आजकलका बारामूल्ला) क्षेत्रमें देखनेको मिलती है।

बारामूल्ला कश्मीरकी घाटीका अुस पारका सिरा है। वहांसे आगे झेलम जोरोंसे दौड़ती है।

अिस सारे प्रदेशके बीचोंबीच कश्मीरकी राजधानी है। श्रीनगर शहर नदीके दोनों किनारों पर बसा हुआ है। नदीके अूपर थोड़े थोड़े अंतर पर सात पुल (कदल) बनाये गये हैं। अिसके सिवा, दोनों ओरसे शहरके अंदर तक नदीमें से नहरें खोदी हुअी होनेके कारण अनायास ही

प्रवाही शांत जलमार्ग मिलते हैं। नदीका मुख्य प्रवाह ही राजमार्ग है। वाकीकी नहरें अिस राजमार्गसे आकर मिलनेवाले गौण रास्ते हैं। खुश्की रास्तों पर जिस प्रकार गाड़ियां दौड़ती हैं, अुसी प्रकार यहां लम्बी और सकरी 'शिकारा' किश्तियां तीरकी तरह दौड़ती हैं। नदीमें किश्तियोंकी चाहे जितनी धूमधाम हो, वह विना आवाजकी ही होती है।

दोपहरको जब महाराजाके मंदिरकी पूजा पूरी होती है और अगले दिनके निर्माल्य फूल नदीके पाट पर फेंक दिये जाते हैं, तब ये फूल करीब आधे मील तक आहिस्ता आहिस्ता लम्बी हारमें वहते हुअे बड़े सुन्दर दिखाअी देते हैं।

और अिस नदीके किनारे चलनेवाली प्रवृत्ति भी किस प्रकारकी है! कहीं शतरंजियां वुनी जाती हैं तो कहीं अप्रतिम गालीचे। अेक जगह अखरोटकी लकड़ी पर सुंदर कारीगिरीका काम चल रहा है, तो दूसरी जगह रेशमका कारखाना भद्दे कीड़ोंको अुवालकर सुंदर मुलायम रेशम बना रहा है। चीन, तिब्बत तथा समरकंद और वुखाराके सौदागर यहां महीनों तक पड़ाव डाले पड़े रहते हैं और होशियार पंजाबी अुनसे तिजारत करनेमें मशगूल रहते हैं। जहां देखें वहां हाथोंसे ज्यादा लम्बी बांहवाले कोट पहने हुअे लोग घूमते नजर आते हैं।

आगे जाकर यही झेलम हिन्दुस्तानके वड़ेसे बड़े सरोवर वुलरमें जा गिरती है और अुसमें विलीन होकर गुप्त रूपसे लम्बी यात्रा करके दूसरे छोर पर बाहर निकलती है और बारामुल्लाकी ओर जाती है। वहां अिस नदीमें से अेक कृत्रिम नहर पैदा करके जो विजली तैयार की जाती है वही कश्मीरके राज्यको पर्याप्त शक्ति देती है। अवटाबादके नजदीक यह नदी दिशा बदलती है और दौड़ती हुअी आगे बढ़ती है। झेलमकी सारी घाटी अपने सौंदर्यके लिअे प्रख्यात है।

लोककथा कहती है कि अकबर बादशाह अिस घाटीके सौंदर्यके नशेमें अूपरसे नीचे कूद पड़े थे। यह कवि-कल्पना भले हो, किन्तु घाटीको देखने पर अिस तरहका नशा चढ़ना संभव तो अवश्य जान पड़ता है। अैसी लोककथाअें किसी राजाके गौरवका वर्णन करनेकी अपेक्षा

नदीके मोहक सौंदर्यकी तारीफ करनेके लिअे ही अर्थवादके तौर पर गढ़ ली जाती हैं।

जब हिन्दुस्तानका सच्चा अितिहास लिखा जायगा, तब अुसमें बड़ी बड़ी नदियोंके अनुसार देशके अलग अलग विभाग बनाये जायंगे। अैसे अितिहासमें झेलमकी स्वर्गीय संस्कृतिका विभाग मामूली नहीं होगा। सचमुच झेलमको स्वर्वुनीका ही नाम शोभा देता है।

१९२६–'२७

२८

सेवाव्रता रावी

सिन्धु नदीको करभार देनेवाली पांच नदियोंमें वितस्ता — झेलम — और शुतुद्री दो ही महत्त्वकी मानी जाती हैं। बाकीकी नदियां अपने जिम्मे आया हुआ काम नम्रताके साथ पूरा करती हैं। जिस प्रकार किसी श्रेष्ठ पुरुषसे मिलनेके लिअे शिष्ट-मंडल जाता है, अुसी प्रकार ये नदियां धीरे धीरे साथ मिलकर आखिर सिन्धुसे जा मिलती हैं। व्यास सतलजसे मिलती है। चिनाब झेलमसे मिलती है और रावी अिन दोनोंसे मिलती है। मुलतानके पास तीन नदियोंका पानी लाती हुअी झेलम हिन्दुस्तानके अुस पारसे आनेवाली सतलजसे मिलती है। और अन्तमें अिन सबोंका बना हुआ पंचनद सिन्धुमें मिलकर कृतार्थ होता है। सिन्धुसे बातें करनेवाले शिष्ट-मंडलका अव्यअीय स्थान तो सतलजको ही मिल सकता है, क्योंकि वह भी सिन्धुकी तरह परलोकसे (हिमालयके अुस पारसे) ही आती है।

अिन पांच नदियोंमें मध्यम स्थान अिरावतीका यानी रावीका है। वेदोंमें अिराका अर्थ है पानी, आह्लादक पेय। यों तो नदीमें पानी होता ही है। किन्तु अिस नदीके विशेष गुणको देखकर ऋषियोंने अुसे अिरावती नाम दिया होगा। ब्रह्मदेशकी अैरावती (अिरावान् = समुद्र) को

समुद्रके समान विस्तृत देखकर क्या यह नाम दिया होगा ? रावी अितनी विस्तृत नहीं है।

स्वामी रामतीर्थकी जीवनीमें रावीका जिक्र अनेक जगह पर आता है। रावीको देखकर स्वामी रामतीर्थकी आंखें प्रेमसे भर आती थीं। वैराग्य और संन्यासके कच्चे विचार अुन्होंने अिस नदीके किनारे ही पक्के किये। किन्तु रावी तो सिख-गुरु अर्जुनदेव और सिख-महाराज रणजितसिंहके लिअे ही आंसू बहाती दिखाअी देती है।

मैं लाहौर गया था तब अिरावतीके पुण्यदर्शन कर पाया था। अुस समय वह कितनी शांत थी! अुसके विशाल पट पर सारा लाहौर अुलट पड़ा था। लोगोंकी धूमधाम और पैसेवालोंकी शान-शौकत तथा विलासके सामने रावीकी शांति विशेष रूपसे शोभा पाती थी। यहां रावीका दृश्य अैसा मालूम होता था, मानो सारे लाहौरको अपनी गोदमें लेकर खेलाती हो!

अपना पावन और पोषक जल देनेके अलावा रावी अपने बच्चोंकी विशेष सेवा करती है। हिमालयके घने अरण्योंमें चीड़, देवदार, वांझ, सफेता आदि आर्य वृक्षोंके घने नगर बसे हुअे हैं। कहीं कहीं तो अैन दोपहरके समय भी सूरजकी धूप जमीन तक बड़ी मुश्किलसे पहुंचती है। और वयोवृद्ध वृक्षोंका अेकाध पितामह जब अुन्मूल होकर गिर पड़ता है तब भी अुसका जमीन तक पहुंचना असंभव-सा हो जाता है। आसपासके वृक्ष अपनी बलवान भुजाओंमें अुसको अंतरिक्षमें ही पकड़ लेते हैं। मानो बाणशय्या पर पड़े हुअे भीष्माचार्य हों। बरसों तक अिस तरह अधर ही अधरमें रहकर ठंड, धूप तथा बारिश सहते हुअे आखिर अिस भीष्माचार्यका विशाल शरीर छिन्न-भिन्न और चूर्णित होकर लुप्त हो जाता है।

अैसे जंगलोंसे अिमारती लकड़ी काटकर लाना आसान बात नहीं है। अिसलिअे लोगोंने रावीका आश्रय लिया। रावीके किनारे जहां बड़े बड़े जंगल हैं वहां लकड़ी काटनेवाले जाते हैं और लकड़ीके बड़े बड़े लट्ठे काटकर रावीके प्रवाहमें छोड़ देते हैं। बस हो-हा करते हुअे वे चलने लगते हैं। कहीं कहीं पाठशालामें जानेवाले आलसी लड़कोंकी

भांति वे धीरे धीरे और रुकते रुकते भी चलते हैं। और कहीं कहीं शामके समय घरकी ओर दौड़नेवाले सांड़ोंकी तरह वे नाचते-कूदते, अूपर-नीचे होते, अेक-दूसरेसे टकराते हुअे दौड़ते जाते हैं।

जब सजीव जानवरोंको भी हांकनेके लिअे गड़रियोंकी आवश्यकता होती है, तब ये निर्जीव लट्ठे अैसी किसी देखरेखके बिना मुकाम तक कैसे पहुंच सकते हैं? नदीका कहीं मोड़ देखा कि सब रुक गये। अेक रुका जिसलिअे दूसरा रुका। अुसके सहारे तीसरा रुका। 'आगे जानेका रास्ता नहीं है' कहकर चौथा रुका। 'क्या देखकर ये सब यहां खड़े हो गये हैं, देखूं तो सही!' कहकर पांचवां रुका। रात बितानेके लिअे यह पड़ाव होगा, अैसा अीमानदारीके साथ मानकर सातवां, आठवां और दसवां रुका। बादमें आये हुअे तो यह मानने लगे कि हमारा मुकाम ही यहीं है, अब यात्रा करना बाकी नहीं रहा। जहां सब रुके 'सा काष्ठा सा परा गतिः'।

सुबह होते ही अिन लट्ठोंके गड़रिये आते हैं और सबको आगे हांक ले जाते हैं। 'अरे भअी, चलो चलो' करते यह काफिला फिर कूच शुरू करता है। नदीका प्रवाह अच्छा हो वहां तक तो यह यात्रा ठीक चलती है। मगर जहां प्रवाह ज्यादा तेज, छिछला या पथरीला होता है वहां बड़ी मुश्किल होती है। अेकाध लंबे लट्ठेको दो बड़े पत्थरोंका आश्रय मिल गया कि वह वहीं रुक जायगा और कहेगा 'मैं तो यहांसे हटनेवाला ही नहीं हूं। और दूसरोंको भी नहीं जाने दूंगा।' अैसी जगह पर अुन लट्ठोंके जानेके लिअे पांच-सात ही स्वेज नहरें होंगी। वे बंद गअीं कि सारा काफिला रुक गया समझिये। गड़रिये वहां तैर कर आनेकी हिम्मत भी नहीं करेंगे; क्योंकि अुनको अिन लट्ठोंसे अधिक अपना सिर प्यारा होता है। किनारे पर खड़े रहकर लम्बे लम्बे बांसोंसे ढकेल ढकेल कर कड़ियोंको निकाला जा सकता है। किन्तु जो प्रवाहके बीचोंबीच रुक गये हों अुनका क्या?

मनुष्यने अिस आफतका भी अिलाज खोज निकाला है। हिमालयमें भैंसके समान बड़े जानवर रहते होंगे। अुनकी पूरी खाल अुतार कर अुसको सी लेते हैं और अुसका थैला बनाते हैं। गलेकी ओरसे

हवा भर कर अुसे भी सी डालते हैं। अिससे यह जानवर अप्सराकी तरह, विना मांस या हड्डियोंका, हवासे भरा हुआ हो जाता है और पानी पर तैरने लायक वन जाता है। अुसके चार पांव भी हड्डियोंको निकालकर जैसेके तैसे रखे जाते हैं। फिर अिस तैरते हुअे फुग्गे या मशकको पानीमें छोड़कर ये गड़रिये अुसके पेट पर अपनी छाती रख देते हैं और पांव हिलाते हिलाते तय किये हुअे मुकाम पर पहुंच जाते हैं। फुग्गेके कारण पानीमें तैरना आसान हो जाता है। फुग्गेके पांवोंको पकड़ रखने पर वह छातीके नीचेसे खिसकता नहीं और तेज प्रवाहमें कहीं पत्थरसे टकराने पर चोट खालको ही लगती है, अुस पर सवार हुअे आदमीको नहीं।

अितनी तैयारी होने पर वे लट्ठे भटकते कैसे रह सकते हैं? अेक अेकको तो आगे वढ़ना ही पड़ता है। पहाड़की घाटियोंको पार कर अेक वार वाहर निकल आये कि ये लट्ठे मनचाहे ढंगसे अलग अलग न हो जायं अिसलिअे अुनके गड़रिये सबको रस्सेसे वांधकर अुन पर सवार होते हैं और अुन्हें आगे ले जाते हैं।

लाहौरमें रावीके प्रवाह पर अिन लट्ठोंके कअी काफिले तैरते हुअे दीख पड़ते हैं। अुनके शत्रु अुनको पानीसे वाहर निकालकर अुनके टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं; और फिर मनुष्योंके मकान या दूसरे साज-सामान तैयार करनेके लिअे दधीचि ऋषिकी तरह अुन्हें अपना शरीर अर्पण करना पड़ता है। अपने पर्वतीय सहोदरोंको मनुष्यकी सेवामें अिस प्रकार लाकर छोड़ते समय रावीको कैसा लगता होगा? रावी अितना ही कहती होगी : 'भाअियो, परोपकाराय अिदं शरीरम्।'

जून १९३७

२९

स्तन्यदायिनी चिनाब

कश्मीरसे लौटते समय पैर अुठते ही नहीं थे। जाते समय जो अुत्साह मनमें था, वह वापस लौटते वक्त कैसे रह सकता था? अिसी कारण, जाते समय जो रास्ता लिया था, अुसे छोड़कर पीर पुंजालके पहाड़ोंको पार करके हम जम्मूके रास्तेसे आ रहे थे। श्रीनगरसे जम्मू तक गाड़ीका रास्ता भी नहीं है। हिम्मत हो तो पैदल चलिये, वरना कश्मीरी टट्टू पर सवार हो जाअिये। रास्तेमें प्रकृतिकी सुंदरता और जहांगीरकी विलासिताका कदम कदम पर अनुभव होता है। जहां देखें वहां बंधे हुअे जलाशय और पहाड़ोंमें बनाये हुअे रास्ते दीख पड़ते हैं। आज शिमलाकी जो प्रतिष्ठा है, वही या अुससे भी अधिक प्रतिष्ठा जहांगीरके समयमें श्रीनगरकी थी। अैसे बादशाही पहाड़ी रास्तेसे वापस लौटते समय भगवती चंद्रभागाके दर्शन किये थे। लोग आज अुसे चिनावके नामसे पहचानते हैं।

यदि मैं भूलता नहीं हूं तो हम रामबनके आसपास कहीं थे। सारा दिन और सारी रात चलना था। चांदनी सुंदर थी। थके-मांदे हम रास्ते पर पियक्कड़ आदमीकी तरह लड़खड़ाते हुअे चल रहे थे। पांवोंके तलुओंमें छाले निकल आये थे। घुटनोंमें दर्द था और निराश नींदका रूपांतर हुआ था आधी क्लान्तिमें। निद्रा सुखावह होती है; तन्द्रा वैसी नहीं होती।

अैसी हालतमें हम आगे बढ़ रहे थे, अितनेमें दायीं ओरकी गहरी घाटीमें से गंभीर ध्वनि सुनाअी दी। सामनेकी टेकरी परसे झुककर आया हुआ पवन शीतल-सुगंधित मालूम होने लगा। तन्द्रा अुड़ गअी। होश आया। और दृष्टि कलरवका अुद्गम खोजने दौड़ी। कैसा मनोहर दृश्य था! अूपरसे दूधके जैसी चांदनी बरस रही है। नीचे चंद्रभागा पत्थरोंसे टकराकर सफेद फेन अुछाल रही है। और अुसका आस्वाद लेकर तृप्त हुआ पवन हमें वहांकी शीतलता प्रदान कर रहा है।

साथ आये हुअे अेक आदमीसे मैंने पूछा, "यह कोअी नदी है, या पहाड़ी प्रवाह है?" अुसने जवाब दिया, "दोनों है। वह तो मैया चिनाब है।" मैंने चिनाबको प्रणाम किया। नीचे तो अुतरा नहीं जा सकता था। अतः दूरसे ही दर्शन करके पावन हुआ। प्रणाम करके कृतार्थ हुआ और आगे चलने लगा।

क्या यही है वेदकालीन भगवती चंद्रभागा! कअी ऋषियोंने अपने ध्यान और अपनी गायोंको यहां पुष्ट किया होगा। आज भी अुधमी लोग अिस नदी माताका दोहन कम नहीं करते। मेरी जीवन-स्मृति शुरू होती है अुसी समय पहाड़ों जैसे कद्दावर पंजाबी अिस नदीके किनारे पर नहरें खोदते थे। आज पचीस लाख अेकड़ जमीन अिस माताके दूधसे रसकस प्राप्त करती है और पंजाबी वीरोंका पोषण करती है। वेद-कालीन चिनाबका सत्त्व आर्योंके अुत्कर्षमें काम आता था। रणजितसिंहके समयमें यही जल गुरुकी फतह पुकारता था। आजका रंग भी अंतिम नहीं है। चिनाबका पानी बिलकुल निःसत्त्व नहीं हुआ है। पंचनदकी प्रतिष्ठा फिरसे जागेगी और सप्तसिंधुका प्रदेश भारतवर्षको भाग्यके दिन दिखलायेगा।

१९२६–'२७

[चिनाबका प्रवाह पंजाबकी भाग्यरेखा होनेके बजाय आज पंजाबके बंटवारेकी रेखा बना है, यह कितना दैवदुर्विपाक है!]

३०

जम्मूकी तवी अथवा तावी

किसी नदीके बारेमें कहने जैसा कुछ न मिले तो भी क्या? अुसमें स्नान करनेका आनंद कम थोड़े ही होनेवाला है! नदीका महत्त्व स्वतःसिद्ध है। अुसके नामके साथ कोअी अितिहास जुड़ा हुआ हो तो धन्य है वह अितिहास। नदीको अुससे क्या? अितिहासकी दिलचस्पी विग्रहके साथ अधिक होती है — जब कि नदीका काम संधिका, मेलजोलका होता है। किसानोंको और पथिकोंको, पशुओंको और पक्षियोंको अपने जलसे संतुष्ट करती हुअी नदी जब बहती है, तब वह 'आत्मरति, आत्मक्रीड़ और आत्मन्येव च संतुष्ट' जैसी मालूम होती है। आप नदीसे पूछिये, 'तेरा अितिहास क्या है?' वह जवाब देगी, 'मैं पहाड़की लड़की हूं। असंख्य मानव तथा तिर्यक् प्रजाकी माता हूं। मैं सागरकी सेवा करती हूं, और आकाशके बादल ही मेरे स्वर्गस्थान हैं। बस अितना अितिहास मेरी दृष्टिसे महत्त्वका है।' ज्यादा पूछो तो तावी कहेगी कि 'आसपासके प्रदेशको पिलानेके बाद मेरा जो पानी बचता है वह मैं चिनावको देती हूं। चिनाव अपना पानी झेलममें विसर्जन करती है। झेलम सिंधुसे मिलती है। और सिंधु हम सबका पानी सागरमें छोड़कर अपनेको और हम सबको कृतार्थ करती है। वही है हमारी सायुज्य मुक्ति। बाकी तुम पागलोंका अितिहास तुम जानो। दुश्मनी और पागलपनका अितिहास भला कभी लिखा जाता है? वह तो भूल जानेकी बात है, भूल जानेकी। क्या तुम दुश्मनी और जहरको कायम रखनेके लिअे अितिहास लिखते हो? अैसे अितिहासको दफना दो या धो डालो। सेवाका अितिहास ही सच्चा अितिहास है। द्विगर्तवासी डोगरा, गद्दी और गुज्जर जैसी प्रजा मेरी संतान है। अुनका जीवन ही मेरा जीवन है।'

कश्मीरकी यात्रा पूरी करके हम जम्मू आये और रघुनाथजीके मंदिरमें ठहरे। पास में ही तवी बह रही थी। जम्मूकी ओरका तवीका किनारा खासा अूंचा है। तवी भी वैसी ही है जैसी बहुतसी नदियां

होती हैं। अुसमें असाधारण कुछ नहीं है। अेक महाराष्ट्रीय अिंजीनियरसे हम मिलने गये थे। अुन्होंने बताया कि 'तवीके अूपर बिजलीके यंत्र लगाये गये हैं। अिस बिजलीसे बहुतसा काम किया जा सकता है।' किन्तु तवीको अुससे क्या? वह तो निरन्तर बहती ही रहती है।

१९२६-'२७

३१

सिंधुका विषाद

हिमालयके अुस पार, पृथ्वीके अिस मानदंडके लगभग बीचमें, कैलासनाथजीकी आंखोंके नीचे चिर-हिमाच्छादित पुण्यवान प्रदेश है, जिसके छोटेसे दायरेमें आर्यावर्तकी चार लोकमाताओंका अुद्गम-स्थान है। अुस पार और अिस पारका विचार यदि न करें, तो हम कह सकते हैं कि अुत्तर भारतकी लगभग सभी नदियां यहांसे झरती हैं।

हिमालय हिन्दुस्तानका ही है, और किसी देशका नहीं, मानो यही सिद्ध करनेके लिअे हिमालयके अुत्तरकी ओर बहनेवाले पानीका अेक-अेक बूंद अिकट्ठा करके, हिमालयके दोनों छोरोंसे घूमकर अुन्हें हिन्द महासागर तक पहुंचानेका काम सिन्धु और ब्रह्मपुत्र, दोनों नद अखंड रूपसे करते हैं। ये दो नद अैसे लगते हैं, मानो श्री कैलासनाथजीने भारतवर्षको अपनी भुजाओंमें लेनेके लिअे दो कारुण्यबाहु फैलाये हों। हिमालयकी रुकावट मानो सहन न होती हो अिस तरह सतलज और घाघरा हिमालयकी गोदमें से सीधा रास्ता निकाल कर मानसरोवरका जल भारतवर्षके दो बड़े प्रांतोंको पिलाने लगती हैं। जब कि गंगा, यमुना और अुनकी असंख्य बहनें पिताका लिहाज रखकर अिस ओर रहते हुअे वही काम करती हैं। पंजाबकी पांच नदियां और युक्तप्रांतकी (अुत्तर प्रदेशकी) पांच नदियां मिलकर भारतवर्षकी समृद्धिको दसगुना बना देती हैं। ये दसों नदियां भारतीय हैं। केवल सिंधु और ब्रह्मपुत्रको अति-भारतीय कह सकते हैं।

भारतवासी गंगा मैयाको प्राप्त करके सिंधुको मानो भूल ही गये हैं। सिन्धुके तट पर आर्योंके धर्मप्रसिद्ध तीर्थ हैं ही नहीं। वैदिक देवताओंके देवता सिन्द्रको जिस प्रकार हम भूल गये हैं, उसी प्रकार सप्त-सिंधुमें से मुख्य सिन्धु नदीको भी मानो हम भूल ही गये हैं। दक्षिण और पूर्वकी ओर महासाम्राज्योंकी स्थापना करके प्राचीन आर्य वायव्य दिशाके प्रति कुछ उदासीनसे बने और जिस कारण हमेशाके लिअे खतरेमें आ पड़े। उत्तरकी ओर तो हिमवानकी रक्षा थी ही। पश्चिमकी ओर ठेठ अन्दर तक राजपूतानेकी मरुभूमि और राजपूत तथा डोगरा जातिके शौर्यसे पूरी रक्षा मिलती थी। उससे बाहर वेगवती सिंधु रक्षा कर रही थी। जिससे आगे करतार (खिरथर) से लेकर हिन्दूकुश तक प्रचंड पर्वतमालाकी रक्षा थी। पहाड़ी परोपनिसदी (अफगान) लोगोंकी स्वातंत्र्य-प्रियता भी विदेशियोंको जिस ओर आने नहीं देती थी। मगर जहां देशवासी ही उदासीन हो गये, वहां पहाड़ी दीवारें और नदियां कितनी रक्षा कर सकती हैं? परोपनिसदी लोगोंमें यवन मिल गये और वाल्हीकके पास हिन्दुस्तानकी जो शास्त्रीय फौजी सीमा थी, वह खिसकती खिसकती अटक तक आकर अटक गअी। और अटकने भी विदेशियोंको अंदर आनेसे अटकानेके बजाय भारतवासियोंको बाहर जानेसे ही अटकाया! रानी सेमीरामिस हिन्दुस्तान आनेसे नहीं अटकी। फारसके सम्राट दरायस पंजाब और सिंधुसे सुवर्ण-करभार लेनेसे न अटके। युअेची तथा हूण लोग हिन्दुस्तान आनेसे न अटके। सिकंदर पांच नदियोंको पार करनेसे न अटका। महमूद या बाबरको भी वह अटक न अटका सकी। हमें मालूम होना चाहिये था कि जिस नदीने काबुल नदीके पानीका स्वीकार किया वह पश्चिमकी ओरसे आनेवाले लोगोंको नहीं अटकायेगी!

पश्चिम तिब्बतमें कैलासकी तलहटीमें सिन्धुका अुद्गम है। वहांसे सीधी रेखामें वायव्यकी ओर वह दौड़ती है, क्योंकि अंतमें अुसे नैऋत्यकी ओर जाना है। कश्मीरमें घुमकर लेहकी फौजी छावनीकी मुलाकात लेती हुअी काराकोरम पहाड़की रक्षामें वह सीधी आगे बढ़ती है। स्कार्डुके पास अुसे होश आता है कि मुझे हिन्दुस्तान जाना है। गिलगिटके किलेको

दूरसे देखकर वह दक्षिणकी ओर मुड़ती है। चित्रालकी ओर तो वह खुद जाना नहीं चाहती, लेकिन यह जांचनेके लिअे कि वहांका पानी कैसा है, वह स्वात नदीको अपने पास बुलाती है। स्वात भला अकेली क्यों आने लगी? अुसकी निष्ठा काबुल नदीके प्रति है। सफेद कोहका पानी लानेवाली काबुलसे मिलकर वह अटकके पास सिन्धुसे आ मिलती है। अब सिन्धु पूरी पूरी भारतीय बन जाती है। स्वात और काबुलके पारा सुननेके लिअे काफी अितिहास पड़ा है। खैबरघाटसे कौन कौन लोग आये और गये, बैक्ट्रियाके यूनानी लोग किस रास्तेसे आये, और कर्नल यंगहसबंड वहांसे चित्रालकी चढ़ाअी पर कैसे गया — आदि सारा अितिहास ये दो नदियां बता सकती हैं। अमीर अमानुल्लाने गरमीके पागलपनमें परसों ही जो चढ़ाअी की थी अुसकी बात यदि पूछें तो वह भी ये बता सकेंगी। और कोहाटकी क्रूरतासे भी सिन्धु अपरिचित नहीं है। बजीरिस्तान और बन्नूमें क्षात्र-धर्मको लज्जित करनेवाली जो घटनाअें घटी थीं, अुनकी कहानी कुरमके मुंहसे सुनकर सिन्धुका जी कांप अुठता है। क्रुमु या कुरम नदी सिन्धुसे मिलती है तब अुसका प्रवाह बिगड़ता है। पहाड़के अभावमें वह मर्यादामें नहीं रह पाता। छोटे बड़े टापू बनाती बनाती सिन्धु डेरा अिस्माअिलखांसे लेकर डेरा गाजीखां तक जाती है।

अब सिन्धु पांचों नदियोंके पानीकी राह देखती हुअी संकरी होकर दौड़ती है। जम्मूकी ओरसे आनेवाली चिनाब कश्मीरी झेलम नदीसे मिलती है। लाहौरके वैभवका अनुभव करके तृप्त बनी हुअी रावी अिन दोनोंसे मिलती है। व्यासके पानीसे पुष्ट बनी सतलज अिन तीनोंके पानीमें जा मिलती है। और फिर अुन्मत्त बना हुआ पंचनदका प्रवाह अपनी पूरी रफ्तारके साथ मिट्टनकोटके पास सिन्धुके अूपर टूट पड़ता है। अितने बड़े आक्रमणको सहकर, हजम करके, अपना ही नाम कायम रखनेवाली सिन्धुकी शक्ति भी अुतनी ही बड़ी होनी चाहिये।

सिन्धु न सिर्फ अपना नाम ही कायम रखती है, बल्कि यहांसे वह अपने जीवनकी अुदार कृपाको अनेक प्रकारसे फैलाती हुअी आस-पासके प्रदेशको भी अपना नाम अर्पण करती है। 'त्यागाय संभृतार्था-

नाम्' के अुदाहरणरूप आर्य राजाओंका ही वह अनुकरण करती है। बड़ी बड़ी सात घाटियोंका पानी वह अिकट्ठा जरूर करती है, मगर सारा पानी अनेक मुखोंसे महासागरको देनेके लिअे ही। और बीचमें यदि कोअी गरजमंद आदमी अुसमें से मनमाना पानी कहीं ले जाना चाहे, तो सिन्धुको कोअी अेतराज नहीं है।

फिर भी गंगा मैयाकी अुदारता सिन्धुमें नहीं है। अिसलिअे अटक और सक्करसे लेकर हैदराबाद तक अुस पर पुल बनाये गये हैं। सक्करका पुल फौजी दृष्टिसे बहुत महत्त्वका है। सिंधुमें स्थित अेक बड़े टापूसे लाभ अुठाकर यह पुल बनाया गया है। मगर रोहरीकी ओर जहां पानी गहरा है, वहां यह पुल किसी भी समय पंखेकी तरह समेटकर अिकट्ठा किया जा सकता है। यदि फौजके लिअे सिन्धुको पार करना असंभव-सा बना देना हो, तो अेक मंत्र बोलते ही सारा पुल लुप्त हो सकता है। फिर शिकारपुर-सक्कर अलग और रोहरी अलग।

यह बात नहीं है कि शिकारपुर-सक्करको अंग्रेजोंने ही महत्त्व दिया है। यहांके हिन्दू व्यापारी प्राचीन कालसे बोलनघाटके रास्तेसे कंदहार जाकर मध्य अेशियामें तिजारत करते आये हैं। हिरात या मर्व, बुखारा या समरकंद, कहीं भी देखिये आपको शिकारपुरके व्यापारी जरूर मिल जायेंगे। शिकारपुरकी हुंडी मास्को और पिटर्सबर्ग (लेनिनग्राड) तक सकारी जाती थी। सक्करका स्मरण करें और बड़े जहाजके समान पानीमें तैरनेवाले साधुबेला नामक टापूका स्मरण न हो यह असंभव है। साधुओंकी काव्यमय अभिरुचि हमेशा सुन्दरसे सुन्दर स्थान पसंद करती है। साधुबेलाके सौंदर्यकी अीर्ष्या सम्राट् भी करेंगे।

पता नहीं, सिन्धुको आराम लेनेकी सूझी या सिंघाड़े खानेकी; वह यहांसे मंचर सरोवरकी दिशामें दौड़ती है। किन्तु समय पर सावधान होकर या खिरथर (करतार) के कहने पर वह वापस लौटती है और शेवणसे आग्नेय दिशामें मुड़कर हैदराबाद तक जाती है। यह प्रदेश कअी युद्धोंका साक्षी है। मालूम नहीं, जयद्रथके समयमें यहांकी स्थिति कैसी थी। मगर दाहिर और जच्चके समयमें यह प्रांत काफी पिछड़ा

हुआ रहा होगा। चंद्रगुप्तके पहले ओरानी साम्राज्यको सोना दे देकर निःसत्त्व हो जानेके कारण कहो, या वहांके ब्राह्मण राजाओंके अनाचारोंके कारण कहो, वहांकी प्रजा बिलकुल कंगाल और कमजोर हो गओी थी। ओरानका बादशाह आये या सिकंदर आये, बगदादका मुहम्मद-बिन-कासिम आये या सर चार्ल्स नेपियर आये, सिन्धु-तटवासी लोग हर समय हारे ही हैं।

जब सिकंदरने जहाजोंमें बैठकर सिन्धुको पार किया तब अुसने अपनी रक्षाके लिअे दोनों किनारों पर अपनी फौज चलाओी थी। आज अंग्रेजोंने सिन्धुकी रक्षाके लिअे नहीं, बल्कि पंजाबका गेहूं विलायत ले जानेके लिअे सिन्धुके दोनों तट पर रेलें दौड़ाओी हैं। सिन्धुका प्रवाह काफी वेगवान होनेसे गंगाकी तरह अुसमें जहाज नहीं चल सकते। अिसी कारणसे कराचीके पासके केटी बंदरगाहका कोओी महत्त्व नहीं रहा है।

सिन्धुके मुखका प्रदेश सिन्धुके ही पुरुषार्थके कारण बना है। दूर दूरसे कीचड़ और बालू ला लाकर सिन्धु वहां अुंड़ेलती गओी है। नतीजा यह हुआ है कि अरबी समुद्रको हमेशा अत्यंत सूक्ष्मतासे या 'बहादुरीसे' पीछे हटना पड़ा है।

सिन्धुका प्रवाह सिन्धु नामको शोभा दे अितना विस्तीर्ण और वेगवान है। गरमीके दिनोंमें जब पिघले हुअे बर्फके पानीका पूर अुसमें आता है, तब अुसको घोड़े या हाथीकी अुपमा शोभा तो क्या दे, वह सूझती भी नहीं। अुसको तो जल-प्रलय ही कहना होगा। सागरकी लहरें जैसी अुछलती हैं, वैसी ही सिन्धुकी लहरें अुछलती हैं। मगर-मच्छोंके गुरु बन सकें, अैसे तैराक भी पूरके समय पानीमें कूदनेकी हिम्मत नहीं करते।

प्रेम-दिवानी सती सुहिणीकी ही, कच्चे घड़ेके आधार पर, अैसे प्रवाहमें कूदनेकी हिम्मत हो सकती थी। प्रेमका प्रवाह, प्रेमका वेग और परिणामके बारेमें प्रेमका निरादर महासिंधुसे भी बड़ा होता है।

सितंबर, १९२९

३२

मंचरकी जीवन-विभूति

जिसने पानीको जीवन कहा, वह कवि था या समाजशास्त्री? मुझे लगता है वह दोनों था। विना पानीके न तो वनस्पति जी सकती है, न पशु-पक्षी ही जी सकते हैं। तव फिर दोनोंका आश्रित मनुष्य तो विना पानीके टिक ही कैसे सकता है? ओश्वरने पृथ्वीके पृष्ठभाग पर तीन भाग पानी और अेक भाग जमीन वनाकर यह वात सिद्ध की है कि पानी ही जीवन है। वेहोश आदमी आंखोंको पानीकी अेक ठंडी वूंद लगनेसे भी होशमें आ जाता है, तो फिर अनंत वूंदोंसे छलकते हुअे सरोवरको देखकर जीवन कृतार्थ होने जैसा आनन्द यदि वह अनुभव करे तो अिसमें आश्चर्य ही क्या?

अनंत सागर और अुसकी अनंत तरंगोंको देखने पर मनुष्यको अुन्माद होना स्वाभाविक है। पर जिसके सामनेके किनारेकी थोड़ी झांकी ही हो सकती है, और अिस कारण आंखोंको जिसके विशाल विस्तारका माप पानेका आनंद मिल सकता है, अैसे शांत सरोवरका दर्शन मित्र-दर्शनके समान आह्लादक होता है। सागर अज्ञातमें कूद पड़नेके लिअे हमें वुलाता है, जव कि सरोवर अपनी दर्पण जैसी शीतल पारदर्शक शांति द्वारा मनुष्यको आत्म-परिचय पानेके लिअे प्रोत्साहन देता है। सरोवरमें हमें जीवनकी प्रसन्नताका दर्शन होता है, जव कि सागरमें जीवनकी प्रक्षुव्ध विराटताका साक्षात्कार होता है। सागरका तांडव-नृत्य देखकर जो मनुष्य कहेगा:

दिशो न जाने न लभे च शर्म।

वही मनुष्य विशाल सरोवरके किनारे पहुंचते ही 'हाश' करके गायेगा:

अिदानीं अस्मि संवृत्तः, सचेताः, प्रकृतिं गतः।

अिस प्रकार सागर और सरोवर जीवनकी दो प्रधान और भिन्न विभूतियां हैं।

मैं जानता था — कभीका जानता था — कि जीवन-विभूतिका अैसा अेक सुभग दर्शन सिंधमें सदाके लिअे फैला हुआ है। किन्तु अुसे देखनेके सौभाग्यका अुदय अभी तक नहीं हो पाया था। जब मेरे लोकसेवक संस्कार-संपन्न रसिक मित्र श्री नारायण मलकानीने मुझे अिस बार सिंधमें घूमनेका आमंत्रण दिया, तब मैंने अुनसे यह शर्त की कि अबकी बार यदि जीवन और मरण दोनोंका साक्षात्कार करानेके लिअे आप तैयार हों तो ही मैं आअूंगा। अिस तरहकी गूढ़ वाणीकी अुलझनमें मित्रको लम्बे समय तक डालना मैंने पसन्द नहीं किया। मैंने अुनको लिखा, जहां अेक अेक करके तीन युग दबे पड़े हैं, और जहां मृत्युने अपना सबसे बड़ा म्यूजियम खोला है, वह 'मोहन-जो-दड़ो'*, मुझे फिरसे देखना है। अुसी तरह जहां कमलकंदकी जड़में से पैदा होनेवाले असंख्य कमलों, अिन कमलोंके बीच नाचनेवाली छोटी-बड़ी मछलियों, अिन मछलियों पर गुजर करनेवाले रंगबिरंगे पक्षियों और कमलकंद से लेकर पक्षियों तक सबको बिना किसी पक्षपातके अपने अुदरमें स्थान देनेवाले सर्वभक्षी मनुष्योंकी निश्चितताके साथ जहां वृद्धि होती है, अुस जीवन-राशि मंचर सरोवरका भी मुझे दर्शन करना है। नारायणकी स्थिति तो 'जो दिल-पसन्द था वही बैद्यने खानेको कहा' जैसी हुअी होगी। अुन्होंने सिंधके सूफी दर्शनका पालन करके प्रथम लारकानाके रास्तेसे 'मौतके टीले' का दर्शन कराया, और अुसके पश्चात् ही जीवनकी अिस राशिकी ओर वे हमें ले गये!

सिन्धुके पश्चिम तट पर, जहां पंजाबका गेहूं कराची तक पहुंचा देनेवाली रेलवे दौड़ती है, दादू और कोटरीके बीच बूबक स्टेशन आता है। बगैर पूछे आदमीको कैसे पता चले कि अबूबकर नामके दोनों छोरके अक्षर कम करके बूबक नामका सर्जन हुआ है? स्टेशनसे पश्चिमकी ओर चार मीलका धूल-भरा रास्ता पार करके हम बूबक पहुंचे। वहांके लोग बाजे, शहनाअी और थोड़ी-बहुत दक्षिणा लेकर हमें लेने

---

*अुसका सही नाम है 'मूवन-जो-दड़ो'। अिसका अर्थ होता है मरे हुअे लोगोंका टीला।

आये। अुनके साथ सारा गांव घूमकर, गली-कूचोंको देखकर, हम अपने मिजवान श्री गोधूमलजीके घर पहुंचे। अुनके आतिथ्यको स्वीकार करके खाया-पिया, दस-पंद्रह मिनट तक स्वप्नसृष्टि पर राज्य किया और वहांके गालीचों तथा रंगाअी-कामकी कद्र करके हम मंचरके दर्शन करने निकले।

दो मीलका धूल-भरा रास्ता हमें फिर तय करना पड़ा। अुसके बाद ही खेतोंके बीच अंटसंट बातें करनेवाली और गड़रियोंकी कुटियोंकी मुलाकात लेनेवाली अेक नहर आअी। जहांसे वह शुरू होती थी, वहीं नअी-पुरानी किश्तियोंका अेक झुंड कीचड़में पड़ा था। अुनमें से अेक बड़ी किश्ती हमने पसन्द की और अुसमें सवार हुअे। ('सवार' या 'असवार' यानी 'अश्वारोही'; हम तो नौकारोही हुअे थे।) अिस प्रकार हमने और दो मीलकी प्रगति की। दोनों ओर पानीके साथ क्रीड़ा करनेवाली रहंट घुमानेका पुण्य प्राप्त करनेवाले अूंट हमने देखे। खुले वायुमंडलमें ही अपना जीवन, अपना विनोद और अपना अुद्योग चलानेवाले किसान भी हमने वहां देखे। और जमीन तथा पानीके बीच आवा-जाअी करनेवाले बनजारे पक्षी भी देखे।

हमारे काफिलेके बीसों जन आनंदके अुपासक बने थे। कुछने 'चल चल रे नौजवान—रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान' वाला कूचगीत छेड़ा। अिसमें हंसनेकी बात तो अितनी ही थी कि नौकारोही हम लोग पैदल कूच नहीं कर रहे थे, मगर लंबे लंबे बांसोंसे कीचड़को कोचते कोचते आगे बढ़ रहे थे। हमारे पैर कोअी हल-चल किये बिना अजगरोंकी अुपासना कर रहे थे। पर जब सभी खुश-मिजाज होते हैं, तब बातों तथा गीतोंमें औचित्यके व्याकरणकी कोअी परवाह नहीं करता।

जब चि० रैहानाबहनको 'बेनवा फकीर' की मुरलीके सुर छेड़नेका निमंत्रण दिया गया तभी सच्चा रंग जमा; ठीक अिसी समय हमारी नहरने अपना मुंह चौड़ा करके हमारी किश्तीको सरोवरमें ढकेल दिया। फिर तो पूछना ही क्या? जहां देखो वहां जीवन ही जीवन फैला आं था! पंद्रहसे बीस मील लंबा और दस मील चौड़ा जीवनका

काव्यमय विस्तार!! पानीकी विस्तृत जलराशिकी कांति और बीच बीचमें हरे घासके टापुओंकी शांति! प्रकृतिको अितना काव्य कैसे सूझा होगा? मैंने गोधूमलजीसे कहा, 'यहां तो मेरा हृदय द्रवित होता जा रहा है।' अुन्होंने अुतनी ही रसिकताके साथ जवाब दिया: 'यदि आप नवंबरमें यहां आते तो यहांके लाखों कमलोंमें दब जाते। आपको यदि यह अुल्लास देखना हो तो अपने विष्णुशर्माको किसी भी साल लिखकर सूचना कर दीजिये। वे मुझे लिखेंगे और मैं आपके लिअे सब तैयारी कर रखूंगा। हमारा प्रदेश अितना अलग पड़ गया है कि आपके जैसे लोग शायद ही यहां आते हैं। जहां तक मुझे याद आता है, अिसके पहले यहां अेक ही महाराष्ट्रीय प्रोफेसर आये थे और वे भी आपकी ही तरह आनन्द-विभोर हो गये थे। हां, हर साल कुछ गोरे फौजी अफसर यहां मछलियां मारने या शिकार खेलने जरूर आते हैं। मगर अुससे हमें क्या लाभ हो सकता है?'

दूरी पर अेक किश्ती दिखाअी दी। देहातका कोअी कुटुंब स्थलांतर करता होगा। अुनकी नारंगी रंगकी ओढ़नी तथा नीले रंगके पायजामेका प्रतिबिंब पानीमें कितना सुशोभित हो रहा था—मानो ग्रामीण काव्य ही आनंदमें आकर जल-विहार कर रहा हो! दूर दूर काले जल-कुक्कुट पानीकी सतह पर तैरते हुअे अुदर-पूजन कर रहे थे। हममें से कुछ लोगोंको किश्तीके किनारे बैठकर पानीमें पांव धोनेकी सूझी। अुन्होंने रिपोर्ट दी कि कहीं पानी बिलकुल ठंडा है और कहीं कुनकुना। अिसका कारण क्या है, यह तो लोग मुझसे ही पूछेंगे न? अैसी लहरी टोलीमें मैं हमेशा सर्वज्ञ होता हूं। मैंने फौरन कारण ढूंढ़ निकाला और सबको शास्त्रीय अुपपत्तिका संतोष प्रदान किया।

'वे सामने जो टेकरियां दिखाअी देती हैं, अुनका क्या नाम है?' मैंने आसपासके लोगोंसे पूछा। अुन्हें मेरे प्रश्नसे आश्चर्य हुआ। मानो अुन्हें मालूम ही नहीं था कि स्वदेशी टेकरियोंके नाम भी होते हैं। और अिधर प्रत्येक रूपके साथ यदि नाम न जुड़ा हो तो मेरी दार्शनिक आत्मा संतुष्ट नहीं होती। हमारी टोलीमें बूबकका अेक छोटा, नाजुक और शर्मीले स्वभावका लड़का अेक कोनेमें बैठा था। मैंने

अुसे 'अीस्सरदास' कहकर पुकारा। पाठशालामें पढ़ा हुआ भूगोल अुसके काम आया। अुसने तुरन्त कहा, 'सामनेकी टेकरियोंको खिरथर कहते हैं।' मैं हंस पड़ा और मेरे मुंहसे अुद्गार निकल पड़ा: 'धन्य है करतार!' छुटपनमें हाला और सुलेमान पर्वतके नाम हमने रटे थे। आगे जाकर हाला पर्वतने करतारका नाम धारण किया था। अुसका कारण अितना ही था कि अंग्रेजोंने खिरथरकी स्पेलिंग की थी Kirthar। विदेशी लिपिके कारण हमारे यहां कअी अनर्थ हुअे हैं। यह अुनमें से ही अेक था। खिरथरकी टेकरियां अिस किनारेसे दस बारह मील दूर हैं। वहां सिंध पूरा होकर बलूचिस्तान शुरू होता है।

अब सूरज थककर खिरथरका आश्रय लेनेकी सोच रहा था। हमने भी सोचा कि अब लौटकर घर जाना चाहिये और सात बजनेसे पहले जठराग्निको आहुति देना चाहिये! नावने दिशा बदली और हम पूर्वकी ओरकी शोभा देखने लगे। 'वऽऽह सामने दूर जो नाव दिखाअी दे रही है वह अिस समय पश्चिमकी ओर कहां जाती होगी?' मैंने माझी गोबूमलजीसे पूछा। अुन्होंने बताया, 'अुस किनारे खिरथरकी बगलमें अेक गांव है। वहां महाशिवरात्रिका अेक मेला लगता है। अुस दिन हिन्दू लोग महाशिवरात्रिके कारण वहां अिकट्ठा होते हैं। मुसलमान भी अुस दिन वहीं अपने किसी पीरके नाम पर अिकट्ठा होते हैं। बहुत बड़ा मेला लगता है। ये लोग शायद मेलेके लिअे ही जा रहे होंगे।' हम गये अुस दिन फरवरीकी २१ तारीख थी। महाशिवरात्रि बिलकुल पास यानी २४ तारीखको थी। हमारे कार्यक्रममें फेरबदल किया ही नहीं जा सकता था। 'आज यदि २४ तारीख होती तो मैं जल्दी निकलकर अुस गांवमें जरूर जाता। मैं महाशिवरात्रिका व्रत रखता हूं। हिन्दू और मुसलमानोंको अेकहृदय होकर अेक ही अीश्वरकी भक्ति करनेके लिअे हजारोंकी तादादमें अेक ही जगह अिकट्ठा हुअे देखकर अपने हृदयको पवित्र करनेका मौका मैं न छोड़ता। शिवरात्रिके दिन जिस वृत्तिसे हिन्दू और मुसलमान प्रेमसे अिकट्ठा होते हैं, वही वृत्ति यदि हिन्दुस्तानमें सर्वत्र फैल जाय तो हमारा बेड़ा पार! वह दिन हिन्दुस्तानके लिअे सुदिन तथा शिवदिन हो जाय।'

अितना कहकर मैं खामोश हो गया। अब किसीके साथ बातें करनेमें मेरी दिलचस्पी न रही। मैं दूर दूर तक देखने लगा। पृथ्वी पर या आकाशमें नहीं, बल्कि कालके अुदरमें देखने लगा। कोलंबस जिस प्रकार श्रद्धापूर्वक अमरीकाका रास्ता खोजता था, अुसी प्रकार शिवरात्रिका कब शिवदिन होगा अिसकी मैं श्रद्धाकी दृष्टिसे खोज करने लगा।

'वह सामने जो हरे हरे खेत दीख पड़ते हैं अुनके पीछे तमाकू या भांगकी खेती होती है।' बूबकके अेक साथीने मेरा ध्यान भंग किया। हमने सरोवरमें से नहरमें प्रवेश किया था। नहरके किनारे, बांसकी कमानी पर, पैरोंको बांधकर खड़े हुअे बगुले मछलियोंका ध्यान कर रहे थे। झोंपड़ियोंमें से चूल्हेका धुआं निकलने लगा था। आंखें बूबकके अूंचे अूंचे चौरस मकानोंके स्थापत्यको निहारने लगीं। अिन मकानोंके कुछ 'मंच' बगुलोंकी तरह सिर अूंचा करके वायुसेवनके पैंतरेमें खड़े थे। हमने तमाकू और भांगके खेत भी पार किये। भांगके विषयमें सरकारी नीतिका अितिहास सुना। और घर लौटकर समय पर भोजन करने बैठे।

किन्तु मेरा मन तो मंचरके 'ढंढ' (बांध) पर महाशिवरात्रिका आनन्द ले रहा था।

मार्च, १९४१

३३

लहरोंका तांडवयोग

[कराचीके पास कोआमारीसे जरा दूर मनोरा नामक अेक टापू है। वहां अेक सुन्दर मंदिर है। टापू पर अधिकतर पोर्टट्रस्टके लोग और थोड़ी-सी फौज रहती है। मनोरा टापू कराचीका गहना तथा समुद्रका खिलौना है। अिसके दक्षिणके छोर पर अेक बड़ी खोह है, जिस पर समुद्रकी लहरें टकराती हैं। अिससे आगे काफी दूर तक अेक बड़ी दीवार खड़ी करके लहरोंको रोका गया है। अिससे वहां लहरोंका अखंड सत्याग्रह देखनेको मिलता है। यह दृश्य देखनेके लिअे मैं अेक बार गया था।

हिंदी-साहित्य-संमेलनमें भाग लेनेके लिअे अिस साल कराची गया, तब दुबारा वह दृश्य देख आया। लहरोंका असर अुन पत्थरों पर चाहे न भी हो, परंतु हृदय पर अुनका असर हुअे बिना थोड़े ही रहता है! हृदय और समुद्र दोनों स्वभावसे ही अूर्मिल हैं।]

कोअी प्राकृतिक दृश्य पहली बार देखकर हृदय पर जो असर होता है, वह दूसरी बार देखने पर नहीं होता। पहली बार सब नया ही नया होता है। अुस समय अज्ञात वस्तुओंका परिचय करना होता है। कदम कदम पर आश्चर्य और चमत्कृतिका अनुभव होता है। दूसरी बार अुसी जगह जाने पर किन किन बातोंकी आशा करनी चाहिये, अिसका मनुष्यको खयाल होता है। अिसलिअे अुतनी मात्रामें चमत्कृतिके लिअे गुंजाअिश कम रहती है। परिचित वस्तुके प्रति प्रेम हो सकता है; आश्चर्य और चमत्कृति तो अपरिचितके लिअे ही हो सकती है।

अैसी ही प्रेमपूर्ण किन्तु अुत्सुकता-रहित वृत्तिसे मैं कराचीके पासके मनोराकी लहरें देखनेके लिअे अबकी बार गया। यह आशा भी मनमें थी कि पुराने किन्तु नौजवान मित्रोंसे अिस रम्य स्थान पर विस्रब्ध वार्तालाप हो सकेगा। लहरें तो वहां हैं ही; अुनको देखकर आनन्द जरूर होगा। अिससे विशेष कुछ नहीं होगा—अिस प्रकार मनको समझाकर मैं वहां गया।

पिछली बार जब गया था तब मैंने अुछलती लहरोंके धवल हास्यको पकड़नेके लिअे तरह तरहके फोटो खींचे थे। मगर अुनमें से अेक भी अच्छा नहीं आया था। अिस कारण अिन लहरोंके प्रति मनमें थोड़ा गुस्सा होते हुअे भी अितना विश्वास था कि वार्तालापके लिअे वहां अनुकूल वायुमंडल अवश्य मिलेगा।

किन्तु वहां जाकर मैंने क्या देखा? पिछली बार जो दृश्य देखा था और जिसके काव्यमय चित्रोंको मैंने चित्तमें संग्रह करके रखा था, अुन्हें फीके बना कर चित्तमें से धो डालनेवाला लहरोंका अेक अखंड तांडव अेकाअेक दीख पड़ा! अब बातचीत काहेकी और विस्रब्ध कथा काहेकी! मुझे तो वहां मानो अुन्मत्त करनेवाला नशा ही मिल गया। वहां मैं यदि अकेला होता तो अिन लहरोंके तांडवमें कूदकर अुनके साथ अेकरूप होनेके भीतरी खिंचावको रोक पाता या नहीं, यह मैं निश्चय-पूर्वक नहीं कह सकता।

अेक आदमी गाने लगे तो दूसरेको गानेकी स्फूर्ति अवश्य होगी। अेक सितार रात्रिकी शांतिके खिलाफ यदि बगावत करे तो दूसरे क्रांतिकारी सितार अपने फेफड़ोंकी कसरत जरूर करेंगे। अजी, तरबवाली सितारके मुख्य तारको अपने प्राणोंके साथ छेड़ दीजिये; तुरन्त नीचेके तार अपने-आप अपना आनंद-झंकार शुरू कर देंगे। तो फिर मेरे जैसा प्रकृति-प्रेमी जीव कुदरतकी भव्यताके दर्शन करके अुससे अपना भिन्नत्व यदि भूल जाय तो मानवीय सयानपनकी दृष्टिसे अुसमें आश्चर्य भले हो, किन्तु वह अनहोनी बात नहीं है।

जिस प्रकार हाथीकी सारी शोभा अुसके गंडस्थलमें केंद्रीभूत होती है, किलेकी संपूर्ण शोभा अुसके गजेन्द्र-भव्य बुर्जमें होती है, जहाजकी शोभा अुसके तूतक (अूपरके डेक) में परिपूर्ण होती है, अुसी प्रकार मनोराके अिस छोर पर किलेके समान जो दीवारें खड़ी हैं अुनके कारण, यह टापू यहां विशेष रूपसे शोभा पाता है; और समुद्रकी लहरें भी यहीं वप्रक्रीड़ा करके अपनी खुजली (कंडु) शांत करती हैं। यह कंडु-विनोद सतत चलता रहे तो भी देखनेवाला अूबता नहीं। अिसलिअे यह दृश्य चिर-मनोहारी होता ही है। परन्तु यहां पर आदमीने अेक लंबी दीवार बना-

कर समुद्रकी लहरोंको बेहद छेड़ा है, और अब जितने साल हो गये फिर भी लहरें जिस अधिक्षेप (अपमान)को न तो आज तक सह सकी हैं, न आगे सहनेवाली हैं। जितनी बार अुन्हें जिस अपमानका स्मरण होता है, अुतनी ही बार वे बड़ी फौज लेकर जिन दीवारों पर टूट पड़ती हैं और जिन पत्थरोंका प्रतिकार करनेके लिअे अेक-दूसरेको भड़काती जाती हैं। कैसा अुनका यह अुन्माद! कैसी अुनकी दृढ़ प्रतिज्ञा! कैसा अुनका वह प्राणघातक आक्रमण! आज तो अुनका यह अमर्ष चरम सीमाको पहुंच गया था। फिर पूछना ही क्या था! मानो वीरभद्र सारे शिवगणोंको अेकत्र करके लहरोंके रूपमें यहां प्रलय-काल मचाना चाहता हो!

अेक अेक लहर मानो अुछलती पहाड़ी-सी मालूम होती थी। अेककी अुत्तुंग शोभाको देखकर वैसी ही दूसरी लहरोंको अुसकी कदर करना चाहिये। किन्तु अिसके बदले, दोनों अेक होकर अेक नयी ही अूंचाअी पर पहुंचती हैं और आसपासकी लहरोंको भी अुतनी ही अूंचाअी तक चढ़नेके लिअे अुत्तेजित करती जाती हैं। और यह तांडव नृत्य, अेक क्षणके लिअे भी रुके बिना, अखंड रूपसे चलता रहता है। टकटकी लगाकर अिस तांडवको देखते रहिये तो अुसमें अेक प्रचंड ताल मालूम होता है। मानो शिव-तांडव-स्तोत्रका प्रमाणिका वृत्त अपनी शक्ति आजमाने लगा है, और दिल भर आने पर प्रवाह-वेग बढ़नेसे देखते ही देखते प्रमाणिकाका पंचचामर छन्द हो जाता है। और फिर अपनी सुबबुध भूलकर पुष्पदंत भी अुस तालके साथ तांडव-नृत्य करने लगता है।

जिस तरफ लहरोंका आक्रमण अधिकसे अधिक जोरदार है, और जहां टकरानेवाली लहरें चकनाचूर हो जाती हैं तथा आकाशमें अुनके अिन्द्रधनुषको झेलनेवाला बड़ा पंखा तैयार होता है, वहीं कुछ सीढ़ियां अखंड स्नान करते हुअे ऋषियोंकी तरह ध्यान करती बैठी हैं। लहरोंका पानी अुनके सिर पर गिरकर हंसता हुआ और गोमूत्रिका-बंध करता हुआ सीढ़ियां अुतरता जाता है। दिल्ली-आगरेमें और कश्मीर या मैसूरके वृंदावनमें मनुष्यने विलासके जो साधन निर्माण किये हैं और पानीका प्रवाह श्रावण-भादोंकी बड़ी धाराओंमें बहाया है, अुसका यहां स्मरण हुअे बिना नहीं रहता।

मगर कुछ लहरें तो अुस लंबी दीवारके साथ टकराकर अुसके सिर पर पानीकी लंबी लंबी धारायें फेंकनेमें ही मशगूल रहती हैं। लहर टकराती है, दीवार पर सवार होती है और दीवारकी चौड़ाअीका अनादर करके सामनेकी ओर कूद पड़ती है और होलीकी पिचकारियां दूरसे हमारी ओर दौड़ती आती हैं—यह दृश्य हर तरहसे अुन्मादक होता है। और यह महोत्सव मनाने आये हुअे हम लोगोंका स्वागत करनेका कर्तव्य मानो अपने सिर आ पड़ा हो, अैसा समझकर अिन धाराओं तथा अुस पंखेमें से फैलनेवाले पानीके कण सारी हवाको शीतल बना देते हैं। जब यह खारी ओस आंखकी पलकों पर, नाककी नोक पर और आश्चर्यसे खुले हुअे ओंठों पर जमती है, तब लगता है कि हम भी नागरिक या ग्रामवासी नहीं हैं, बल्कि वरुणके सामुद्रिक राज्यकी प्रजा हैं।

और महासागरके अूपरसे दौड़कर आनेवाला शुद्ध पवन कहता है: "अिस दृश्यका आतिथ्य स्वीकारनेकी पूरी शक्ति तुम्हारे पामर हृदयमें कहांसे होगी! चलो, मैं तुम्हें दूर दूरसे लाये हुअे ओझोन (प्राणवायु) की दीक्षा देता हूं, पाथेय देता हूं। ओझोन जब तुम्हारे दिलमें भर जायगा, तब तुम्हारे फेफड़े प्राणपूर्ण होंगे, पवित्र होंगे। अुसके बाद ही तुम यहांका वातावरण तथा अुदावरण सहन कर सकोगे।" और सचमुच, प्राणवायुके श्वासोच्छ्वाससे हरेकके मुंह पर अुषाकी लालिमा छा गयी थी। हम आठों जन आठ दिशाओंमें देख देखकर भी तृप्त नहीं होते थे।

अिसी स्थान पर हमारे पहले अेक सिंधी सज्जन अेक बड़ी शिला पर बैठकर चुपचाप अिस काव्यमें ओतप्रोत होकर भावनामें नहा रहे थे। वे न बोलते थे, न चालते थे, न हंसते थे, न गाते थे। तल्लीन होकर जरा डोल रहे थे। हम बातें कर रहे थे, हृदयके अुद्गार प्रकट कर रहे थे। मगर अुन सज्जनको अिसकी क्या परवा? अुन्हें मनुष्यकी मौज नहीं मनाना था, बल्कि लहरोंकी मस्तीको अपनाना था, अुसे पी जाना था। अेक पैर पर दूसरे पैरकी पलथी लगाकर, अुस पर कुहनी रखकर और सिरको अेक ओर झुकाकर वे समुद्रका ध्यान कर रहे थे।

अुनकी वालोंकी मांगमें सीकर-विन्दुओंकी मुक्तामाला चमक रही थी। मानो वरुणदेवने अपना वरद हस्त अुनके सिर पर रख दिया हो!

हमने स्थान वदल वदल कर अनेक दृष्टिकोणोंसे यह दृश्य देखा। अिससे लहरोंके मनमें हमारे प्रति सद्भावकी जागृति हुअी। वे कहने लगीं, "आओ आओ, अितनी दूरसे क्या देख रहे हो? तुम पराये नहीं हो। पास आओ, मौज मनाओ, लहरोंका आनन्द लूटो, हंसो और कूदो। यह क्षण और अनंत काल—अिनके वीच कोअी फर्क नहीं है। चलो, आ जाओ।" लहरोंकी शिष्टता भिन्न प्रकारकी होती है। न्योता देते समय वे हाथ नहीं पकड़तीं, वल्कि पांव पखारती हैं। हमने सभ्यतासे अिस स्वागतको स्वीकार करके कहा, "सचमुच आनेका जी होता है। मगर अभी नहीं। अभी हमारा काम पूरा नहीं हुआ है। काफी वाकी रहा है। हमारे मनके कअी संकल्प अभी अधूरे हैं। जिस भारतमाताके चरणोंका तुम अखंड रूपसे प्रक्षालन कर रही हो, वह अभी तक आजाद नहीं हुअी है। मनुष्य-मनुष्यके वीचका विग्रह शांत नहीं हुआ है। गरीव तथा दवी हुअी जनताके साथ जव तक पूरी अेकताका हम अनुभव नहीं करते, तव तक तुम्हारे साथ अेकता अनुभव करनेका अधिकार हमें कैसे प्राप्त होगा? तुम मुक्त हो, अखंड कर्मयोगी हो, सतत कार्य करते हुअे भी तुम्हारे लिअे कर्तव्य जैसा कुछ नहीं रहा है। हम तो कर्तव्योंका पहाड़ सामने देखते हुअे भी आलस्यमें पड़े हैं। तुम्हारी पंक्तिमें खड़े रहकर नाचनेका अधिकार हमें नहीं है। तुम हमें प्रेरणा दो। हमारे दिलमें तुम्हारी मस्ती भर दो। तुम्हारा वेदान्त हमारे चित्तमें वो दो। फिर हमें अपना कार्य पूरा करनेमें, भारतको आजाद करनेमें देर नहीं लगेगी। और यह अेक संकल्प यदि पूरा हुआ, तो विना किसी विषादके हम तुम्हारे पास दौड़ आयेंगे। तुम्हारे साथ अद्वैत सिद्ध करेंगे। और अिसमें यदि हड्डियां, चमड़ी या मांस शिकायत करने लगें, तो जिस प्रकार कष्ट देनेवाले कपड़े फाड़ दिये जाते हैं, अुसी प्रकार अिस शरीरको हम चकनाचूर कर डालेंगे और फिर अुसके पिंडोंके नये नये आकारोंको देखकर हंसने लगेंगे।"

"ठीक है। जब अनुकूल हो तब आना। तुम आओ या न आओ; हमारा यह तांडव-नृत्य तो चलता ही रहेगा। जीवनका रास पूरा करके गोपियां अिसमें मिल गअी हैं। संसारके चक्रव्यूहसे मुक्त हुअे तमाम साधु-संत, फकीर और औलिये अिसमें आ मिले हैं। विज्ञानवीर तथा सत्यके अुपासक अिसमें मिलकर शांत हो गये हैं। अिसीलिअे हमारा यह संघ अखंड अशांति मचाते हुअे भी शांतिका सागर-संगीत सुना सकता है।

"क्या तुम्हें सुनाअी देता है यह संगीत?"

जून, १९३७

३४

सिन्धुके बाद गंगा

फरवरीकी १५ या १६ तारीखको ठेठ पश्चिमकी ओर रोहरी-सक्करके बीच सिंधुके विशाल पट पर जल-विहार करनेके बाद और २८ फरवरीको कोटरीके समीप अुसी सिन्धुके अंतिम दर्शन करनेके बाद, बारह-पंद्रह दिनके भीतर ही पूर्वकी ओर पाटलिपुत्रके निकट गंगाका पावन प्रवाह देखनेको मिला। यह कितने सौभाग्यकी बात है! आर्योंकी वैदिक माता सिन्धु और अुन्हीं भारतीयोंकी सनातन माता गंगाके दर्शन अिस प्रकार अेकके बाद अेक होते रहें तो अुस सौभाग्यका स्वागत कौनसा नदी-पुत्र नहीं करेगा? गंगाको जिस प्रकार अुसके पानीका अुपयोग करनेवाला भगीरथ मिला अुसी प्रकार यदि सिन्धुको भी मिल जाता, तो राजस्थान और सिन्धका अितिहास दूसरे ही ढंगसे लिखा जाता। सिन्धु बिना किसीके कहे, अनेक दिशाओंमें बहती है और अपना पात्र बदलनेमें संकोच नहीं करती। तब यदि भगीरथ और जह्नु जैसे अुपासक अिंजीनियर अुसे मिल जाते, तो वह सिंध तथा सौवीर देशोंके लिअे क्या क्या न करती? क्या आज भी रोहरी और सक्करके बीच अपना पानी अेकत्र करके नहरोंके सात प्रवाहों द्वारा

यह स्वच्छंद-विहारिणी सिन्धु अपना स्तन्य सिंधु देशको पिलाने नहीं लगी है?

सिन्धु नदी पंजाबके सात प्रवाहोंका पानी अेकत्र करके मिट्ठन-कोट और कश्मीर तक युक्तवेणी रहती है; वही सिन्धु सक्कर-रोहरीके बाद पहले-पहल मुक्तवेणी हो जाती है और कोटरीके बाद केटी बंदर तक तो न मालूम कितने मुखोंसे समुद्रमें जा मिलती है।*

गंगा नदी गोआलंदो तक युक्तवेणी रहती है। गोआलंदोमें गंगा और ब्रह्मपुत्राके मिलनसे अुनके अमर्याद प्रवाहोंकी अैसी अराजकता मच जाती है कि मुक्तवेणी और युक्तवेणीका भेद ही नहीं किया जा सकता। कलकत्ताके बाद सुन्दरवनका पंखा देखनेको जरूर मिलता है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि गंगाका विस्तार अितना ही है।

गांधी-सेवा-संघकी अंतिम बैठकके लिअे हम मालीकांदा गये थे। तब असम प्रांतसे शिलोंगके रास्ते सुरमा घाटी होकर वापस लौटे थे। जाते और आते समय भगवती गंगाके विविध दर्शन किये थे। किन्तु सम्राट् अशोकके पाटलिपुत्र (आजकलके पटना) के समीप गंगाकी शोभा अनोखी है। पटनाके पास मैंने भिन्न भिन्न समय पर कमसे कम तीन-चार बार गंगा पार की होगी। फिर भी वहां गंगाके दर्शनकी नवीनता कम होती ही नहीं। मेरा खयाल है कि नेपालकी यात्रा

---

* जिस प्रदेशमें अनेक प्रवाह आकर अेक नदीमें मिल जाते हैं, अुस सारे प्रदेशको अंग्रेजीमें 'region of tributaries' कहते हैं। और जहां अेक नदीमें से अनेक प्रवाह निकल कर चारों ओर फैल जाते हैं अुस प्रदेशको 'region of distributaries' कहते हैं। हमारे यहां यही भाव व्यक्त करनेके लिअे 'युक्तवेणी' और 'मुक्तवेणी' शब्द काममें लाये गये हैं।

जब नदी समुद्रको मिलनेके लिअे दो या अधिक मुखोंमें विभक्त होती है, तब बीचके अुस तिकोने प्रदेशको अुसी आकारके ग्रीक अक्षर परसे 'delta' कहते हैं। हमें अैसे प्रदेशको 'नदीका पंखा' कहना चाहिये।

समाप्त करके मैं मुजफ्फरपुरसे कलकत्ता गया तब पहले पहल पटना गया था। फाल्गुन मासके दिन थे। जहां जायें वहां आमके मौरसे हवा महक रही थी। और अजनबी मैं पटनाके छोटे बड़े रास्तों पर मतवालेकी तरह अपने अंतःकरणमें वसंतोत्सव मना रहा था। वहां जो पहली छाप मन पर पड़ी, वह आज भी मौजूद है। फिर भी अुसके बाद जब जब मैं पटना गया हूं, तब तब कुछ न कुछ नवीनता मैंने वहां अवश्य पायी है।

श्री राजेन्द्रबाबू जहां रहते हैं और जहां बिहार विद्यापीठ चल रहा है, वह सदाकत आश्रम गंगाके ठीक किनारे पर ही है। आश्रमके सामनेका रास्ता लांघकर तीन फुटके बांध पर चढ़ते ही गंगाकी विस्तीर्ण जलराशि पश्चिमसे आकर पूर्वकी ओर बहती हुअी नजर आती है। अुस पारका किनारा देखनेकी यदि कोशिश करें, तो जमीनकी अेक पतली-सी रेखाके सिवा कुछ दिखाअी ही नहीं देता। चकित होकर आप सायमें आये हुअे किसी आदमीसे कहें कि 'गंगाका पाट कितना चौड़ा है!' तो वह तुरंत हंसकर कहेगा, 'वह जो सामने दीख पड़ता है वह केवल अेक टापू है। अुसके आगे भी गंगाका प्रवाह है। अुस पारका किनारा यहांसे दिखाअी नहीं पड़ता।'

सामने जो पतली-सी लकीर दिखाअी देती है वह अेक चौड़ा टापू है, यह सुनने पर भी यकीन नहीं होता कि पानीके अितने बड़े विस्तारके बाद, लकीरके अुस पार और भी विस्तार हो सकता है। अेक बार संदेह मनमें पैदा हुआ कि वह कुतूहलका रूप अवश्य धारण कर लेता है। कुतूहल परिपक्व होने पर अुसमें से संकल्प अुठता है। और संकल्पके जैसी बेचैन बनानेवाली दूसरी कोअी वस्तु भला हो सकती है?

सदाकत आश्रममें रहे तब तक रोज गंगाके किनारे टहलना हमारा काम था। क्योंकि गंगाकी संस्कृति-पुनीत मोहिनी न होती, तो भी किनारे पर खड़े पुराण-पुरुष जैसे वृक्षोंकी पंक्ति हमें खींचे बिना न रहती। सह्याद्रि या हिमालयके अुत्तुंग वृक्ष जिसने देखे हैं, अुसका जी ललचानेकी शक्ति मामूली वृक्षोंमें कहांसे आवे? किन्तु गंगाके

तट पर, पटनाके आसपास, योजनों तक चलते रहिये—चारों ओर ऊंचे-ऊंचे वृक्ष अपनी पुष्ट शाखायें चारों दिशाओंमें ऊपर और नीचे दूर दूर तक फैलाये हुअे नजर आते हैं। किसी समय, पटना सम्राट् अशोकके साम्राज्यकी राजधानी था। आज वही पटना वृक्षोंके अेक विशाल साम्राज्यका पोषण करता है।

अैसे स्थान पर खड़े रहकर, जो न तो बहुत दूर हो और न बहुत पास, अिन बड़े वृक्षोंके अंग-प्रत्यंगोंकी शोभाको यदि ध्यानसे निहारें, तो अुनका स्वभाव, अुनकी चित्तवृत्ति और अुनकी कुलीनताका खयाल आये बिना नहीं रहता। सभी वृक्ष तपस्वी नहीं होते। कुछ मौनी ध्यानी जैसे दिखाअी देते हैं, कुछ क्रीड़ाप्रिय होते हैं; कुछ वियोगी विरही जैसे, तो कुछ अत्युत्कट प्रेमी जैसे। परन्तु किसी भी स्थितिमें वे अपना आर्यत्व नहीं छोड़ते। कुछ वृक्षोंकी शाखायें ऊपर अितनी फैली हुअी होती हैं, मानो टूटते हुअे आसमानको बचानेका काम अुन्हींके जिम्मे आया हो।

चार बूढ़े सज्जन शांतिसे गंभीर बातें कर रहे हैं और तुतलाते हुअे बच्चे अुनकी गोदमें अुछल-कूद मचा रहे हैं—क्या अैसा दृश्य आपने कभी देखा है? बूढ़े बच्चोंको डांटते नहीं; कोमलताके साथ अुन्हें पुचकारते हैं। फिर भी अुनकी गंभीर बातचीतमें खलल नहीं पड़ती। गंगाके किनारे सनातन मंत्रणा चलानेवाले अिन पेड़ोंके बीच जब छोटे-बड़े पक्षी मीठा कलरव करते हैं, तब ठीक वही वृद्ध-अर्भक-दृश्य नये ढंगसे आंखोंके सामने आता है।

फाल्गुन पूर्णिमाके आसपासके दिन थे। शामको अगर घूमने निकलते तो 'चंदामामा' पेड़ोंकी ओटमें से दर्शन देते ही थे। हमने यहां अेक नये आनंदकी खोज की। जिस प्रकार अलग अलग प्रकारकी अंगूठियोंमें जड़ने पर हीरा नयी नयी शोभा दिखाता है, अुसी प्रकार अलग अलग पेड़ोंकी ओटमें चांद नयी नयी छवि धारण करता था। अेक बार सींग जैसी दो शाखाओंके बीचमें अुसे खड़ा करके हमने देखा। दूसरी बार गोल-कीपर (goal-keeper) या लक्ष्यपाल जैसे अेक बड़े पेड़को अुसी चंद्रको हवा-गेंद (फूटबॉल) की तरह अुछालते हुअे

देखा। दीघाघाटके बंदरगाहके पास अेक जगह तो दो पेड़ोंके बीच चन्द्रमा अिस तरह जमकर बैठा था कि मालूम होता था मानो "यह चांद तेरा नहीं है, मेरा है" कहकर पेड़ आपसमें लड़ रहे हों। और अंतमें अिन दोनोंका झगड़ा निपटानेके लिअे चांदने मुंह बनाकर कहा, "तुम दोनोंमें से मैं किसीका भी नहीं हूं, जाओ।" अितना कहकर वह रुका नहीं। वह तो सीधा ऊंचा ही चढ़ता गया। चंद्रकी अिस तटस्थताकी कद्र करके हम थोड़े आगे बढ़े ही थे, अितनेमें वह अपना न्यायाधीशपन भूलकर अेक पेड़से जाकर चिपक गया! और अंतमें भुजाओंमें जकड़े जानेके कारण हंसने लगा।

मनमें संकल्प अुठा : अैसे चांदनीके दिनोंमें कुछ समय सामनेके अुस निर्जन टापूमें बिता सकें तो कितना अच्छा हो! होली और धुलेड़ीके दिन तो छोड़ ही देने पड़े, क्योंकि लोग होली पीकर अुन्मत्त हो गये थे, और अुन्होंने दो दिन तक गंगा-किनारेके कीचड़ और पेड़ोंके रंगोंका अनुकरण करनेका निश्चय किया था। जब वे अिससे निवृत्त हुअे, तब हम अेक नावकी व्यवस्था करके चल पड़े।

चंद्र निकले अुसके पहले रवाना होनेमें भला मजा कैसे आवे? किन्तु चंद्रको जल्दी थी ही नहीं। निकला भी तो प्रकाश नहीं देता था। किसीको पता चले बिना जिस प्रकार कोअी नया धर्म स्थापित होता है, अुसी प्रकार चंद्रमा निकला। अुसका प्रकाश अितना मंद था कि स्वातिको भी अुस पर तरस आ रहा था। जब चंद्र ही अितना मंद था, तब वफादार चित्रा अदृश्य रहे, अिसमें आश्चर्य क्या? शनि और गुरु मंत्र पढ़ते हुअे पश्चिमकी ओर अस्त हो रहे थे। तारकांकित झोंपड़ीके स्वामी अगस्ति दक्षिण पर आरोहण कर रहे थे। हमारी नाव चलने लगी। पानीमें चन्द्रका अेक लम्बा स्तंभ दिखाअी देने लगा। प्रथम स्थिर, बादमें तरल। हम ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों त्यों पानीका पृष्ठभाग अधिकाधिक चंचल होता गया, और भांति भांतिकी आकृतियोंका प्रदर्शन करने लगा।

मेरे मनमें विचार आया कि पानीके जत्थे और रफ्तारके साथ ये आकृतियां भी बदलती हैं। तो अिनका अध्ययन करके हरेकको अलग

अलग नाम देकर अैसी योजना क्यों न बनायी जाय कि नदीकी रफ्तार दिखानेके लिअे अुन आकृतियोंका नाम ही बता दिया जाय? अुच्च और नीच ध्वनिको हम यदि 'सा, रे, ग, म, प, ध, नी' जैसे नाम दे सकते हैं, अत्यंत अुग्र तापको (white heat) सूर्यकांति अुष्णता कह सकते हैं, तो नदीकी रफ्तारको गौमूत्रिका-वेग, वलय-वेग, आवर्त-वेग, विवर्त-वेग आदि नाम क्यों नहीं दे सकते?

अिस कल्पनाके साथ ही मैं विचारोंके आवर्तमें अुतर गया और चित्रा कब प्रकट हुअी, अिसका पता ही न चला। हम मंजघारमें पहुंचे और मुझे प्रार्थना सूझी। अैसे स्थान पर आंखें मूंदकर कहीं अंधेरी प्रार्थना की जा सकती है? हमारा प्रार्थना-स्वामी जब हमारे सामने विविध रूपसे प्रत्यक्ष विराजमान हो, तब आंखें मूंदकर हम गुहा-प्रवेश किसलिअे करें? 'रसो वै सः' कहकर जिसे हम पहचानते हैं, वह जब रसपूर्ण भूमि, पवित्र जल, सौम्य तेज, आह्लादकारी पवन और पितृ-वात्सल्यसे हमारी ओर देखनेवाले आकाशके विस्तार आदिके विविध रूपोंमें प्रकट हो और 'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः, रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।' श्लोक हम गाते हों, तब सारा जीवन-दर्शन नये सिरेसे सोचा जाता है। गहरा विचार लम्बा होता ही है, अैसी कोअी बात नहीं है। रसका निवर्तन कब होता है और परिवर्तन किस तरह होता है, अिसकी सारी मीमांसा मैंने तीन-चार क्षणोंमें ही मनमें कर ली और देखते ही देखते प्रार्थनामें ताजगी आ गअी। 'रघुपति राघव राजाराम'की धुन शुरू हुअी, और चंचल मन जीवन-रसकी गंभीर मीमांसा छोड़कर तुरन्त पूछने लगा, 'श्री रामचंद्रजीने गुहककी सहायतासे गंगा किस स्थान पर पार की होगी? गुहककी नाव हमारी नावके अितनी चौड़ी होगी या किसी पेड़के तनेसे बनाअी हुअी नन्हींसी डोंगी जैसी होगी?'

बातकी बातमें हम अुस टापू पर पहुंच गये। और सलिल-विहार छोड़कर हमने सिकता-विहार शुरू किया। चमकीली बालू चमकीले पानीसे कम आनंददायक नहीं थी। टापूके किनारे थोड़ी दूर अुगी हुअी थी। अेक क्षणका विचार करके हमने निश्चय कर लिया कि यहां

सांप, विच्छू, कांटा कुछ भी नहीं हो सकता। यहां तो अक्षुण्ण बालू ही बिछी हुअी है। यदि कोअी निशानी है तो वह अस्थिर-मति पवनकी लहरोंकी ही। गंगाकी लहरोंके कारण रेतमें बनी हुअी आकृतियोंको मिटानेकी क्रीड़ा मनमौजी पवन किस प्रकार करता है, अिसका आलेख यहां देखनेको मिलता था। रेत पर बनी हुअी आकृतियां अैसी दिखाअी देती थीं, मानो पाठशालाके बच्चे थककर सो गये हों और अुनकी कापियां तथा स्लेटें किताबोंके साथ अिधर-अुधर बिखर पड़ी हों। कहीं मनचले, लहरी पवनकी लिखावट दिखाअी देती, तो कहीं लहरोंकी स्वर-लिपि रेतमें अंकित दिखाअी देती थी। अिनमें अपने पदचिह्न अंकित करनेका मेरा जी नहीं होता था। किन्तु बालूके झट टूट जानेवाले पपड़े जब पैरों तले टूट जाते, तब पापड़ खाने जैसा मजा आता था। पैरोंके आनंदको सारे शरीरने अनुभव किया और अुसे लगा कि दरअसल मूसलकी तरह खड़े खड़े चलनेमें पूरा मजा नहीं है। All rights reserved का दावा करनेवाला कोअी गधा वहां नहीं था। अिसलिअे हमने निःशंक होकर रेतमें लोटनेकी सोची। किन्तु दुर्भाग्यवश अिस बातमें हमारे साथियोंका अेकमत नहीं हो सका। किसीकी प्रतिष्ठा अिसमें बाधक हुअी, तो किसीका कैंकर्य आड़े आया। हमारे खलासी तो हमें वहीं छोड़कर किसीसे मिलने टापूके दूसरे छोर पर चले गये। शराबखानेके नौकर पियक्कड़ोंकी ओर जिस दृष्टिसे देखते हैं, अुसी दृष्टिसे अुन्होंने हम सौंदर्य-पिपासु लोगोंकी ओर देखा होगा।

गया कांग्रेसके बाद हम चंपारणकी ओर गये थे, तब अिसी स्थानसे हमने गंगा पार की थी। अुस समय आश्रमके दो विद्यार्थियोंने अेक मीठा भजन गाया था: 'मंगल करहु दयाऽऽऽ करी देवी'। अिस स्थान पर आते ही वह सब याद आया और मैं भीमसेनका अनुकरण करके मुक्तकंठसे गाने लगा। साथियोंने अुदारताके साथ अुसे सह लिया। अिससे मैं और भी चढ़ गया और मथुराबाबूसे कहने लगा, "मुझे छपरासे मुंगेर तक नावमें जाना है। कितना समय लगेगा?" अैसी यात्रा मेरे नसीबमें है या नहीं, अीश्वर जाने! किन्तु कल्पनामें तो मैंने वह पूरी भी कर ली।

आकाशमें ब्रह्महृदय अस्त होनेकी तैयारी कर रहा था। महाश्वान अपनी मृगयामें मशगूल था। अगस्तिकी झोंपड़ी अब अपनी जगह पर आ गयी थी। और कृत्तिका तटस्थतासे स्मित कर रही थी। पुनर्वसुकी नावने अपना अग्रभाग जरा ऊंचा करके दक्षिणकी यात्रा शुरू की और हमें इस बातकी याद दिलाई कि हम इस टापूके निवासी नहीं हैं; यहांसे हमें वापस लौटना है और परियोंकी सृष्टिको छोड़कर मानवी सृष्टिमें अुतरना है। हम तुरंत टापूके किनारे पर आ गये और पुनर्वसुकी तरह अपनी नाव हमने दक्षिणकी ओर बढ़ाई।

'फिर यहां कब आयेंगे?' अैसा विषाद मनमें नहीं अुठा। गंगोत्रीसे लेकर हीरा बंदर तक गंगाके अनेक बार दर्शन करके मैं पावन हुआ हूं और मैयाकी कृपासे आगे भी अनेक बार दर्शन होंगे। अब इस पूर्णानंदमें घट-बढ़ होनेकी संभावना नहीं है। इसीलिअे वापस लौटते समय मुंहसे शांतिपाठ निकल पड़ा:

ॐ पूर्णम् अदः, पूर्णम् इदं; पूर्णात् पूर्णम् अुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णम् आदाय पूर्णम् अेवावशिष्यते॥

अप्रैल, १९४१

३५
नदी पर नहर

श्रावण पूर्णिमाके मानी हैं जनेअूका दिन; और यदि ब्राह्मण्यको भूल जायं तो राखीका दिन। अुस दिन हम रुड़की पहुंचे। मजाकिये वेणीप्रसादने देखते ही देखते मुझसे दोस्ती कर ली और कहा, 'अजी काकाजी, आज तो आपके हाथसे ही जनेअू लेंगे। यहांके ब्राह्मण वेदमंत्र बराबर बोलते ही नहीं। आप महाराष्ट्र हैं। आप ही हमें जनेअू दीजियेगा।' वेणीप्रसादके मामा परम भक्त थे। अुनसे जनेअूके बारेमें चर्चा चली। अुत्तर भारतके ब्राह्मण चाहते हैं कि वे ही नहीं बल्कि तीनों द्विज वर्ण नियमित रूपसे जनेअू पहनें और संध्यादि नित्यकर्म करें। मगर यहांके लोगोंकी बड़ी अनास्था है।

अिससे ठीक विपरीत, दक्षिणमें जब ब्राह्मणेतर जनेअू मांगते हैं, तब महाराष्ट्रके ब्राह्मण 'कलौ आद्यन्तयोः स्थितिः' के वचनके अनुसार अैसी वेहूदी जिद लेकर बैठते हैं, मानो वीचके दो वर्ण हैं ही नहीं। (सौभाग्यसे आज वह स्थिति नहीं रही।) जिन्हें जनेअू पहननेका अधिकार है, वे अुसे पहननेके वारेमें अुदासीन रहते हैं, और जो हाथापाअी करके भी जनेअू पहननेका अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं, अुनके लिअे अपना द्विजत्व सिद्ध करनेमें कठिनाअी पैदा की जाती है! यह चर्चा सुनकर वेणीप्रसादको लगा कि 'आज हमें जनेअू मिलनेवाली नहीं है।' अुसने दलील पेश की: 'कलियुगमें क्या नहीं हो सकता? नदी पर यदि नदी सवार हो सकती है, तो महाराष्ट्रके ब्राह्मण भी हमें जनेअू दे सकते हैं।' दलील मंजूर हुअी। किन्तु विषय बदला और कलियुगके भगीरथोंकी, वहादुरीके अुदाहरण-स्वरूप गंगाकी नहरके वारेमें वातें चलीं।

दोपहरके समय हम लोग मानवका यह प्रताप देखने निकले। गंगाकी नहर शहरके समीपसे जाती है। लड़के अुसमें मछलियोंकी तरह अेक खेल खेल रहे थे। नहरके किनारे किनारे हम अुस प्रख्यात पुल तक गये। वह दृश्य सचमुच भव्य था। पुलके नीचेसे गरीव ब्राह्मणीके समान सोलाना नदी वह रही थी और अूपरसे गंगाकी नहर अपना चौड़ा पाट जरा भी संकुचित किये विना पुल परसे दौड़ती जा रही थी। पुलके अूपर पानीका वोझ अितना ज्यादा था कि मालूम होता था, अभी दोनों ओरकी दीवारें टूट जायेंगी और दोनों ओरसे हाथीकी झूलके समान वड़े प्रपात गिरना शुरू होंगे। पुलकी दीवार पर खड़े रहकर नहरके वहावकी ओर देखते रहनेसे दिमाग पर अुसका असर होता था। दुःखी मनुष्यको जिस प्रकार अुद्वेगके नये नये अुभार आते हैं, अुसी प्रकार नहरके जलमें भी अुभार आते थे। किन्तु ससुराल आयी हुअी वहू जिस प्रकार अपनी सव भावनायें नये घरमें दवा देती है, अुसी प्रकार गंगा नदीकी यह परतंत्र पुत्री अपने सव अुभारोंको दवा देती थी। अुसका विस्तार देखकर प्रथम दर्शनमें तो मालूम होता था मानो यह कोअी धनमत्त सेठानी है। किन्तु नजदीक जाकर देखने पर श्रीमंतीके नीचे परतंत्रताका दुःख ही अुसके वदन पर दीख पड़ता था।

ऊपरसे नीचे देखने पर निम्नगा सोलानाका क्षीण किन्तु स्वतंत्र बहाव दोनों ओरसे आकर्षक मालूम होता था। चुभता केवल अितना ही था कि नहरकी दोनों ओरकी दीवारोंमें परिवाहके तौर पर कअी सूराख़ रखे गये थे, जिनमें से नहरका थोड़ा पानी अिस तरह सोलानामें गिर रहा था मानो अुस पर अहसान कर रहा हो।

हम पुलसे नीचे अुतरे और सोलानाके किनारे जा बैठे। अूंचेसे दिये जानेवाले अुपकारको अस्वीकार करने जितनी मानिनीं सोलाना नहीं थी। मगर कोअी कृपा अवतरित होगी, अैसी लोभी दृष्टि रखने जितनी हीन भी वह न थी। हीनता अुसमें जरा भी नहीं थी। और मानिनीकी वृत्ति अुसको शोभती भी नहीं। अुसकी निर्व्याज स्वाभाविकता प्रयत्नसे विकसित अुदात्त चारित्र्यसे भी अधिक शोभा देती थी।

भगीरथ-विद्यामें (अिरिगेशन अिंजीनियरिंगमें) पानीके प्रवाहको ले जानेवाले छः प्रकार बताये गये हैं। अुनमें अेक प्रवाहके अूपरसे दूसरे प्रवाहको ले जानेकी योजनाको अद्‌भुत और अत्यन्त कठिन प्रकार माना गया है। अिस प्रकारके रेलके या मोटरके मार्ग हमने कअी देखे हैं। मगर, जहां तक मैं जानता हूं, हिन्दुस्तानमें अिस प्रकारके जल-प्रवाहका यह अेक ही नमूना है। संस्कृतिके प्रवाहकी दृष्टिसे यदि सोचें, तो सारा भारतवर्ष अैसे ही प्रकारसे भरा हुआ है। यहां हरअेक जातिकी अपनी अलग संस्कृति है, और कअी वार आमने सामने मिलने पर भी वे अेक-दूसरीसे काफी हद तक अस्पृष्ट रह सकी हैं!

१९२६–'२७

३६

नेपालकी बाघमती

कश्मीरकी जैसे दूधगंगा है, वैसे नेपालकी बाघमती या बाघमती है। अितनी छोटी नदीकी ओर किसीका ध्यान भी नहीं जायेगा। किन्तु बाघमतीने अेक अैसा अितिहास-प्रसिद्ध स्थान अपनाया है कि अुसका नाम लाखोंकी जबानं पर चढ़ गया है। नेपालकी अुपत्यका अर्थात् अठारह कोसके घेरेवाला और चारों ओर पहाड़ोंसे सुरक्षित रमणीय अण्डाकार मैदान। दक्षिणकी ओर फर्पिंग-नारायण अुसका रक्षण करता है। अुत्तरकी ओर गौरीशंकरकी छायाके नीचे आया हुआ चंगु-नारायण अुसको संभालता है। पूर्वकी ओर विशंगु-नारायण है और पश्चिमकी ओर है अिचंगु-नारायण।

हिमालयकी गोदमें बसे हुअे स्वतंत्र हिन्दू राज्यके अिस घोंसलेमें तीन राजधानियां अैसी हैं, मानो तीन अंडे रखे गये हों। अत्यन्त प्राचीन राजधानी है ललितपट्टन; अुसके बादकी है भादगांव, और आजकलकी है काठमांडू या काष्ठमंडप। नेपालके मंदिरोंकी बनावट हिन्दुस्तानके अन्य स्थलोंकी बनावटके समान नहीं है। मंदिरकी छतसे जहां बरसातके पानीकी धारायें गिरती हैं वहां नेपाली लोग छोटी-छोटी घंटियां लटका रखते हैं। और बीचमें लटकनेवाले लोलकको पीतलके पतले पीपल-पान लगा दिये जाते हैं। जरा-सी हवा लगते ही वे नाचने लगते हैं। यह कला अुन्हें सिखानी नहीं पड़ती। अेकसाथ अनेक घंटियां किणकिण किणकिण आवाज करने लगती हैं। यह मंजुल ध्वनि मंदिरकी शांतिमें खलल नहीं डालती, बल्कि शांतिको अधिक गहरी और मुखरित करती है। भादगांवकी कअी मूर्तियां तो शिल्पकलाके अद्भुत नमूने हैं। शिल्पशास्त्रके सब नियमोंकी रक्षा करके भी कलाकार अपनी प्रतिभाको कितनी आजादी दे सकता है, अिसके नमूने यदि देखने हों तो अिन मूर्तियोंको देख लीजिये। मालूम होता है यहांके मूर्तिकार कलाको अतिमानुषी ही मानते हैं।

खेतोंमें दूर दूर भव्याकृति स्तूप अैसे स्वस्थ मालूम होते हैं, मानो समाधिका अनुभव ले रहे हों।

और काठमांडू तो आजके नेपाल राज्यका वैभव है। नेपालमें जानेकी अिजाजत आसानीसे नहीं मिलती। अिसीलिअे परदेके पीछे क्या है, अवगुंठनके अंदर किस प्रकारका सौंदर्य है, यह जाननेका कुतूहल जैसे अपने-आप अुत्पन्न होता है, वैसे नेपालके बारेमें भी होता है। आठ दिन रहनेकी अिजाजत मिली है। जो कुछ देखना है, देख लो। वापस जाने पर फिर लौटना नहीं होगा। अैसी मनःस्थितिमें जहां देखो वहां काव्य ही काव्य नजर आता है।

पशुपतिनाथका मंदिर काठमांडूसे दूर नहीं है। वह अैसा दिखता है मानो मंदिरोंके झुंडमें बड़ा नंदी बैठा हो। निकटमें ही बाघमती बहती है। रेतीली मिट्टी परसे अुसका पानी बहता है, अिसलिअे वह हमेशा मटमैला मालूम होता है। अुसमें तैरनेकी अिच्छा जरूर होती है, मगर पानी अुतना गहरा हो तभी न? गुह्येश्वरी और पशुपतिनाथके बीचसे यह प्रवाह बहता है, अिसी कारण अुसकी महिमा है।

पशुपतिनाथसे हम सीधे पश्चिमकी ओर शिगु-भगवानके दर्शन करने गये। रास्तेमें मिली बाघमतीकी बहन विष्णुमती। अिस नदी पर जहां तहां पुल छाये हुअे थे। पुल काहेके? नदीके पट पर पानीसे अेक हाथकी अूंचाअी पर लकड़ीकी अेक अेक बित्ता चौड़ी तख्तियां। सामनेसे यदि कोअी आ जाय तो दोनों अेकसाथ अुन पुल परसे पार नहीं हो सकते। दोनोंमें से किसी अेकको पानीमें अुतरना पड़ता है। कहीं कहीं पानी अधिक गहरा होता है; वहां तो आदमी घुटनों तक भीग जाता है।

शिगु-भगवानकी तलहटीमें ध्यानी बुद्धकी अेक बड़ी मूर्ति सूर्यके तापमें तपस्या करती है। टेकरी पर अेक मंदिर है। अुसमें तीन मूर्तियां हैं। अेक बुद्ध भगवानकी; दूसरी धर्म भगवानकी; तीसरी संघ भगवानकी! हरेकके सामने घीका दीया जलता है। और अेक कोनेमें लकड़ीकी बनायी हुअी अेक चौखटमें पीतलकी अेक पोली लाट खड़ी कर रखी है, जिस पर 'ॐ मामे पामे हुम्' (ॐ मणिपद्मेऽहम्)का पवित्र मंत्र कअी बार खुदा

हुआ है। दस्ता घुमाने पर लाट गोल गोल घूमती है। रुद्राक्ष या तुलसीकी माला फेरनेकी अपेक्षा यह सुविधा अधिक अच्छी है! हर चक्करके साथ अुस पर जितनी वार मंत्र लिखा हुआ है अुतनी वार आपने मंत्रका जाप किया, और अुतना पुण्य आपको अपने-आप मिला गया, अिसमें संदेह रखनेका कोअी कारण नहीं है! 'नात्र कार्या विचारणा'। तथागतको अपने संदेशका यह स्वरूप देखनेको नहीं मिला, यह अुनका दुर्भाग्य है, और क्या? अिसी मंदिरके पास पीतलका बनाया हुआ अिंद्रका वज्र अेक चबूतरे पर रखा है। भगिनी निवेदिताको अिसका आकार बहुत पसंद आया था। अुन्होंने सूचना की थी कि भारतवर्षके राष्ट्रध्वज पर अिसका चित्र बनाया जाय।

बाघमतीके किनारे धान, गेहूं, मकअी और अुड़द काफी पैदा होते हैं। अरहर वहां नहीं होती। मालूम नहीं, अिन लोगोंने अिसे पैदा करनेकी कोशिश की है या नहीं। रुअी पैदा करनेके प्रयत्न अभी अभी हुअे हैं।

बाघमती नेपाली लोगोंकी गंगा-मैया है। गोरक्षनाथ अुनके पिता हैं।

१९२६–'२७

३७

बिहारकी गंडकी

छुटपनमें मैंने अितना ही सुना था कि गंडकी नदी नेपालसे आती है और अुसमें शालिग्राम मिलते हैं। शालिग्राम अेक तरहके शंख जैसे प्राणी होते हैं; अुन्हें तुलसीके पत्ते बहुत पसंद आते हैं; पानीमें तुलसीके पत्ते डालने पर ये प्राणी धीरे-धीरे बाहर आते हैं और पत्ते खाने लगते हैं; अुन्हें पकड़कर अंदरके जीवको मार डालते हैं और काले पत्थर जैसे ये शंख साफ करके पूजाके लिअे बेचे जाते हैं; लेकिन आजकलके धूर्त लोग काले रंगकी शिलाका अेक टुकड़ा लेकर अुसमें सुराख करके नकली शालिग्राम

बनाते हैं; अैसी कअी बातें सुनी थीं। अिसलिअे कअी दिनोंसे मनमें था कि अैसी नदीको अेक बार देख लेना चाहिये।

मुझे याद है कि स्वामी विवेकानंदने कहीं लिखा है कि नर्मदाके पत्थर महादेवके बाणलिंग हैं और विष्णुके शालिग्राम बौद्ध स्तूपोंके प्रतीकके तौर पर गंडकीमें से लाये हुअे पत्थर हैं। पेरिसकी बड़ी प्रदर्शनीके समय अुन्होंने किसी भाषण या लेखमें जाहिर किया था कि बाणलिंग और शालिग्राम बौद्ध जगतके दो छोर सूचित करते हैं।

गंगा नदीका जहां अुद्गम है, वहींसे वह दोनों ओरसे कर-भार लेती हुअी आगे बढ़ती है। अुसकी मांडलिक नदियां अधिकांशतः अुत्तरकी ओरकी यानी बायीं तरफकी हैं। चंबल और शोणको यदि छोड़ दें, तो महत्त्वकी कोअी नदी दक्षिणसे अुत्तरकी ओर नहीं जाती। गंगाकी दक्षिण-वाहिनी मांडलिक नदियोंमें गंडकी गंगाके लिअे बिहारका पानी लाती है।

हम सब मुजफ्फरपुर गये थे तब अेक दिन गंडकीमें नहाने गये। बिहारकी भूमि है अनासक्तिके आद्य प्रवर्तक सम्राट् जनककी कर्म-भूमि; अहिंसा-धर्मके महान प्रचारक महावीरकी तपोभूमि; अष्टांगिक मार्गके संशोधक बुद्ध भगवानकी विहार-भूमि। ये सब धर्मसम्राट् अिस नदीके किनारे अहर्निश विचरते होंगे। अुनके असंख्य सहायकोंने तथा अनुयायियोंने अिसमें स्नान-पान किया होगा। सीतामैयाने छुटपनमें अिसमें कितना ही जल-विहार किया होगा। वही गंडकी मुझे अपने शैत्य-पावनत्वसे कृतार्थ करे — अिस संकल्पके साथ मैंने अुसमें स्नान किया। नदीके पानीको किसी भी प्रकारकी जल्दी नहीं थी। अुसमें किसी प्रकारका अुत्पात न था। वह शांतिसे बहती जाती थी, मानो मारको जीतनेके बाद बुद्ध भगवानका चलाया हुआ अखंड ध्यान हो हो।

१९२६–'२७

३८

गयाकी फल्गु

संस्कृतमें फल्गुके दो अर्थ होते हैं। (१) फल्गु यानी निःसार, क्षुद्र, तुच्छ; और (२) फल्गु यानी सुन्दर। गयाके समीपकी नदीका फल्गु नाम दोनों अर्थोंमें सार्थक है। पुराण कहते हैं कि अुसे सीताका शाप लगा है। सीताके शापके बारेमें जो होगा सो सही; किन्तु अुसे सिकताका शाप लगा है यह तो हम अपनी आंखोंसे देख सकते हैं। जहां भी देखें, बालू ही बालू दिखाअी देती है। बेचारा क्षीण प्रवाह अिसमें सिर अूंचा करे भी तो कैसे? यात्री लोग जहां तहां खोदकर गड्ढे तैयार करते हैं। लकड़ीके बड़े फावड़ेको लम्बी डोरी बांधकर हलकी तरह अुसे अिन गड्ढोंमें चलाते हैं, जिससे नीचेका कीचड़ निकल कर गड्ढा अधिक गहरा होता है और अधिक पानी देता है।

असंख्य श्रद्धावान यात्री फल्गुके पटमें 'सनान' करके पितरोंके लिअे चावल पकाते हैं और पिंड तैयार करते हैं। चावल, पानी, मटकी, गोबर आदिकी मात्रा पंडोंने हमेशाके लिअे तय कर रखी है। नियमके अनुसार पैसा दे दीजिये; पंडा सब सामग्री ले आता है। गोबरके थपले सुलगाकर अुस पर चावलकी मटकी रख दीजिये; अमुक विधियोंके पूरे होने तक चावल तैयार हो ही जायगा।

फल्गुके किनारे मंदिर और धर्मशालाओंका सौंदर्य बहुत है। अिनमें भी श्री गदाधरजीके मंदिरका शिखर तो अनायास हमारा ध्यान खींचता है।

फल्गुकी सच्ची शोभा देख लीजिये, गयासे बोधगयाकी ओर जाते समय। बालूका लंबा-चौड़ा पाट, आसपास ताड़के अूंचे अूंचे पेड़ और अिनके बीचसे टेढ़ा-मेढ़ा बहता हुआ फल्गुका क्षीण प्रवाह। मगर अुसे क्षुद्र या निःसार कौन कहेगा? यहां रामचंद्र और सीताजी आयी थीं। भगवान बुद्ध यहां घूमे थे। और कअी सत्पुरुष यहां श्राद्ध करने आये थे। अिस महातीर्थको निःसार तो कह ही नहीं सकते। आखिर फल्गु यानी सुन्दर — यही अर्थ सही है।

१९२६–'२७

३९

गरजता हुआ शोणभद्र

'अयं शोणः शुभ-जलोऽगाधः पुलिन-मण्डितः ।
'कतरेण पथा ब्रह्मन् संतरिष्यामहे वयम् ?' ॥
अेवम् अुक्तस् तु रामेण विश्वामित्रोऽब्रवीद् अिदम् ।
'अेष पन्था मयोद्दिष्टो येन यान्ति महर्षयः' ॥

आसेतु-हिमाचल भारतवर्षके वारेमें अेक ही साथ विचार करनेवाले क्षत्रिय गुरु-शिष्यकी अिस जोड़ीके मनमें शोणनद पार करते समय क्या क्या विचार आये होंगे ? प्रकृतिके कवि वाल्मीकिने विश्वामित्र और राम, दोनोंके प्रकृति-प्रेमका मुक्तकंठसे वर्णन किया है। तीनों जनगण-हितकारी मूर्तियां। अुनकी भावनाओंका स्रोत भी शोणभद्रकी तरह ही वहता होगा, और आसपासकी भूमिको मुखरित करता होगा।

अमरकंटकके आसपासकी अुन्नत भूमि भारतवर्षके लगभग मध्यमें खड़ी है। वहांसे तीन दिशाओंकी ओर अुसने अपनी करुणाका स्तन्य छोड़ दिया है। भौगोलिक रचनाकी दृष्टिसे जिनके वीच काफी साम्य है, किन्तु दूसरी दृष्टिसे संपूर्ण वैषम्य है, अैसे दो प्रांतोंको अुसने दो नदियां दी हैं। नर्मदा गुजरातके हिस्से आयी, और महानदी अुत्कलको मिली।

अमरकंटकका तीसरा स्रोत है पीवरकाय शोणभद्र। नर्मदा सुदीर्घा है, महानदी अष्टावक्रा है और शोणभद्र सुघोष है। करीव पांच सौ मीलका पराक्रम पूरा करके वह पटनाके पास गंगासे मिलता है। शोणके कारण ही शोणपुरका स्थान मशहूर है। कहते हैं कि ग्राहके साथ गजेंद्रकी लड़ाअी गंगा-शोणके संगमके समीपस्थ दहमें ही हुअी थी। मानो अिसी प्रसंगको चिरस्मरणीय करनेके लिअे अव भी शोणपुरमें लाखों लोगोंका मेला होता है, और अुसमें सैकड़ों हाथी वेचे जाते हैं।

सिन्धु और ब्रह्मपुत्रके साथ शोणभद्रको नर नाम देकर प्राचीन ऋषियोंने अुसका समुचित आदर किया है। वनारससे गया जाते समय अिस महाकाय और महानाद नदके दर्शन हुअे थे। गाड़ी वड़े पुल परसे जाती है और शोणभद्रका पुलिन-मंडित महापट दिखता रहता है।

संकरी घाटीमें अपना विकास रुकनेके कारण अधीरताके साथ जब दौड़ता हुआ वह यकायक विशाल क्षेत्रमें पहुंचता है, तब कहां जाऊं और कहां न जाऊं यह भाव अुसके चेहरे पर स्पष्ट रूपसे दिखाअी देता है। 'नाल्पे सुखम् अस्ति; यो वै भूमा तत् सुखम्'—यह माननेवाले महर्षिगण शोणके किनारे अच्छा अुतार खोजते हुअे जब घूमते होंगे, तब अुनके मनमें क्या क्या विचार आते होंगे? यह तो विश्वामित्र या अुनके मखत्राता प्रभु श्री रामचंद्रजी ही जानें।

१९२६–'२७

४०

तेरदालका मृगजल

मेरे विवाहके बाद कुछ ही दिनोंमें हम शाहपुरसे जमखंडी गये। पिताजी हमसे पहले वहां पहुंच गये थे। रातको हम कुड़ची स्टेशन पर अुतरे। वहांसे रातको ही बैलगाड़ीमें रवाना हुअे। दोनों बैल सफेद और मजबूत थे। रंग, सींगोंका आकार, मुखमुद्रा और चलनेका ढंग सब बातें दोनोंमें समान थीं। हमारे यहां अैसी जोड़ीको 'खिल्लारी' कहते हैं। अिन बैलोंने हमें चौबीस घंटोंमें पैंतीस मील पहुंचा दिया।

जमखंडी जाते हुअे रास्तेमें अितिहास-प्रसिद्ध तेरदाल आता है। हम तेरदालके पास पहुंचे तब मध्याह्नका समय था। दाहिनी ओर दूर दूर तक खेत फैले हुअे थे। काफी दूर, लगभग क्षितिजके पास, अेक बड़ी नदी बह रही थी। पानी पर सख्त धूप पड़नेके कारण वह चमचमा रहा था। और पानी कितने वेगसे बह रहा है अिसका भी कुछ कुछ खयाल होता था। अितनी सुंदर नदीके किनारे पेड़ कम क्यों हैं, अिसका कारण मैं समझ न सका। मैंने गाड़ीवानसे पूछा, 'अिस नदीका नाम क्या है? कितनी बड़ी दिखाअी देती है? कृष्णा नदी तो नहीं है?' गाड़ीवान हंस पड़ा। कहने लगा, 'यहां नदी कहांसे आयेगी? वह तो मृगजल है। पानीके अिस दृश्यसे बेचारे प्यासे हिरन

धोखेमें आ जाते हैं और धूपमें दौड़-दौड़कर और पानीके लिअे तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। अिसीलिअे अुसको मृगजल कहते हैं।'

मृगजलके वारेमें मैंने पढ़ा तो था। मृगजलमें अूपरके पेड़का प्रतिविंव भी दिखाअी देता है, रेगिस्तानमें चलनेवाले अूंटोंके प्रतिविंव भी दिखाअी देते हैं, आदि जानकारी और अुसके चित्र मैंने पुस्तकोंमें देखे थे। मगर मैं समझता था कि मृगजल तो अफ्रीकामें ही दिखाअी देते होंगे। सहाराके रेगिस्तानकी अिक्कीस दिनकी यात्रामें ही यह अद्‌भुत दृश्य देखनेको मिलता होगा। हिन्दुस्तानमें भी मृगजल दिखाअी दे सकते हैं, अिसकी यदि मुझे कल्पना होती, तो मैं अितनी आसानीसे और अितनी वुरी तरहसे धोखा नहीं खाता।

अव मैं देख सका कि हम ज्यों ज्यों गाड़ीमें आगे वढ़ते जाते थे, त्यों त्यों पानी भी आगे खिसकता जाता था। मैंने यह भी देखा कि अुस पानीके आसपास हरियाली नहीं थी, और पानीका पट आसपासकी जमीनसे नीचे भी नहीं था। जमीनकी सतह पर ही पानी वहता था! अूपरकी हवामें भी धूपका असर दिखाअी देता था। फिर तो मृगजलकी मौज देखनेमें और अुसका स्वरूप समझनेमें वहुत आनंद आने लगा। वेचारे वैल अधमुंदी आंखोंसे अपनी गतिके तालमें अेक समान चल रहे थे। कोअी वैल चलते चलते पेशाव करता, तो अुसका आलेख जमीन पर वन जाता था और थोड़ी ही देरमें सूख जाता था। हम आधे-आधे घंटेमें सुराहीसे पानी लेकर पीते थे, फिर भी प्यास वुझती नहीं थी।

अैसा करते करते आखिर तेरदाल आया। धर्मशाला पत्थरकी वनी हुअी थी। देशी रियासतका गांव था; अिसलिअे धर्मशाला अच्छी वनी हुअी थी। मगर सख्त धूपके कारण वह भी अप्रिय-सी मालूम हुअी। मुकाम पर पहुंचनेके वाद मैं तालावमें नहा आया। साथमें पूजाकी मूर्तियां थीं। वेंतकी पेटीमें से अुन्हें निकालकर पूजाके लिअे जमाया। अुनमें अेक शालिग्राम था। वह तुलसीपत्रके विना भोजन नहीं करता; अिसलिअे मैं गीली धोतीसे, किन्तु नंगे पैरों तुलसीपत्र लानेके लिअे निकल पड़ा। अेक घरके आंगनमें सफेद कनेरके फूल भी मिले और तुलसीपत्र भी मिले। दोपहरका समय था। पेटमें भूख थी, पैर जल रहे थे, सिर

गरम हो गया था — अैसे त्रिविध तापमें पूजा करने बैठा। देवता कुछ कम न थे। अीश्वर अेक अवश्य है; मगर सबकी ओरसे अेक ही देवताकी पूजा करता तो वह चल नहीं सकता था। पूजा करते समय मेरी आंखोंके सामने अंधेरा छा गया। बड़ी मुश्किलसे मैंने पूजा पूरी की और खाना खाकर सो गया।

स्वप्नमें मैंने हिरनोंके अेक बड़े झुण्डको गेंदकी तरह दौड़ते हुअे मृगजलका पानी पीने जाते देखा।

अैसा ही अेक मृगजल दांडीयात्राके समय नवसारीसे दांडीके समुद्र-किनारेकी ओर जाते समय देखनेको मिला था। हमें यह विश्वास होते हुअे भी कि यह मृगजल है, आंखोंका भ्रम तनिक भी कम नहीं होता था। वेदान्तका ज्ञान आंखोंको कैसे स्वीकार हो?

आजकल कलकत्तेकी कोलतारकी सड़कों पर भी दोपहरके समय अैसा मृगजल चमकने लगता है, जिससे यह भ्रम होता है कि अभी अभी बारिश हुअी है। दौड़नेवाली मोटरोंकी परछाअियां भी अुनमें दिखाअी देती हैं। भगवानने यह मृगजल शायद अिसीलिअे बनाया है कि ज्ञान होने पर भी मनुष्य मोहवश कैसे रह सकता है, अिस सवालका जवाव अुसे मिल जाय।

१९२५

४१

चर्मण्वती चंबल

जिनके पानीका स्नान-पान मैंने किया है, अुन्हीं नदियोंका यहां अुपस्थान करनेका मेरा संकल्प है। फिर भी अिसमें अेक अपवाद किये बिना रहा नहीं जाता। मध्य देशकी चंबल नदीके दर्शन करनेका मुझे स्मरण नहीं है। किन्तु पौराणिक कालके चर्मण्वती नामके साथ यह नदी स्मरणमें हमेशाके लिअे अंकित हो चुकी है। नदियोंके नाम अुनके किनारेके पशु, पक्षी या वनस्पति परसे रखे गये हैं, अिसकी मिसालें बहुत हैं। दृषद्वती, सारस्वती, गोमती, वेत्रवती, कुशावती, शरावती, बाघमती,

हाथमती, साबरमती, अिरावती आदि नाम अुन अुन प्रजाओंको सूचित करते हैं। नदीके नामसे ही अुनकी संस्कृति प्रकट होती है। तब चर्मण्वती नाम क्या सूचित करता है? यह नाम सुनते ही हरेक गोसेवकके रोंगटे खड़े हुअे बिना नहीं रहेंगे।

प्राचीन राजा रंतिदेवने अमर कीर्ति प्राप्त की। महाभारत जैसा विराट ग्रंथ रंतिदेवकी कीर्ति गाते थकता नहीं। राजाने अिस नदीके किनारे अनेक यज्ञ किये। अुनमें जो पशु मारे जाते थे, अुनके खूनसे यह नदी हमेशा लाल रहती थी। अिन पशुओंके चमड़े सुखानेके लिअे अिस नदीके किनारे फैलाये जाते थे; अिसीलिअे अिस नदीका नाम चर्मण्वती पड़ा। महाभारतमें अिस प्रसंगका वर्णन बड़े अुत्साहके साथ किया गया है। रंतिदेवके यज्ञमें अितने ब्राह्मण आते थे कि कभी कभी रसोअियोंको भूदेवोंसे विनती करनी पड़ती कि 'भगवन्! आज मांस कम पकाया गया है; आज केवल पचीस हजार पशु ही मारे गये हैं। अिसलिअे सब्जी-कचूमर अधिक लीजियेगा।'

अुस समयके हिन्दूधर्ममें और आजके हिन्दूधर्ममें कितना बड़ा अंतर हो गया है! यूनानी लोगोंके 'हैकॅटॉम' को भी फीका सिद्ध करें अितने बड़े यज्ञ करके हम स्वर्गके देवताओंको तथा भूदेवोंको तृप्त करेंगे, अैसी अुम्मीद अुस समयके धार्मिक लोग रखते थे। बादके लोगोंने सवाल अुठाया:

वृक्षान् छित्वा, पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिर-कर्दमम्
स्वर्गः चेत् गम्यते मर्त्यैः नरकः केन गम्यते?

'पेड़ोंको काटकर, पशुओंको मारकर और खूनका कीचड़ बनाकर यदि स्वर्गको जाया जाता हो, तो फिर नरकको जानेका साधन कौनसा है?' अिस चर्मण्वती नदीके किनारे कअी लड़ाअियां हुअी होंगी। मनुष्यने मनुष्यका खून बहाया होगा। मगर चंबलका नाम लेते ही राजा रंतिदेवके समयका ही स्मरण होता है।

यदि आज भी हमें अितना अुद्वेग मालूम होता है, तो समस्त प्राणियोंकी माता चर्मण्वतीको अुस समय कितनी वेदना हुअी होगी?

१९२६–'२७

४२

नदीका सरोवर

हमारे देशमें अितने सौंदर्य-स्थान बिखरे हुअे हैं कि अुनका कोअी हिसाब ही नहीं रखता। मानो प्रकृतिने जो अुड़ाअूपन दिखाया अुसके लिअे मनुष्य अुसे सजा दे रहा है। आश्रममें जिन्हें चौबीसों घंटे बापूजीके साथ रहने तथा बातें करनेका मौका मिला है, वे जैसे बापूजीका महत्त्व नहीं समझते और बापूजीका भाव भी नहीं पूछते, वैसा ही हमारे देशमें प्रकृतिकी भव्यताके बारेमें हुआ है।

हम माणिकपुरसे झांसी जा रहे थे। रास्तेमें हरपालपुर और रोहाके बीच हमने अचानक अेक विशाल सुंदर दृश्य देखा। पता ही नहीं चला कि यह नदी है या सरोवर? आंसपासके पेड़ किनारेके अितने समीप आ गये थे कि अिसके सिवा दूसरा कोअी अनुमान ही नहीं हो सकता था कि यह नदी नहीं हो सकती। मगर सरोवरकी चारों बाजू तो कमोबेश अूंची होनी चाहिये। यहां सामने अेक अूंचा पहाड़ आसपासके जंगलको आशीर्वाद देता हुआ खड़ा था, और पानीमें देखनेवाले लोगोंको अपना अुलटा दर्शन देता था। दाढ़ी रखकर सिर मुंड़ानेवाले मुसलमानोंकी तरह अिस पहाड़ने अपनी तलहटीमें जंगल अुगाकर अपने शिखरका मुंडन किया था।

पुलकी बाअीं ओर पानीके बीचोंबीच अेक छोटा-सा टापू था — दो अेक फुट लंबा और अेक हाथ चौड़ा, और पानीके पृष्ठभागसे अधिक नहीं तो छः अिंच अूंचा। अुसका घमंड देखने लायक था। वह मानो पासके पहाड़से कह रहा था, 'तू तो तट पर खड़ा खड़ा तमाशा देख रहा है; मुझको देख, मैं कितना सुन्दर जल-विहार कर रहा हूं!'

तब यह नदी है या सरोवर? अभी अभी बेलाताल स्टेशन गया। अिसलिअे लगा कि अिस प्रदेशमें जगह जगह तालाब होंगे। किन्तु विश्वास न हुआ। डिब्बेमें बैठे हुअे लोगोंको अवश्य पूछा जा सकता था। मगर अेक तो पैसेंजर गाड़ी होते हुअे भी दीपावलीके दिन होनेके कारण

अुसमें स्थानिक यात्री नहीं थे; और यदि होते भी तो अुनसे अधिक जानकारी पा सकनेकी अुम्मीद थोड़े ही रखी जा सकती थी! युगों तक जीवन-यात्रा विषम बनी रही, अिस कारण लोगोंके जीवनमें से सारा काव्य सूख गया है। अिसलिअे जो भी सवाल पूछा जाय, अुसका जवाब विषादमय अुपेक्षाके साथ ही मिलता है। लोगोंकी मलमनसाहत अभी कुछ बाकी है, किन्तु काव्य, अुत्साह और कल्पनाकी अुड़ान अब स्मृतिशेष हो गये हैं।

पर अितना सुन्दर दृश्य देखनेके बाद क्या विषादके विचारोंका सेवन किया जा सकता है? यात्रामें मैं हमेशा अेक-दो नक्शे अपने साथ रखता ही हूं। बलिहारी आधुनिक समयकी कि अैसे साधन अनायास मिल जाते हैं। मैंने 'रोड मैप ऑफ अिन्डिया' निकाला। हरपालपुर और मअुरानीपुरके बीचसे अेक लंबी नदी दक्षिणसे अुत्तरकी ओर दौड़ती है, बेतवासे जा मिलती है और बेतवाकी मददसे हिंमतपुरके पास अपना नीर यमुनाके चरणोंमें चढ़ा देती है। 'मगर अिस नदीका नाम क्या है?' मैंने नक्शेसे पूछा। वह आलसी बोला: 'देखो, कहीं लिखा हुआ होगा!' और सचमुच अुसी क्षण नाम मिला — धसान! अितने सुंदर और शांत पानीका नाम 'धसान' क्यों पड़ा होगा? यह तो अुसका अपमान है। मैं अिस नदीका नाम प्रसन्ना रखता। मंदस्रोता कहता या हिमालयसे माफी मांगकर अुसे नंदाकिनीके नामसे पुकारता।

मगर हमें क्या मालूम कि जिस लोककविने अिस नदीका नाम धसान रखा, अुसने अुसका दर्शन किस ऋतुमें किया होगा? वर्षा मूसलधार गिर रही होगी, आसपासके पहाड़ बादलोंको खींचकर नीचे गिरा रहे होंगे, और मस्तीमें झूमनेवाले नीर हाथीकी रफ्तारसे अुत्तर दिशाकी ओर तेजीसे दौड़ रहे होंगे। शंका पैदा हुअी होगी कि समीपकी टेकरियां कायम रहेंगी या गिर पड़ेंगी। अैसे समय पर लोककविने कहा होगा, 'देखो तो अिस धसान नदीकी शरारत, मानो महाराज पुलकेशीकी फौज अुत्तरको जीतनेके लिअे निकल पड़ी है!'

किन्तु अब यह नदी अितनी शांत मालूम होती है, मानो गोकुलमें शरारत करनेके बाद यशोदा माताके सामने गरीब गाय बना हुआ कन्हैया हो!

सुबह नाश्तेके समय अितनी अनसोची मेजवानी मिलने पर अुसे कौन छोड़ेगा ?

अघाकर खानेके बाद रिश्तेदारोंका स्मरण तो होता ही है। अब अिस घसानका मंगल दर्शन अिष्ट मित्रोंको किस प्रकार कराया जाय ? न पास कैमरा है, न ट्रैनसे फोटो खींचनेकी सुविधा है। और फोटोकी शक्ति भी कितनी होती है ? फोटोमें यदि सारा आनंद भरना संभव होता, तो घूमनेकी तकलीफ कोअी न अुठाता । मैं कवि होता तो यह दृश्य देखकर हृदयके अुद्गारोंकी अेक सरिता ही बहा देता। मगर वह भी भाग्यमें नहीं है। अिसलिअे 'दूधकी प्यास छाछसे बुझाने' के न्यायसे यह पत्र लिख रहा हूं । भारतकी भक्ति करनेवाला कोअी समानधर्मी झांसीसे करीब पचास मीलके अंदर आये हुअे अिस स्थानका दर्शन करनेके लिअे जरूर आयेगा।

स्टेशन बरवासागर, १४–११–'३९

ता० १६–११–'३९

घसानसे आगे बढ़े और ओरछाके पास बेतवा नदी देखी। यह नदी भी काफी सुन्दर थी। अुसके प्रवाहमें कअी पत्थर और कअी पेड़ थे। अुसके लावण्यमें फीका कुछ भी नहीं था । दूर दूर तक ओरछाके मंदिर और महल दिखाअी देते थे; कीचड़का दर्शन कहीं भी नहीं हुआ। यह अनाविला नदी देखकर हम झांसी पहुंचे। वहां श्री मैथिलीशरणजीके भाअी —सियारामशरणजी और चारुशीलाशरणजी अपने परिवारके अन्य लोगोंके साथ भोजन लेकर आये थे। मेरे मनमें संदेह था कि काव्य पढ़-पढ़कर काव्यका सर्जन करनेवाले हमारे कवि जिस तरह प्रकृतिका प्रत्यक्ष दर्शन हृदयसे नहीं करते, अुसी तरह अिन कवि-बन्धुओंने भी घसान और बेतवाके बारेमें शायद कुछ न लिखा होगा। अिसलिअे मैंने अुनसे साफ साफ कह दिया कि 'आपने यदि अिन दो नदियों पर कुछ भी न लिखा हो, तो आप निंदाके पात्र हैं!' सियारामशरणजीने अपने विनयसे मुझे पराजित किया। अुन्होंने कहा, 'भैयाजीने (मैथिलीशरणजीने) अिन नदियोंके बारेमें गाते हुअे